Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

Indian Social Problems

Centre for **Distance &**
Online Education

Faculty of Arts

Indian Social Problems

1MSW3

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

1 MSW 3
Indian Social Problems

1 MSW 3
Indian Social Problems

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr. Richa Yadav, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Reena Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur Chhattisgarh

Dr. Deena Nath Yadav, Head Department of Social Work, Mats University, Raipur C.G.

Course Editor:

Dr. Deena Nath Yadav,

Head Department of Social Work, Mats University, Raipur C.G

Unit Written By:

---

1. Dr. Usha Vaidya

Professor, Ravindranath Tagore University faculty of humanities and liberal arts

---

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher. Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.)

Edition: March 2024

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

अध्याय		पृष्ठ क्रमांक
1.	सामाजिक समस्याएँ *(Social Problems)*	01
2.	नगरीय समाज एवं अपराध *(Urban Society & Crime)*	14
3.	समूह और संघर्ष व बाल अपराध *(Group Conflict & Juvenile Delinquency)*	26
4.	भ्रष्टाचार *(Corruption)*	40
5.	निर्धनता *(Poverty)*	55
6.	बेरोजगारी *(Unemployment)*	69
7.	मद्यपान *(Alcoholism)*	82
8.	एड्स *(Aids)*	96
9.	भिक्षावृत्ति एवं वेश्यावृत्ति *(Beggary & Prostitution)*	115
10.	प्रदूषण *(Pollution)*	126
11.	साम्प्रदायिकता *(Communalism)*	135
12.	क्षेत्रवाद *(Regionalism)*	143

●●●

अध्याय-1 सामाजिक समस्याएँ
(SOCIAL PROBLEMS)

NOTES

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 सामाजिक समस्या का अर्थ एवं परिभाषाएँ
1.3 सामाजिक समस्या की विशेषताएँ
1.4 सामाजिक समस्या की उत्पत्ति
1.5 सामाजिक समस्याओं के प्रकार
1.6 सामाजिक समस्याओं के कारण
1.7 सामाजिक समस्याओं के अध्ययन की पद्धतियाँ
1.8 सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य
1.9 सामाजिक समस्याओं का समाधान
1.10 शब्दावली
1.11 सारांश
1.12 अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

मानव समाज के इतिहास को यदि गहराई से देखा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह विविध प्रकार की समस्याओं एवं चुनौतियों का हि इतिहास रहा है। प्रत्येक सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित, विकसित-विकासशील समाज में कुछ न कुछ सामाजिक समस्याएँ सदैव विद्यमान रही हैं और आज भी हैं तथा इन्हीं समस्याओं को सामाजिक विघटन का प्रमुख कारण माना जाता है। किसी भी समाज में स्थायित्व एवं निरन्तरता हेतु इन समस्याओं का समाधान किया जाना आवश्यक माना जाता है, इसीलिए समाजशास्त्र में सामाजिक समस्या का अर्थ, प्रकृति, प्रकार, कारण तथा सामाजिक समस्याओं के समाधान के उपायों के साथ-साथ इनके अध्ययन की विधियों एवं परिप्रेक्ष्यों को भी समझने का प्रयास किया जाता है। प्रस्तुत अध्याय इसी दिशा में एक प्रयास है।

1.1 प्रस्तावना

समाजशास्त्र एक विशुद्ध विज्ञान है अथवा व्यावहारिक विज्ञान? यह प्रश्न समाजशास्त्र में अत्यधिक चर्चित रहा है। कुछ विद्वानों का मत है कि समाजशास्त्र का उद्देश्य केवल सामाजिक घटनाओं के बारे में नवीन ज्ञान प्राप्त करना है तथा किसी प्रकार का निर्णय देना या समस्याओं का समाधान करना कदापि नहीं है। ऐसे विद्वान् समाजशास्त्र को विशुद्ध विज्ञान मानते हैं। दूसरी ओर, आज अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि समाजशास्त्र सहित सभी सामाजिक विज्ञानों का उद्देश्य सामाजिक जीवन को प्रगतिशील बनाना है। यह तभी सम्भव है जब समाज में विद्यमान समस्याओं का अध्ययन किया जाए, इस दृष्टि से समाजशास्त्र एक व्यावहारिक विज्ञान है। समाजशास्त्र में सामाजिक समस्याओं, सामाजिक विघटन, सामाजिक व्याधिकी जैसे विषयों का अध्ययन इस बात का द्योतक है कि समाजशास्त्र

एक व्यावहारिक विज्ञान है तथा नीति-निर्धारक समाजशास्त्रियों से सामाजिक समस्याओं के कारणों को समझने तथा उनके समाधान हेतु उपाय सुझाने की आशा रखते हैं। सामाजिक नियोजन की दृष्टि से भी आज समाजशास्त्र एक महत्वपूर्ण विषय हो गया है। प्रारम्भिक समाजशास्त्रियों ने भी तत्कालीन समाजों में विद्यमान समस्याओं का अध्ययन कर यह दर्शाने का प्रयास किया कि समाजशास्त्री इन समस्याओं को समझने से विमुख नहीं हो सकते, इसीलिए आज भारत के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में भारत में विद्यमान प्रमुख समस्याओं से सम्बन्धित किसी-न-किसी नाम से एक प्रश्न-पत्र पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाता है। चूँकि समाजशास्त्र में क्षेत्रीय दृष्टिकोण अपनाया जाता है इसलिए यह विषय सामाजिक समस्याओं के कारणों को समझने में सहायक है। सामाजिक समस्याओं के कारणों को समझना उनके समाधान हेतु आवश्यक माना जाता है।

1.2 सामाजिक समस्या का अर्थ एवं परिभाषाएँ

'सामाजिक समस्या' का अर्थ समझने के लिए हमें 'सामाजिक' तथा 'समस्या' शब्द का अर्थ समझ लेना उचित होगा। जब भी हम 'सामाजिक' शब्द का प्रयोग करते हैं तो इससे हमारा अभिप्राय मानवीय सम्बन्धों, सामाजिक संरचना (ढाँचे), संगठन आदि से होता है। समस्या का अभिप्राय ऐसे अवांछनीय एवं अनुचित व्यवहारों अथवा प्रचलनों से है, जो सामाजिक व्यवस्था में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न कर देते हैं। अत: सामाजिक संगठन, सामाजिक संरचना या मानवीय सम्बन्धों में जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं उन्हें हम सामाजिक समस्याएँ कहते हैं। सामाजिक समस्या सदैव विघटनमूलक होती है, इससे सामाजिक संगठन में उथल-पुथल हो सकती है तथा नियमित एवं सामान्य जीवन बुरी तरह से प्रभावित हो सकता है। सामाजिक समस्या केवल किसी विशेष स्थिति की ही सूचक नहीं होती अपितु उस स्थिति की गम्भीरता के बारे में सामाजिक चेतना या सामाजिक चिन्ता की अभिवृत्ति को भी व्यक्त करती है।

सामाजिक समस्या के अर्थ को स्पष्ट करने हेतु इसकी प्रमुख परिभाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। **राब** एवं **सेल्जनिक** (Raab and Selznick) के अनुसार, "यह मानवीय सम्बन्धों की वह समस्या है जो स्वयं समाज को गम्भीर चुनौती देती है अथवा अनेक लोगों की महत्वपूर्ण आकांक्षाओं में बाधा पैदा करती है।" ग्रीन (Green) के अनुसार, "सामाजिक समस्या ऐसी परिस्थितियों का पुंज है जिसे समाज में बहुसंख्यक अथवा पर्याप्त अल्पसंख्यक द्वारा नैतिकतया गलत समझा जा सकता है।" इसी भाँति, **होर्टन** एवं **लेस्ले** (Horton and Leslie) के अनुसार, "सामाजिक समस्या एक ऐसी स्थिति है जो बहुत से लोगों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है तथा जिसका हल सामूहिक सामाजिक क्रिया द्वारा ही हो सकता है।" **फुल्लर** एवं **मेयर्स** (Fuller and Myers) ने सामाजिक समस्या को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "जब समाज के अधिकांश सदस्य किसी विशिष्ट दशा एवं व्यवहार प्रतिमानों को अवांछित और आपत्तिजनक मान लेते हैं तब उसे सामाजिक समस्या कहा जाता है।"

मर्टन एवं निस्बेत (Merton and Nisbet) के अनुसार, "(सामाजिक समस्या) व्यवहार का वह ढंग है जोकि सामाजिक व्यवस्था के अधिकांश भाग द्वारा सामान्य रूप से स्वीकृत या अनुमोदित आदर्शों के उल्लंघन के रूप में माना जाता है।" इनके अनुसार सामाजिक समस्या का सीधा सम्बन्ध मानवीय सम्बन्धों और समाज की स्वीकृत व्यवस्था से होता है। ऐसे व्यवहार को हम समस्या इसलिए कहते हैं क्योंकि यह अपेक्षित योजनाओं में बाधा उत्पन्न करता है तथा समाज के नियमित जीवन में उथल-पुथल की ओर संकेत करता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक समस्या सामान्य स्थापित एवं प्रचलित मूल्यों के अस्तित्व में संकट एवं उथल-पुथल उत्पन्न करने वाली दशा है। अत: सामाजिक समस्याएँ सामाजिक जीवन में पैदा होने वाली अवांछनीय स्थितियाँ हैं जो सार्वजनिक चिन्ता का विषय होती हैं, इसकी परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक समस्या में अग्रलिखित तीन प्रमुख तत्व पाए जाते हैं—

1. समाज के अधिकांश सदस्यों से इसका सम्बन्ध होना,
2. दबावकारी या तनावपूर्ण सामाजिक स्थिति— बर्नार्ड के अनुसार स्थिति को तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है—
   (i) तनाव कारक, जो समाज के किसी मूल्य के लिए चुनौती का कारण होते हैं,

(ii) सामाजिक मूल्य, जिसको चुनौती दी जा रही है, तथा

(iii) चुनौती के प्रति व्यक्तियों या समूहों की तीव्र प्रतिक्रियाएँ अर्थात् समाज के संगठन एवं कल्याण के लिए भय, आशंका की स्थिति

3. समुचित सामूहिक क्रियाएँ जो समस्या को हल कर सकती हैं अर्थात् सामूहिक प्रयत्न द्वारा इसके समाधान की आशा।

अतः सामाजिक समस्या वास्तव में वे दशाएँ हैं जो सामाजिक मूल्यों को चुनौती देती है, समाज का महत्वपूर्ण भाग उनसे दबाव या तनाव महसूस करता है, वे उस दबाव के कारण को जानते हैं और यह विश्वास करते हैं कि सामूहिक प्रयासों से इस दबाव को दूर किया जा सकता है। सामाजिक समस्या सामाजिक आदर्श और यथार्थ में भारी अन्तर की सूचक है जिसे मिटाने के लिए सामाजिक कार्यवाही जरूरी हो जाती है। अपराध, बाल अपराध, मद्यपान, मादक द्रव्य व्यसन, वेश्यावृत्ति, टूटते परिवार, बेरोजगारी, गरीबी, मानसिक रोग इत्यादि सामाजिक समस्याओं के ही उदाहरण हैं।

1.3 सामाजिक समस्या की विशेषताएँ

सामाजिक समस्या की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. सामाजिक समस्या वह दशा या स्थिति है जिसे समाज हानिकारक मानता है तथा उसके समाधान की आवश्यकता महसूस करता है।

2. सामाजिक समस्या का सम्बन्ध सामाजिक संरचना से होता है, इसीलिए वही समस्याएँ सामाजिक समस्याएँ कही जाती हैं जो या तो सामाजिक संरचना पर कुप्रभाव डालती हैं अथवा जिनका कारण समाज की विद्यमान सामाजिक संरचना में होता है।

3. सामाजिक समस्या में सामूहिकता का तत्व निहित होता है। यदि केवल कुछ व्यक्ति किसी स्थिति को अवांछनीय मानते हैं तो वह सामाजिक समस्या नहीं कही जाएगी। अधिकांश व्यक्तियों द्वारा अमुक समस्या को किसी-न-किसी प्रकार की बाधा मानने पर ही वह समस्या सामाजिक समस्या कही जाएगी।

4. सामाजिक समस्या वह अवांछनीय स्थिति है जिसे सुधारने का प्रयास किया जाता है। यदि कोई समस्या अवांछनीय तो है परन्तु समाज के सदस्य उसमें किसी प्रकार के सुधार की न तो आशा करते हैं और न ही प्रयास करते हैं तो ऐसी समस्या सामाजिक समस्या नहीं कही जाएगी।

5. सामाजिक समस्या समाज कल्याण की धारणा से सम्बन्धित होती है। समाज कल्याण को अवरुद्ध करने वाली समस्याएँ ही अधिकतर सामाजिक समस्याएँ मानी जाती हैं।

6. फुल्लर तथा मेयर के मतानुसार जागरुकता, नीति-निर्धारण तथा सुधार सामाजिक समस्या से सम्बन्धित वे चरण हैं जिनके द्वारा किसी समुदाय में इनका निर्धारण सम्भव होता है।

1.4 सामाजिक समस्या की उत्पत्ति

सामाजिक समस्या की उत्पत्ति अनेक कारणों से होती है। जब सामाजिक संगठन में सामंजस्य समाप्त हो जाता है और समाज द्वारा प्रचलित मूल्यों, आदर्शों व नियमों में अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो सामाजिक समस्या जन्म लेती है। जॉन केन के अनुसार जब कभी समाज द्वारा प्रचलित मूल्यों एवं आदर्शों में प्रतिकूल परिस्थितियाँ विकसित हो जाती हैं तो अनेक प्रकार की समस्याएँ जन्म लेने लगती हैं। सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति यद्यपि अनेक कारणों एवं परिस्थितियों के कारण होती है फिर भी प्रत्येक सामाजिक समस्या कुछ निश्चित चरणों में से गुजर कर ही विकसित होती है। फुल्लर एवं मेयर्स ने सामाजिक समस्या के स्वाभाविक एवं प्राकृतिक विकास के चरणों की विस्तृत विवेचना की है।

प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं--

1. चेतना की स्थिति–सामाजिक समस्या के विकास का प्रथम चरण समाज के व्यक्तियों में सामाजिक व्यवस्था एवं सामान्य जीवन को अवरुद्ध करने वाली कठिनाइयों के बारे में चेतना है। समाज के अधिकांश सदस्य इन्हें महसूस करने लगते हैं और उनके बारे में सोच विचार शुरू कर देते हैं।

NOTES

2. कठिनाइयों का स्पष्टीकरण– द्वितीय चरण में कठिनाइयाँ अधिक स्पष्ट हो जाती है और सामान्य जनता इनसे असुविधा महसूस करने लगती है और इनकी ओर स्पष्ट इशारा किया जाने लगता है।

3. सुधार कार्यक्रमों या लक्ष्यों का निर्धारण– समस्या स्पष्ट हो जाने के पश्चात् इसके समाधान के लिए कार्यक्रमों एवं लक्ष्यों के निर्धारण का कार्य तृतीय चरण में होता है।

4. संगठन का विकास– लक्ष्य निर्धारित करने के पश्चात् इन्हें पूरा करने के लिए आवश्यक संगठन का विकास किया जाता है तथा आवश्यक साधनों को एकत्र किया जाता है ताकि सुधार कार्यक्रमों को लागू किया जा सके।

5. सुधार का प्रबन्ध–सामाजिक समस्याओं के स्वाभाविक विकास का अन्तिम चरण इसके समाधान के लिए सुधार कार्यक्रमों को लागू करना है तथा अगर आवश्यक हो तो इसके लिए अनिवार्य संस्था का विकास करना है।

रोबर्ट ए. निस्बेत ने सामाजिक समस्या की उत्पत्ति में चार सहायक कारक बताए हैं–

1. संस्थाओं में संघर्ष– कई बार अनेक संस्थाओं के उद्देश्यों, लक्ष्यों व साधनों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। प्राचीन एवं नवीन संस्थाओं में यह संघर्ष अधिक पाया जाता है क्योंकि प्राचीन संस्थाएँ व्यवस्था को यथारूप बनाए रखने पर बल देती है जबकि नवीन संस्थाएँ सामाजिक गतिशीलता पर अधिक बल देती हैं।

2. सामाजिक गतिशीलता–यह प्रथम कारक से जुड़ा हुआ कारक है। गतिशीलता की सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि गतिशीलता के कारण व्यक्ति को नवीन प्रस्थितियों, मूल्यों आदि से काफी संघर्ष करना पड़ता है और कई बार लोग तंग आकर अवैधानिक, अनैतिक व अस्वीकृत तरीको द्वारा अपनी प्रस्थिति ऊँचा करने का प्रयास करते है।

3. व्यक्तिवाद– आज के युग में निरन्तर बढ़ता हुआ व्यक्तिवाद भी सामाजिक समस्याओं का कारण है। परम्परागत समाजों में जीवन सामूहिक होता था परन्तु आज व्यक्ति अपने में ही खोता जा रहा है और सामूहिकता समाप्त होती जा रही है, इससे प्राथमिक नियन्त्रण शिथिल हो जाता है और व्यक्ति के पथभ्रष्ट होने की सम्भावना बढ़ जाती है। सामाजिक एकता में कमी हो जाती है, व्यक्तिवाद के कारण व्यक्ति मनचाहा व्यवहार करने लगता है तथा वह समाज के रीति-रिवाजों की चिन्ता नहीं करता।

4. व्याधिकीय स्थिति– व्याधिकीय स्थिति भी सामाजिक समस्याओं को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, इस स्थिति में व्यक्ति समाज के मूल्यों की चिन्ता किए बिना, जो उन्हें अच्छा लगता है वह करने लगते है और इससे समाज में अव्यवस्था और सामाजिक समस्याएँ बढ़ जाती हैं। व्याधिकीय स्थिति एक प्रकार से आदर्शविहीनता की स्थिति है जिसमें समाज में पाए जाने वाले आदर्श नियम व्यवहार को नियमित करने में असफल रहते हैं। लोग मनमाना व्यवहार करने लगते हैं तथा इससे अनेक नवीन सामाजिक समस्याएँ विकसित हो जाती हैं।

बोध प्रश्न

1. सामाजिक समस्या के अर्थ को समझाइये।

....

....

....

....

2. सामाजिक समस्या की उत्पत्ति को बताइये।

....

....

....

....

NOTES

1.5 सामाजिक समस्याओं के प्रकार

सामाजिक समस्याएँ अनेक प्रकार की होती हैं तथा इनका वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं–

(अ) सम्बन्धित पक्ष एवं क्षेत्र के आधार पर सामाजिक समस्या

वैयक्तिक- (यथा मद्यपान, वेश्यावृत्ति, जुआ, आत्महत्या आदि)

पारिवारिक- (यथा पारिवारिक कलह, घरेलू हिंसा एवं तलाक आदि)

सामुदायिक- (यथा जातिवाद, वर्ग संघर्ष, साम्प्रदायिकता आदि)

राष्ट्रीय- (यथा अपराध, बालापराध, भाषावाद, जनाधिक्य आदि)

अन्तर्राष्ट्रीय - (यथा युद्ध, शीतयुद्ध आतंकवाद आदि)

क्षेत्रीय आधार पर इन्हें क्षेत्रीय, प्रादेशिक, देशव्यापी तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में विभाजित किया जा सकता है।

(ब) समय के आधार पर सामाजिक समस्या – तात्कालिक, अल्पकालिक, दीर्घकालिक

(स) प्रकृति के आधार पर सामाजिक समस्या बहिर्मुखी (जिन्हें स्पष्टत: देखा जा सकता है; जैसे निर्धनता, बेरोजगारी, अपराध आदि) अन्तर्मुखी (जिन्हें स्पष्टत: देखा नहीं जा सकता है; जैसे जातीय पूर्वाग्रह, वेश्यावृति, मद्यपान आदि)

सामाजिक समस्याओं के उपर्युक्त वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि इन्हें अनेक आधारों पर विभाजित किया गया है। समाजशास्त्र में सामाजिक समस्याओं एवं सामाजिक विघटन की दृष्टि से सम्बन्धित पक्ष एवं क्षेत्र के आधार पर किए गए वर्गीकरण को ही सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाता है।

1.6 सामाजिक समस्याओं के कारण

सामाजिक समस्याओं के लिए कोई एक कारण उत्तरदायी नहीं है अपितु प्रत्येक समस्या के पीछे एक जटिल इतिहास रहता है। उदाहरणार्थ, बेरोजगारी, आत्महत्या, अपराध आदि समस्याओं के पीछे एक कारण न होकर अनेक कारण होते हैं।

सामाजिक समस्याओं के कारणों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

1. राब एवं सेल्जनिक के अनुसार, "एक सामाजिक समस्या तब पैदा होती है जबकि एक संगठित समाज की योग्यता लोगों के सम्बन्धों को व्यवस्थित करने में असफल सी प्रतीत होती है और तब इसकी संस्थाएँ विचलित होने लगती है, कानूनों का उल्लंघन होने लगता है, मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित नहीं होते तथा आकांक्षाओं का ढाँचा लड़खड़ाने लगता है।"
2. सामाजिक समस्याएँ मनुष्यों के व्यवहार, जोकि प्राणिशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कारकों पर निर्भर करता है, में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होती हैं। यदि व्यवहार सामाजिक मूल्यों के विरुद्ध होने लगता है तो सामाजिक समस्याएँ पैदा होने लगती हैं।

NOTES

3. सामाजिक परिवर्तन की तीव्र गति के कारण प्रायः सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं क्योंकि कई बार व्यक्ति नवीन परिस्थितियों से अनुकूलन करने में असमर्थ होते हैं।
4. सामाजिक समस्या का प्रमुख कारण आर्थिक होता है। बेरोजगारी न केवल व्यक्तिगत समस्या है वरन् यह आर्थिक समस्या भी है।
5. पारसन्स के अनुसार मनुष्य का भौतिक साधनों के साथ अधूरा समायोजन ही मनुष्य की समस्याओं के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी है।
6. वोल्फ ने जनसंख्या की वृद्धि को ही सामाजिक समस्या का प्रमुख कारण बताया है।
7. इलियट एवं मैरिल ने सामाजिक विघटन को सामाजिक समस्याओं का प्रमुख कारण माना है।
8. ऑगबर्न ने भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति में असमान गति के कारण उत्पन्न सांस्कृतिक विलम्बना को सामाजिक समस्याओं का प्रमुख कारण बताया है।

1.7 सामाजिक समस्याओं के अध्ययन की पद्धतियाँ

सामाजिक समस्याओं का अध्ययन विविध प्रकार की पद्धतियों द्वारा किया गया है।

इन पद्धतियों को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—

गुणात्मक पद्धतियाँ

प्रमुख गुणात्मक पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं—

1. ऐतिहासिक पद्धति– यह पद्धति समाजों, सभ्यताओं, समुदायों, घटनाओं, संस्थाओं व समस्याओं के विकास-क्रम या समय-क्रम में अध्ययन करने की पद्धति है जिसका प्रयोग उत्पत्ति, विकास या रूपान्तर से सम्बन्धित अध्ययनों में किया जाता है। प्रारम्भिक समाजशास्त्रियों ने अपने अध्ययनों में इसी पद्धति को अधिकतर अपनाया है। सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति एवं विकास के अध्ययन में यह पद्धति अत्यधिक उपयोगी है।

2. वैयक्तिक अध्ययन पद्धति–यह किसी सामाजिक इकाई या समस्या के गहन एवं विस्तृत अध्ययन करने की प्रमुख पद्धति है। गुड एवं हैट के अनुसार, "वैयक्तिक अध्ययन पद्धति सामाजिक तथ्यों को संगठित करने का वह ढंग है जिससे अध्ययन किए जाने वाले विषय के एकात्मक स्वभाव का संरक्षण हो सके। थोड़े से भिन्न रूप में यह वह पद्धति है जिसमें किसी इकाई को एक समग्र के रूप में देखा जाता है।" सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में यह पद्धति अत्यधिक उपयोगी है, क्योंकि इससे सामाजिक समस्या के सभी पक्ष स्पष्ट हो जाते हैं।

3. सामुदायिक अध्ययन पद्धति– यह अध्ययन पद्धति जनजातीय समस्याओं एवं विभिन्न सम्प्रदायों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए प्रयुक्त की जाती है, इसके द्वारा जनजातीय कल्याण, श्रम कल्याण, हरिजन कल्याण, महिला कल्याण इत्यादि सामुदायिक समस्याओं का अध्ययन सफलतापूर्वक किया गया है।

4. आदर्श-प्ररूप विश्लेषण पद्धति–यह पद्धति भी कार्य-कारण सम्बन्धों का अध्ययन करने में मैक्स वेबर जैसे विद्वानों द्वारा प्रयुक्त की गई है। आदर्श-प्रारूप एक प्रकार का अवधारणात्मक ढाँचा है जोकि अन्वेषणकर्ता को वास्तविक घटनाओं में समानताओं एवं असमानताओं को मापने में सहायता प्रदान करता है। जो समस्याएँ विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक प्रकृति की होती हैं, उनके अध्ययन में यह पद्धति अधिक उपयोगी है।

गणनात्मक या संख्यात्मक पद्धतियाँ

प्रमुख गणनात्मक या संख्यात्मक पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं—

1. सामाजिक सर्वेक्षण पद्धति–व्यावहारिक समस्याओं के अध्ययन के लिए यह सबसे उपयुक्त पद्धति मानी जाती है तथा इसके द्वारा अपराध, भिक्षावृत्ति, बेरोजगारी, निर्धनता, जनसंख्या वृद्धि आदि विविध प्रकार की समस्याओं का सफल अध्ययन किया गया है। वेल्स ने तो सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषा ही इसी अर्थ में की है। इनके शब्दों में, "श्रमिक वर्ग की निर्धनता तथा समुदाय की प्रकृति और समस्याओं सम्बन्धी तथ्य खोजने वाला अध्ययन ही सामाजिक सर्वेक्षण है।"

2. सांख्यिकीय पद्धति–सांख्यिकीय अनुसन्धान का उद्देश्य भूत और भविष्य की तुलना करना है। सामाजिक समस्याओं के प्रभाव का अध्ययन इस पद्धति द्वारा किया गया है। पी. वी. यंग के अनुसार वैयक्तिक अध्ययन पद्धति और सांख्यिकीय पद्धति एक-दूसरे की पूरक हैं यद्यपि दोनों ही सामाजिक परिस्थिति को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखती हैं तथा उस परिस्थिति में प्रभाव डालने वाले सामाजिक कारणों पर पृथक् रूप से बल देती हैं।

3. समाजमिति–इस पद्धति द्वारा सामाजिक दूरी एवं व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों को मापने का प्रयास किया जाता है। असन्तोष एवं बैर, वैमनस्य जैसी समस्याओं को इसके द्वारा समझा जा सकता है। जे. एल. मोरीनो तथा हेलन हाल जेनिंग्स ने इस पद्धति का निर्माण सामाजिक दूरी एवं पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन के लिए किया है। फ्रैंज के अनुसार, "समाजमिति एक ऐसी पद्धति है जिसे कि समूह में विभिन्न व्यक्तियों के बीच पाए जाने वाले आकर्षण एवं विकर्षण के माप द्वारा सामाजिक स्वरूपों के अन्वेषण एवं संचालन के लिए प्रयोग किया जाता है।"

बोध प्रश्न

1. सामाजिक समस्याओं के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

2. सामाजिक समस्याओं के अध्ययन की पद्धतियाँ बताइये।

....

....

....

....

1.8 सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य

समाजशास्त्र में जहाँ तक सामाजिक मुद्दों एवं समस्याओं के अध्ययन में अपनाए जाने वाले परिप्रेक्ष्यों का सम्बन्ध है, इसके बारे में विद्वानों ने विविध प्रकार के विचार प्रस्तुत किए हैं।

भारत तथा अन्य देशों में सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में अपनाए जाने वाले प्रमुख परिप्रेक्ष्य निम्नलिखित हैं–

1. सामाजिक समस्या परिप्रेक्ष्य–यह सामाजिक समस्याओं, परिस्थितियों एवं विकृत अवस्थाओं को समझने का सर्वाधिक प्राचीन परिप्रेक्ष्य है, इस परिप्रेक्ष्य का प्रयोग सर्वप्रथम पी. ए. हर्मन ने किया था। जे. एल. गिलिन ने भी इस परिप्रेक्ष्य को ही अपनाया है, इसमें सामाजिक समस्या को अलग-अलग भागों में बाँटकर सर्वेक्षण द्वारा समझने का प्रयास किया जाता है। सामान्यतः सर्वेक्षण वृहत् पैमाने पर होता है तथा इसमें काफी गहराई में किसी एक या अधिक समस्याओं (जैसे अपराध, बालापराध, वेश्यावृत्ति इत्यादि) का अध्ययन किया जाता है, इसमें समस्या के कारणों एवं उसके समाज पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन पर अधिक बल दिया जाता है, इसीलिए यह परिप्रेक्ष्य सामाजिक समस्याओं को समझकर उनके उन्मूलन में भी सहायक है। परन्तु इस परिप्रेक्ष्य द्वारा समस्या के अन्तर्सम्बन्धों की उपेक्षा होती है।

2. सामाजिक विघटन परिप्रेक्ष्य–इसमें सामाजिक विघटन का अध्ययन सामाजिक समस्या को विकसित करने वाली प्रक्रिया के रूप में किया जाता है। यह परिप्रेक्ष्य इस बात पर बल देता है कि समाज की विघटित दशा ही समस्याओं के लिए उत्तरदायी है। सर्वप्रथम थॉमस एवं जनैनिकी ने इस परिप्रेक्ष्य द्वारा यूरोप एवं अमेरिका में

पोलिश कृषकों का अध्ययन किया, इससे उन असामंजस्य की अवस्थाओं का पता चलता है जो समस्यामूलक होती हैं। इन देशों में पोलिश कृषकों के सांस्कृतिक असामंजस्य से ही अधिकतर समस्याएँ विकसित हुई थीं। परन्तु फुल्लर एवं मेयर्स जैसे विद्वानों का कहना है कि यह परिप्रेक्ष्य सभी प्रकार की समस्याओं के विश्लेषण में सहायक नहीं है। हिटलर के समय जर्मनी तथा स्टालिन के समय रूस विघटित नहीं थे परन्तु इनमें अनेक सामाजिक समस्याएँ विद्यमान थीं। साथ ही, मानसिक रूग्णता तथा भ्रष्टाचार जैसी समस्याएँ अनिवार्य रूप से सामाजिक विघटन के साथ जुड़ी हुई नहीं हैं। इलियट एवं मैरिल जैसे विद्वानों ने इस परिप्रेक्ष्य को अपनाया है।

3. **सांस्कृतिक विलम्बना परिप्रेक्ष्य**–डब्ल्यू. एफ. ऑगबर्न ने सांस्कृतिक विलम्बना परिप्रेक्ष्य अपनाया है और इसे सामाजिक समस्या का प्रमुख कारण माना जाता है। इनके शब्दों में, "संस्कृति के सभी अंग एक-दूसरे पर निर्भर एवं एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। अत: एक में परिवर्तन दूसरे में परिवर्तन को प्रोत्साहित करता है। संस्कृति के भौतिक एवं अभौतिक पक्षों में असमान गति से परिवर्तन होने और उसके परिणामस्वरूप अभौतिक संस्कृति के लँगड़ा जाने तथा फिर भौतिक संस्कृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया से समाज में परिवर्तन आते हैं।" सांस्कृतिक विलम्बना परिप्रेक्ष्य विशेष रूप से इस बात पर बल देता है कि आधुनिक समाजों में तकनीकी विकास के साथ राजनीतिक, शैक्षणिक, पारिवारिक व धार्मिक संस्थाएँ परिवर्तित तो होती हैं परन्तु यह परिवर्तन तकनीकी परिवर्तन से पिछड़ जाता है। परन्तु सांस्कृतिक विलम्बना परिप्रेक्ष्य भी सभी प्रकार की समस्याओं को समझने में सहायक नहीं है।

4.**सामुदायिक परिप्रेक्ष्य**– इस परिप्रेक्ष्य में सामुदायिक अध्ययनों द्वारा सामाजिक समस्याओं को समझने पर बल दिया जाता है तथा अधिकांश मानवशास्त्रीय अध्ययनों में इसी परिप्रेक्ष्य को अपनाया जाता है, इस परिप्रेक्ष्य द्वारा अमेरिका जैसे विकसित देशों में समुदाय की सामाजिक दशाओं (जैसे समुदाय की रूपरेखा, संरचना, मूल्य परिवर्तन की दशा, विभिन्न वर्गों में चेतना इत्यादि) के अध्ययन द्वारा समुदाय में प्रचलित समस्याओं को समझने का प्रयास किया जाता है। परन्तु यह अध्ययन राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं के अध्ययन में अधिक उपयोगी नहीं है।

5. **मूल्य संरचना परिप्रेक्ष्य**– इसमें मूल्यों में संघर्ष पर बल दिया जाता है तथा यह देखने का प्रयास किया जाता है कि मूल्य किस प्रकार सामाजिक समस्याओं को विकसित करते हैं और किस प्रकार इन समस्याओं के निवारण में बाधा उपस्थित करते हैं, इसीलिए इसे 'मूल्य संघर्ष' (Value conflict) अथवा 'मूल्य व्यवस्था' (Value system) परिप्रेक्ष्य भी कहा जाता है। फुल्लर एवं मेयर्स ने सामाजिक समस्याओं के अध्ययन हेतु इसी परिप्रेक्ष्य का प्रयोग किया है। इनका कहना है कि व्यक्तियों की मनोवृत्तियों, मनोभाव एवं व्यवहार के स्वरूप ही सामाजिक मूल्य निर्धारित करते हैं। इनकी प्रतिकूल अवस्था सामाजिक समस्या को जन्म देती है। हर्मन ने सामाजिक परिवर्तन की उपेक्षा के कारण इस परिप्रेक्ष्य की आलोचना की है।

6.**वैयक्तिक विचलन परिप्रेक्ष्य**– विचलन का अर्थ सामाजिक आदर्शों के अनुकूल व्यवहार न करना है। यह एक प्रकार से सामाजिक असामंजस्य स्थिति है तथा असामान्य व्यवहार से भिन्न है। यह परिप्रेक्ष्य विचलनकर्ताओं (Deviants) के व्यवहार एवं प्रेरक कारकों के अध्ययन पर बल देता है जोकि समस्याओं को विकसित करने में सहायक है, इसमें विशेषत: दो बातों पर बल दिया जाता है— प्रथम, वैयक्तिक विचलन किस प्रकार से विकसित होता है, तथा द्वितीय, सामाजिक समस्याओं में किस प्रकार का वैयक्तिक विचलन सामान्यत: निहित होता है। होर्टन एवं लेस्ले ने सामाजिक समस्याओं को समझने में इस परिप्रेक्ष्य को अपनाया है।

7. **अप्रतिमानता परिप्रेक्ष्य**– मर्टन को इस परिप्रेक्ष्य का प्रवर्तक माना जाता है। अप्रतिमानता समाज या समूह के आदर्शों के कमजोर होने या उनमें किसी प्रकार की भ्रान्ति की स्थिति को कहते हैं। दुर्खीम ने भी श्रम-विभाजन के असामान्य प्रकार को समझने तथा आत्महत्या की व्याख्या करने में इस परिप्रेक्ष्य को अपनाया है। अप्रतिमानता में सांस्कृतिक संरचना टूट जाती है क्योंकि सांस्कृतिक लक्ष्यों व उन्हें प्राप्त करने वाले संस्थागत साधनों में सामंजस्य समाप्त हो जाता है। मर्टन एवं निस्बेत ने अप्रतिमानता की स्थिति को सामाजिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी माना है क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रस्थितियों व भूमिकाओं में असामंजस्य की स्थिति पैदा हो जाती है। परन्तु सभी समस्याओं को इस परिप्रेक्ष्य द्वारा नहीं समझा जा सकता क्योंकि अनेक समस्याएँ तनाव व असामंजस्य के कारण विकसित नहीं होती हैं।

8.सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य–सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, सामाजिक व्यवहार एवं समस्याओं के अध्ययन का वह सिद्धान्त है जो इन्हें सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में समझने पर बल देता है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि यह परिप्रेक्ष्य सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों द्वारा सामाजिक व्यवहार एवं समस्याओं को समझने का प्रयास करता है।

समाजशास्त्र के अतिरिक्त अन्य सामाजिक विज्ञानों, विशेष रूप से शिक्षाशास्त्र एवं मनोविज्ञान में भी यह परिप्रेक्ष्य अत्यधिक प्रचलित है। उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि हमें इस बात का अध्ययन करना है कि क्या निर्धनता से मानसिक असन्तुलन विकसित होता है अथवा क्या मानसिक असन्तुलन व्यक्ति को निर्धनता की ओर धकेल देता है? ऐसे मुद्दों के अध्ययन हेतु यह परिप्रेक्ष्य अत्यन्त उपयोगी है, इस परिप्रेक्ष्य की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित है–

(i) उपयुक्त व्यवहार के बारे में अपेक्षाएँ सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिमानों (आदर्शों) द्वारा निर्धारित होती हैं। यह एक ही समाज में अथवा विभिन्न समाजों में अलग-अलग हो सकती हैं।

(ii) अत्यधिक सबल प्रतिमान ही कानून का आधार होते हैं और इसलिए इनका उल्लंघन किए जाने पर समाज द्वारा दण्ड दिया जाता है।

(iii) समाज में पाई जाने वाली समस्याओं, आक्रमक व्यवहार तथा हिंसा समाज के इतिहास, परम्परा एवं संस्कृति का प्रकार्य होता है। इनके लिए वृहत् स्तर की सामाजिक शक्तियाँ (विजातीयता, जनसंख्या की गतिशीलता, हिंसा की उप-संस्कृति, असमानताएँ, आर्थिक व्यवस्था इत्यादि) उत्तरदायी होती हैं।

(iv) यह परिप्रेक्ष्य व्यक्ति के आन्तरिक अथवा मनोवैज्ञानिक कारणों के स्थान पर बाहरी शक्तियों को सामाजिक व्यवहार एवं समस्याओं का कारण मानता है।

सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को तीन प्रमुख उप-भागों में विभाजित किया गया है–

(i) **परिवार परिप्रेक्ष्य**–यह परिप्रेक्ष्य असामान्य व्यवहार एवं समस्याओं का कारण परिवार के सदस्यों में पाई जाने वाली अन्तर्क्रियाओं और सम्बन्धों को मानता है, इसमें अन्तर-पीढ़ी, संरचनात्मक, चतुरता तथा अनुभव परिप्रेक्ष्यों को सम्मिलित किया जाता है।

(ii) **विभेदक परिप्रेक्ष्य**–यह परिप्रेक्ष्य व्यक्तियों को शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, सुविधाओं की असमानता अथवा लिंग, प्रजातीय, आयु, धर्म, अक्षमता इत्यादि के आधार पर किए जाने वाले भेदभाव को समस्याओं का कारण मानता है।

(iii) **सामाजिक प्रभाव एवं ऐतिहासिक घटनाओं सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य**–यह समाज के लचीले एवं असंगत मूल्यों को तथा स्पष्ट सांस्कृतिक प्रतिमानों के अभाव को सामाजिक समस्याओं का कारण मानता है।

9.राजनीतिक अर्थव्यवस्था परिप्रेक्ष्य–सामाजिक मुद्दों एवं समस्याओं के विश्लेषण का दूसरा प्रमुख परिप्रेक्ष्य राजनीतिक अर्थव्यवस्था परिप्रेक्ष्य है जो राजनीतिक एवं आर्थिक कारणों को अधिक प्राथमिकता देता है। यह परिप्रेक्ष्य मुख्य रूप से उत्पादन, वितरण, वस्तुओं के उपभोग, राज्य की भूमिका इत्यादि कारकों पर बल देता है। समाजशास्त्रियों ने इस परिप्रेक्ष्य द्वारा राजनीतिक-आर्थिक गतिशीलता को समझने तथा इसके परिणामस्वरूप विकसित होने वाली समस्याओं की प्रकृति को ज्ञात करने का प्रयास किया है।

पश्चिमी समाजों में इस परिप्रेक्ष्य द्वारा वर्ग संरचना के आधार पर समस्याओं को समझने का प्रयास किया गया है। यद्यपि इस परिप्रेक्ष्य का एक लम्बा इतिहास रहा है तथापि इसका अधिकाधिक प्रयोग पिछले कुछ दशकों, विशेष रूप से वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के पश्चात्, में किया जाने लगा है। यह परिप्रेक्ष्य राजनीति, समाज तथा अर्थव्यवस्था की पारस्परिक अन्तर्क्रिया से सम्बन्धित है तथा सामाजिक विज्ञानों में इसका प्रयोग एडम स्मिथ, जॉन स्टुअर्ट मिल, डेविड रिकार्डो, कार्ल मार्क्स इत्यादि विद्वानों ने किया है। इन विद्वानों के अनुसार राजनीति एवं अर्थव्यवस्थाएँ आन्तरिक रूप से सम्बन्धित होती हैं।

इस परिप्रेक्ष्य से पहले राजनीति और अर्थव्यवस्था को अलग-अलग देखा जाता था। यह इन दोनों में संश्लेषण के परिणामस्वरूप विकसित परिप्रेक्ष्य है। यह अध्ययन का ऐसा क्षेत्र भी उपलब्ध कराता है जिसमें अनेक विचारकीय दृष्टिकोणों एवं सैद्धान्तिक मान्यताओं का अध्ययन किया जा सकता है। अन्त:शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य के बढ़ते हुए प्रचलन से राजनीतिक अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य को भी प्रोत्साहन मिला है।

अनेक विद्वानों ने इसे मानव घटनाओं को समझने का विश्व का प्रमुख अन्त:शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य कहा है। यह परिप्रेक्ष्य व्यक्तियों, संस्कृतियों, समाजों तथा विश्व व्यवस्था पर राजनीतिक एवं आर्थिक शक्तियों के प्रभाव को स्वीकार करता है तथा इस बात पर बल देता है कि यही शक्तियाँ इनके निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, इस परिप्रेक्ष्य का महत्व इस तथ्य से स्पष्ट है कि अनेक अमेरिकी विश्वविद्यालयों में मानवशास्त्र, संचार, अर्थशास्त्र, लैंगिक अध्ययन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, दर्शनशास्त्र, राजनीतिक विज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षाशास्त्र विभागों में राजनीतिक अर्थव्यवस्था का एक अलग प्रश्न-पत्र पढ़ाया जाता है।

वस्तुत: उपर्युक्त सभी परिप्रेक्ष्य किसी एक कारक या परिस्थिति को समस्या उत्पन्न करने के लिए अपरिहार्य कारक या परिस्थिति मानते हैं जोकि ठीक नहीं है। आज के जटिल युग में यह स्पष्ट हो गया है कि विभिन्न समस्याएँ परस्पर जुड़ी होती है तथा प्रत्येक समस्या के अनेक कारक होते हैं। ये कारक भी परस्पर जुड़े हुए होते हैं। अत: आज के जटिल समाजों में बहुकारकीय परिप्रेक्ष्य द्वारा ही सामाजिक समस्याओं को समझा जा सकता है।

1.9 सामाजिक समस्याओं का समाधान

सामाजिक समस्याओं के हल में निम्न उपाय प्रभावकारी हो सकते हैं–

1. 'तनावपूर्ण समस्यात्मक' स्थितियों की पुनर्व्याख्या– तनावपूर्ण एवं समस्याजनक परिस्थितियों पर पूर्व नियन्त्रण द्वारा सामाजिक समस्या को हल किया जा सकता है। हमारे समाज की अनेक अन्त: समूह सम्बन्धों की समस्याएँ, भेदभाव की भावना, भ्रान्तिपूर्ण विश्वासों तथा अपमानजनक प्रवृत्तियों का परिणाम होती हैं। जिन समूहों के प्रति भेदभाव की भावना समाज में पाई जाती है, यदि उनकी नए सिरे से परिभाषा की जाए तो प्राय: अनेक अन्त: समूहों के सम्बन्धों की समस्याएँ हल हो सकती हैं। कुछ स्थितियों को यदि सामाजिक समस्या के रूप में स्वीकार न किया जाए तो ये स्थितियाँ स्वयं समाप्त हो सकती हैं। उदाहरणार्थ अमेरिका में व्यापारिक वेश्यावृत्ति समाप्त हो गई है क्योंकि वेश्याओं की माँग बहुत कम हो गई है तथा स्त्रियों ने अपनी आय बढ़ाने के लिए अच्छे संस्थानों में नौकरी करनी शुरू कर दी है।

2.व्यक्तियों के व्यवहारों में परिवर्तन–क्योंकि अनेक समस्याएँ मूल्यों से सम्बन्धित है अत: इन मूल्यों एवं व्यक्तियों के व्यवहार को परिवर्तित करके भी सामाजिक समस्या के प्रभाव को कम किया जा सकता है। मनुष्य के समस्याजनक व्यवहार को तार्किक दृष्टि से समझाकर उसे प्रचार के साधनों द्वारा बदला जा सकता है। कभी-कभी व्यक्तियों के समस्याजनक व्यवहार को बदलना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में समुचित शिक्षा व मानसिक परिवर्तन के द्वारा कम से कम बच्चों के व्यवहार को परिवर्तित कर उन्हें समस्या से मुक्त किया जा सकता है।

3. समस्याजनक व्यवहार पर वैधानिक नियन्त्रण– विभिन्न कानूनों को सख्ती से लागू करके या वर्तमान कानूनों में समुचित संशोधन कर अनेक समस्याजनक व्यवहारों को नियन्त्रित किया जा सकता है। समस्याजनक व्यवहार के लिए सरकार दण्ड तो देती ही है, लेकिन साथ ही दण्डनीय व्यवहार करने वाले व्यक्तियों की पुर्स्थापना का प्रयत्न भी करती है। यह दोहरी नीति समस्याओं को सुलझाने की अपेक्षा उन्हें प्रोत्साहन देती है। अत: ऐसे व्यवहारों पर रोक लगाने के लिए प्रभावकारी कानून अनिवार्य है।

4. विद्वानों की सेवाओं का उपयोग–सामाजिक समस्याओं का समाधान करने में विभिन्न विद्वानों (जैसे मनोचिकित्सक, सामाजिक कार्यकर्ता, समूह संगठनकर्ता, समूह कार्यकर्ता, समूह प्रशासक, शिक्षावेत्ताओं आदि) की सेवाओं को उपयोग में लाया जा सकता है। ये विद्वान् विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण कर सामाजिक समस्या के उपचार के साधन बता सकते हैं। हमारे समाज में सामाजिक वैज्ञानिक की पूर्ण क्षमताओं का प्रयोग सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए नहीं किया जा रहा है।

5. सामाजिक संरचना में परिवर्तन–प्राय: सामाजिक संरचना व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करती है। कुछ सामाजिक समस्याओं का हल सामाजिक संरचना में परिवर्तन द्वारा सम्भव हो सकता है। समूह की संरचना में ऐसी स्थितियाँ सर्जित की जा सकती हैं जिनसे कि समूह के सदस्य सदैव सद्भावनापूर्ण वातावरण में आपस में सहयोगात्मक रूप से रहें तथा समाज की मान्यताओं के प्रतिकूल व्यवहार ही न करें।

6. समाजवादी समाज की स्थापना–कार्ल मार्क्स ने समस्याओं से युक्त समाज के निर्माण के लिए पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के स्थान पर साम्यवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना का सुझाव दिया है, लेकिन केवल मात्र अर्थव्यवस्था को बदल देने से समाज की समस्त समस्याओं का हल नहीं हो सकता, इसके लिए वास्तविक समाजवादी समाज की स्थापना सहायक हो सकती है जिसमें आर्थिक एवं अन्य असमानताएँ कम से कम हों।

7. धार्मिक शिक्षा–कुछ विद्वानों का विचार है कि धार्मिक शिक्षा के प्रसार द्वारा भी अनेक समस्याओं को हल किया जा सकता है। सोरोकिन तथा टॉयनबी आदि विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि धार्मिक मूल्यों को स्वीकार करके ही अनेक समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है।

8. सामाजिक सेवाएँ–विभिन्न प्रकार की सामाजिक सेवाओं के द्वारा भी समाज की समस्याओं को हल करने में सहायता मिलती है क्योंकि ये तनावपूर्ण स्थितियों के प्रभाव को कम करने के महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकती हैं। सामाजिक समस्याओं से पीड़ित व्यक्ति सामाजिक सेवाओं का संरक्षण प्राप्त कर सकते हैं और समस्याजनक स्थिति के प्रभाव से मुक्त हो सकते हैं।

वास्तव में, सामाजिक समस्याओं का समाधान इतना सरल नहीं है जितना कि यह लगता है। अगर इतना सरल होता तो अनेक समाज समस्याओं से मुक्त होते। अनेक समस्याओं की जड़ें हमारी भ्रांतियाँ एवं अन्धविश्वास हैं। अत: उचित शिक्षा एवं ज्ञान के प्रसार से ऐसे अन्धविश्वासों को समाप्त करने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाया जा सकता है तथा अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है, इस सन्दर्भ में यही बात अत्यन्त उल्लेखनीय है कि समस्याओं का समाधान केवल मात्र सरकारी प्रयासों द्वारा सम्भव नहीं है क्योंकि इसके लिए जन-सहयोग का होना अत्यन्त आवश्यक है।

1.10 शब्दावली

सामाजिक समस्या – सामाजिक समस्या से अभिप्राय उस परिस्थिति अथवा दशा से है जिसे समाज हानिकारक मानता है तथा उसमें सुधार की आवश्यकता महसूस करता है। यह ऐसी दशाओं की समग्रता है जिन्हें नैतिक आधार पर समाज में अधिकांश व्यक्ति अनुचित मानते है।

विशुद्ध विज्ञान –जिस विज्ञान का उद्देश्य केवल नवीन ज्ञान प्राप्त करना अथवा प्राप्त ज्ञान में किसी प्रकार का संशोधन करना होता है उसे विशुद्ध विज्ञान कहा जाता है।

व्यावहारिक विज्ञान–व्यावहारिक विज्ञान उस विज्ञान को कहा जाता है जिसका उद्देश्य प्राप्त ज्ञान का प्रयोग सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु करना होता है। ऐसे विज्ञानों में ज्ञान प्राप्ति एक साधन है, जबकि समस्या का समाधान साध्य है।

सामाजिक विघटन–सामाजिक विघटन वह प्रक्रिया है, जिसके कारण समूह के सदस्यों के बीच पाए जाने वाले सम्बन्ध टूट जाते हैं अथवा नष्ट हो जाते हैं। सामाजिक विघटन की स्थिति में मतैक्य एवं उसके उद्देश्य की एकता भंग हो जाती है तथा सामाजिक संरचना के अस्त-व्यस्त होने के कारण व्यक्तियों को जोड़ने वाले सम्बन्ध नष्ट होने लगते हैं।

सामाजिक संरचना – किसी वस्तु की संरचना से हमारा तात्पर्य उसके भागों में सापेक्षिक रूप से पाए जाने वाले स्थायी अन्तर्सम्बन्धों से होता है। सामाजिक संरचना का निर्माण अन्तर्क्रिया के परिणामस्वरूप व्यक्तियों में विकसित सामाजिक सम्बन्धों द्वारा होता है।

अप्रतिमानता – अप्रतिमानता आदर्शविहीनता अथवा आदर्शात्मक संरचना के अव्यवस्थापन की एक सामाजिक दशा है अर्थात् यह आत्यन्तिक अभिलाषा, लालच व अनगिनत आकांक्षाओं की सामूहिक नैतिक व्यवस्था द्वारा नियन्त्रण की असफलता है, इस अवधारणा के साथ दुर्खीम, मर्टन तथा पारसन्स जैसे प्रमुख समाजशास्त्रियों के

नाम जुड़े हुए हैं।

सांस्कृतिक विलम्बना – सांस्कृतिक विलम्बना ऑगबर्न द्वारा प्रतिपादित अवधारणा है। भौतिक संस्कृति में तीव्रता से परिवर्तन होते हैं, जबकि अभौतिक संस्कृति में धीमी गति से, इसीलिए भौतिक संस्कृति अभौतिक संस्कृति से आगे निकल जाती है। इन दोनों में होने वाले अन्तराल अथवा पिछड़ को सांस्कृतिक विलम्बना कहते हैं, इस स्थिति में अभौतिक संस्कृति भौतिक संस्कृति के साथ तालमेल बनाने का प्रयास करती है।

परिप्रेक्ष्य – परिप्रेक्ष्य का अर्थ एक विशिष्ट नजरिया (देखने का तरीका) है जिसके द्वारा समाजशास्त्री अपने अध्ययन को समन्वित व सुव्यवस्थित करता है। प्रत्येक समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य समस्या के अध्ययन के लिए कुछ सैद्धान्तिक कल्पनाओं का सहारा लेता है जिनसे अगर समस्या या इकाई के सम्पूर्ण व्यवहार का नहीं तो कम-से-कम उसकी प्रमुख विशेषताओं व प्रकृति का पता लग जाता है। परिप्रेक्ष्य के आधार पर ही समाजशास्त्री सामाजिक यथार्थता में पाई जाने वाली नियमबद्धता अथवा अनियमबद्धता की व्याख्या करता है।

1.11 सारांश

इस इकाई में हमने मानव समाज के इतिहास की विविध प्रकार की समस्याओं एवं चुनौतियों का अध्ययन किया है। सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित, विकसित-विकासशील समाज की समस्याओं को सामाजिक विघटन के प्रभाव का कारण माना है। हमने सामाजिक समस्या का अर्थ, प्रकृति, प्रकार, कारण एवं समाधान के उपायों को समझाने का प्रयास किया है।

1.12 अभ्यास प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक समस्या किसे कहते हैं? इसकी प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
2. सामाजिक समस्या को परिभाषित कीजिए। सामाजिक समस्याओं के सामान्य कारणों की विवेचना कीजिए।
3. सामाजिक समस्या क्या है? इसके अध्ययन के परिप्रेक्ष्य स्पष्ट कीजिए।
4. सामाजिक समस्या का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके प्रमुख प्रकार बताइए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक समस्या से आप क्या समझते है? सामाजिक समस्याओं के परिणामों की विवेचना कीजिए।
2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–
   (अ) सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति
   (ब) सामाजिक समस्याओं के प्रमुख तत्व
   (स) सामाजिक समस्याओं के अध्ययन का सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सामाजिक अनुसंधान की अध्ययन पद्धतियाँ कितनी हैं–
   (अ) दो (ब) तीन (स) चार (द) पाँच

उत्तर 1. (अ)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Goode, W. J. and P. K. Hatt, Methods in Social Research, New York : McGraw- Hill Book Company, 1952.

Raab E. and G. J. Selznick, Major Social Problems, Illinois : Row, Peterson, 1959.

Green, A. W., Sociology : An Analysis of Life in Modern Society, New York : McGraw-Hill, 1968.

Horton, Paul B. and Gerald R. Leslie, The Sociology of Social Problems, New York : Appleton - Century - Crofts, 1955.

Fuller, Richard C. and Richard R. Myers, "Some Aspects of a Theory of Social Problems" in American Sociological Review, February 1941, Vol. 6, No. 27.

Merton, Robert K. and Robert A. Nisbet (eds.), Contemporary Social Problems, New York : Harcourt, Brace, Jovanovicn, 1971.

Wells, A. F., The Local Survey in Great Britain, London : George Allen and Unwin Ltd., 1935.

Young, P. V., Scientific Social Surveys and Research, Bombay : Asia Publishing House, 1960.

Moreno, J. L. and Helen Hall Jennings, Quoted in W. J. Goode and P. K. Hatt, Methods in Social Research, New York : McGraw-Hill Book Company, 1952.

Franz, J. G., "Survey of Sociometric Techniques with an Annotated Bibliography" in Sociometry, Vol. II, October, 1939.

●●●

NOTES

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

अध्याय–2 नगरीय समाज एवं अपराध
(URBAN SOCIETY & CRIME)

NOTES

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 नगरीय समाज की पारिस्थितिकी

2.3 अपराध

2.3.1 अपराध का अर्थ व परिभाषा

2.4 अपराधों का वर्गीकरण

2.5 अपराधों के सामान्य कारक

2.6 अपराध के सिद्धान्त

2.7 भारत में अपराध

2.8 शब्दावली

2.9 सारांश

2.10 अभ्यास प्रश्न

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

भारत गाँवों का देश माना जाता है। पिछले कुछ दशकों में नगरीय जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है, इसका प्रमुख कारण नगरीकरण की प्रक्रिया है। नगरीकरण से अभिप्राय समय के साथ-साथ कुल जनसंख्या में नगरीय जनसंख्या के भाग में वृद्धि से है। भारत में नगरीकरण की गति दक्षिण-पूर्व के अन्य देशों की अपेक्षा तीव्र है। 1901 में भारत की कुल जनसंख्या में नगरीय जनसंख्या का अनुपात केवल 10.8 प्रतिशत था जो 1951 में बढ़कर 17.3 प्रतिशत हो गया। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में नगरीय जनसंख्या का अनुपात 27.8 प्रतिशत है। 1,00,000 और अधिक जनसंख्या वाले नगरों की कुल संख्या 1,78,224 है। नगरीकरण का सामाजिक परिवर्तन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है, इसीलिए नगरीकरण की प्रक्रिया से नगरीय समाज की सामाजिक संरचना में अनेक प्रकार के परिवर्तन होने प्रारम्भ हो जाते हैं। इन परिवर्तनों में कुछ परिवर्तन ऐसे हैं जो सामाजिक समस्याओं में वृद्धि के लिए उत्तरदायी माने जाते हैं। ग्रामीण समाज की तुलना में नगरीय समाज में सामाजिक समस्याएँ अधिक पाई जाती हैं, इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य नगरीय समाज की परिस्थितिकी को संक्षेप में समझाना है।

2.1 प्रस्तावना

भारतीय समाजशास्त्रियों की प्रमुख रुचि नगरीय अध्ययनों की अपेक्षा ग्रामीण समुदायों के अध्ययनों में अधिक रही है तथा आज भारतीय सामाजिक संस्थाओं के बारे में हमारा ज्ञान अधिकतर ग्रामीण समुदायों में हुए अध्ययनों पर ही आधारित है। सम्पूर्ण भारतीय समाज के बारे में सामान्यीकरण करने के लिए भी इन्हीं अध्ययनों, जोकि नि:संकोच मूल्यवान हैं, को आधार मान लिया जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि हम भारतीय समाज का वास्तविक चित्र प्रस्तुत नहीं कर सकते। एम. एस. ए. राव के अनुसार भारतीय समाज में नगरीय समुदायों

NOTES

की उपेक्षा के दो प्रमुख कारण रहे हैं– प्रथम, भारतीय समाजशास्त्रियों के एक वर्ग में यह भावना विद्यमान है कि भारतीय समाज के सन्दर्भ में ग्रामीण एवं नगरीय में अन्तर कोई अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, अतः नगरीय अध्ययनों का कोई औचित्य नहीं है। द्वितीय, यह तर्क भी दिया गया है कि भारत में गाँव एवं परम्परागत नगर में किसी प्रकार की द्वैतता नहीं है क्योंकि दोनों एक ही सभ्यता के अंग हैं, इस दृष्टिकोण को आज स्वीकार नहीं किया जाता है। नगरीय समाज जिसे आज स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि धर्म, जाति एवं नातेदारी के क्षेत्र में नगरों में गाँवों की अपेक्षा निश्चित रूप से भिन्नताएँ पाई जाती हैं। यद्यपि के. चन्द्रशेखरइया के अनुसार भारत में नगरों के जनांकिकीय अध्ययन 1960 के दशक में ही प्रारम्भ हो गए थे, तथापि एम. एस. ए. राव के विचारानुसार समाजशास्त्रियों द्वारा ग्रामीण-नगरीय प्रवसन, नगरीय विकास एवं गन्दी बस्तियों जैसी समस्याओं को समझने हेतु नगरीय अध्ययनों का प्रारम्भ 1970 के दशक में हुआ। नगरीय समाज में बढ़ती हुई समस्याओं (जैसे अपराध, समूह संघर्ष, प्रदूषण, बाल अपराध, भिक्षावृत्ति, असामाजिक समूह, वेश्यावृत्ति, मलिन बस्तियाँ, अस्पृश्यता, भ्रष्टाचार, इत्यादि) के परिणामस्वरूप समाजशास्त्रियों की इन समस्याओं के अध्ययन में रुचि बढ़ी है। नगरीय समाज में प्राथमिक समूहों द्वारा नियन्त्रण की शिथिलता, व्यक्तिवादिता, भौतिकवादी संस्कृति तथा अनामत्व (गुमनामी) को सामाजिक समस्याओं में वृद्धि के लिए उत्तरदायी माना जाता है, इसीलिए नगरीय समाज को समझने हेतु विभिन्न सामाजिक समस्याओं को समझना आवश्यक है।

2.2 नगरीय समाज की पारिस्थितिकी

पारिस्थितिकी शब्द से अभिप्राय एक ऐसे जाल से है जहाँ भौतिक एवं जैविक व्यवस्थाएँ तथा प्रक्रियाएँ घटित होती हैं और मनुष्य भी इसका एक अंग होता है। पर्वत तथा नदियाँ, मैदान तथा सागर और जीवजन्तु ये सब पारिस्थितिकी के अंग हैं। पारिस्थितिकी प्राणि-मात्र और उसके पर्यावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन है, इसे विज्ञान का एक ऐसा बहुवैषयिक क्षेत्र माना जाता है जिसमें आनुवंशिकी, समाजशास्त्र, नृविज्ञान आदि अनेक विषयों से सुव्यवस्थित रूप से ज्ञान लिया जाता है। समाजशास्त्री होने के नाते हमारी रुचि मानव और उसके पर्यावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्ध में है। यहाँ पर्यावरण से तात्पर्य प्राकृतिक पर्यावरण से है जिसमें वन, नदियाँ, झील, समुद्र, पहाड़, पौधे आदि आते हैं। चूँकि पारिस्थितिकीय परिवर्तन मानव जीवन पर गहरा प्रभाव डालता है, इसलिए समाजशास्त्र में इसका अध्ययन किया जाता है। पारिस्थितिकी शब्द वनस्पति विज्ञान से लिया गया है जिसमें इसका प्रयोग वनस्पति एवं उसके भौतिक पर्यावरण के बीच पाए जाने वाले सम्बन्धों के लिए किया जाता है।

सामान्य अर्थों में पारिस्थितिकी को भौतिक या प्राकृतिक शक्तियों तक ही सीमित रखा जाता है। यह सही नहीं है। पारिस्थितिकी केवल प्राकृतिक शक्तियों तक सीमित न होकर प्राकृतिक एवं जैविक व्यवस्थाओं में अन्तःसम्बन्ध पर बल देती है। मानवीय समाज पर चूँकि पारिस्थितिकी का गहरा प्रभाव पड़ता है इसलिए इसे केवल प्राकृतिक शक्तियों तक सीमित करना उचित नहीं है। बहुत बड़ी सीमा तक किसी समाज की संस्कृति मानवीय विचारों तथा व्यवहार पर पारिस्थितिकी के गहन प्रभाव को प्रतिबिम्बित करती है। व्यवसाय, भोजन, वस्त्र, आवास, धर्म, कला, आचार, विचार एवं इसी प्रकार के मानव निर्मित अनेक सांस्कृतिक सृजन पारिस्थितिकी से ही प्रभावित होते हैं। किसी स्थान की पारिस्थितिकी पर वहाँ के भूगोल तथा जलमण्डल की अन्तर्क्रियाओं का भी प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, मरुस्थलीय प्रदेशों में रहने वाले जीव-जन्तु अपने आपको वहाँ की परिस्थितियों (न्यून वर्षा, पथरीली अथवा रेतीली मिट्टी तथा अत्यधिक तापमान) के अनुरूप अपने आप को ढाल लेते हैं, इसी प्रकार, पारिस्थितिकीय कारक इस बात का निर्धारण भी करते हैं कि किसी स्थान विशेष पर लोग कैसे रहेंगे, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पारिस्थितिकी केवल प्राकृतिक शक्तियों तक ही सीमित नहीं है।

यदि हम किसी नगरीय पारिस्थितिकी को देखें तो उसका वर्णन सामाजिक विजातीयता, द्वितीयक समितियों की प्रमुखता, द्वितीयक नियन्त्रण, शिक्षा एवं रोजगार के अधिक अवसर, अधिक सामाजिक गतिशीलता, ऐच्छिक साहचर्य, व्यक्तिवादिता, स्थानीय पृथक्करण इत्यादि विशेषताओं के आधार पर कर सकते हैं। कारखानों, गैर-कृषि व्यवसायों की प्रधानता, बहुमंजली इमारतें, शिक्षा एवं व्यवसाय की अधिक सुविधाएँ आदि विशेषताएँ भी नगरीय समुदाय में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं। ये सभी विशेषताएँ ऐसी हैं जो गाँव में नहीं पाई जातीं। उदाहरणार्थ, नगरों में पाई जाने वाली विजातीयता (विचारों में विविधता) से भिन्न गाँव में सजातीयता (एक-जैसे विचार) अधिक पाई जाती है, द्वितीयक समितियों का अभाव पाया जाता है, प्राथमिक नियन्त्रण अधिक महत्वपूर्ण

होता है, शिक्षा एवं रोजगार के कम अवसर उपलब्ध होते हैं जिसके कारण गतिशीलता का भी अभाव पाया जाता है। नगरों का ऐच्छिक साहचर्य, व्यक्तिवादिता तथा स्थानीय पृथक्करण जैसी विशेषताएँ भी गाँवों में नहीं पाई जाती हैं।

नगरीय पारिस्थितिकी के सन्दर्भ में एक नवीन अवधारणा भी सामने आई है जिसे 'गेटेड समुदाय' कहा जाता है, इसका अर्थ एक ऐसे समृद्ध प्रतिवेशी समुदाय का निर्माण है जो अपने परिवेश से दीवारों तथा प्रवेश द्वारों से अलग होता है अर्थात् जहाँ प्रवेश तथा निकास नियन्त्रित होता है। अधिकांश ऐसे समुदायों की अपनी समानान्तर नागरिक सुविधाएँ (जैसे पानी और बिजली की सप्लाई, सुरक्षा व्यवस्था इत्यादि) होती हैं, इस प्रकार के 'गेटेड समुदाय' सभी नगरो एवं महानगरों में देखे जा सकते हैं। ऐसे 'गेटेड समुदाय' अनेक कारणों से विकसित हुए हैं जिनमें सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान प्रमुख है। पूरे विश्व में नगरीय आवासीय क्षेत्र प्रजाति, नृजातीयता, धर्म तथा अन्य कारकों द्वारा विभाजित होते हैं। सामाजिक सांस्कृतिक पहचानों के बीच तनाव के प्रमुख परिणाम पृथक्कीकरण की प्रक्रिया के रूप में भी उजागर होते हैं। पहले मध्य यूरोपीय शहरों में यहूदियों की बस्तियों में इस प्रकार की प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई। आज के सन्दर्भ में यह विशिष्ट धर्म, नृजाति, जाति या सम्मान की पहचान वाले लोगों के एक साथ रहने को इंगित करता है। मिश्रित विशेषताओं वाले पड़ोस का समान लक्षणों वाले पड़ोस में बदल जाना 'घैटोकरण' कहलाता है। इन समुदायों को विकसित करने में बढ़ते हुए अपराधों के कारण असुरक्षा की भावना भी प्रमुख मानी जाती है।

बोध प्रश्न

1. नगरीय समाज की परिस्थितिकी की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

2. नगरीय समाज से आप क्या समझते हैं।

....

....

....

2.3 अपराध

अपराध एक सार्वभौमिक समस्या है जोकि प्रत्येक समाज में किसी न किसी रूप में पाई जाती है। प्रत्येक समाज में सदस्यों के हितों व सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए कुछ नियम बनाए जाते हैं। समाज द्वारा निर्मित इन नियमों का पालन करना सभी के लिए आवश्यक होता है, जो इन नियमों का उल्लंघन करता है, उसको समाज द्वारा दण्डित किया जाता है, इस प्रकार, वह कार्य, जो कानून की दृष्टि से दण्डनीय होते हैं, अपराध की श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। आधुनिक युग में राज्य के नियमों का उल्लंघन अपराध कहलाता है, जबकि प्राचीन समय में ईश्वरीय व्यवस्था का उल्लंघन अपराध कहलाता था। समाजशास्त्र की दृष्टि से, वह सभी कार्य, जो सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध होते हैं, अपराध की श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

2.3.1 अपराध का अर्थ एवं परिभाषाएँ

सरल शब्दों में अपराध अपराधी-कानून का उल्लंघन है। चाहे कोई कार्य कितना भी अनैतिक अथवा गलत क्यों न हो किन्तु तब तक अपराध नहीं कहलाता जब तक अपराधी-कानून में उसे अपराध न माना गया हो। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कानून का उल्लंघन अपराध कहलाता है। कानूनी दृष्टि में अपराध वह कार्य है जोकि सार्वजनिक हित के लिए हानिकारक होता है। अपराध सामाजिक रूप में हमेशा हानिकारक होता है इसलिए अपराध की अवहेलना करना दण्डनीय है।

अपराध अर्थात् अंग्रेजी के 'क्राइम' शब्द के हिन्दी पर्याय, जो मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश में दिए गए हैं, वह है– अपराध, जुर्म, कसूर, दोष, अपकृत्य, पातक, पाप, गुनाह आदि। 'क्राइम' शब्द लैटिन भाषा के शब्द 'क्रिमेन' (Crimen) से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ निर्णय देना होता है। ग्रीक में 'क्रिमेन' शब्द का अर्थ अलगाव है और संज्ञा के रूप में यह किसी निर्णय का बोध कराता है। किंचित संस्कृत शब्द 'कर्म' मूलतः इसी बोध को मुखर करता है। कालान्तर में यह शब्द ग्रीक और लैटिन के 'निर्णय' का बोध न रहकर या संस्कृत के शब्द 'कर्म' (जो निर्णय के समीप है) का पर्याय न रहकर अपकर्म, पापकर्म, अपकृत्य, अपराध का स्थान ले चुका है। जो कृत्य नहीं है, क्रिया योग्य नहीं है, जो क्रिया में अधर्म है, वह कुकर्म है और अपराध है।

अपराध को मुख्य रूप से तीन प्रकार से परिभाषित करने का प्रयास किया गया है– कानूनी दृष्टिकोण से, सामाजिक दृष्टिकोण से तथा सामाजिक-कानूनी दृष्टिकोण से। कानूनी दृष्टिकोण से अपराध कानून द्वारा निषिद्ध (वर्जित) वह कार्य है, जिसके बदले में उसके कर्ता को मृत्यु, जुर्माने, कैद, काम-घर, सुधार-गृह या जेल के द्वारा दण्डित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, टप्पन (Tappan) के अनुसार, "अपराध कानून संहिता के उल्लंघन में जानबूझकर किया गया व्यवहार है जो बिना किसी प्रतिरक्षा या औचित्य के किया गया है और जो राज्य द्वारा दण्डनीय है।" इसी भाँति, मावरर (Mowrer) के अनुसार, "अपराध कोई भी वह क्रिया है जिसके द्वारा कानून का उल्लंघन होता है।"

सामाजिक दृष्टिकोण से अपराध सामाजिक नियमों से विचलन है। उदाहरणार्थ, हैकरवाल (Haikerwal) के अनुसार, "सामाजिक दृष्टिकोण से अपराध या बाल अपराध का अर्थ व्यक्ति के ऐसे व्यवहार से है जो मानवीय सम्बन्धों की उस व्यवस्था में बाधा डालता है जिसे समाज अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक समझता है।" इसी भाँति, सेलिन (Sellin) के अनुसार, "अपराध, व्यवहार आदर्श-प्रतिमान से विचलन या इसे भंग करना है। यह विचलन या भंग समाज द्वारा अपने दण्ड-विधान द्वारा दण्डित किया जाता है। परन्तु दण्ड मूल्य का एकमात्र आधार नहीं है। धर्म, कला, शिक्षा व अन्य समाजशास्त्रीय अभिकरण भी मूल्यों को प्रकट करते हैं।" काल्डवेल (Caldwell) ने सामाजिक दृष्टिकोण से अपराध को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "अपराध किसी निश्चित स्थान पर संगठित समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों के संग्रह का उल्लंघन है।"

सामाजिक-कानूनी दृष्टिकोण से अपराध एक ऐसा समाज-विरोधी व्यवहार है जिसने सार्वजनिक भावना को कानून से निषिद्ध सीमा तक तोड़ा है। उदाहरणार्थ, सेथना (Sethna) के अनुसार, "अपराध की परिभाषा एक कार्य अथवा गलती (भूल), पापमय या गैर-पापमय के रूप में दी जा सकती है जो सम्बन्धित देश के विशिष्ट समय पर लागू कानून के अन्तर्गत दण्ड योग्य है।" इसी भाँति, लैण्डिस एवं लैण्डिस (Landis and Landis) के अनुसार, "अपराध वह कार्य है जिसको राज्य ने समूह के कल्याण के लिए हानिकारक माना है और जिसके प्रति दण्ड देने की शक्ति राज्य के पास रहती है।"

2.4 अपराधों का वर्गीकरण

इलियट एवं मैरिल ने 'अपराध की गहनता' के आधार पर अपराध को निम्नांकित दो श्रेणियों में विभाजित किया है–

1. **कदाचार अथवा कम गम्भीर अपराध**–साधारण अपराध या लघु अपराध उसे कहा जाता है जोकि कानून की दृष्टि से गम्भीर नहीं होता। उदाहरणार्थ, जुआ, मद्यपान, बिना टिकट यात्रा करना, असावधानी के कारण हुई कोई दुर्घटना आदि लघु अपराध कहे जाते हैं, इस प्रकार के अपराध में व्यक्ति को दण्ड भी साधारण दिया जाता है; जैसे जुर्माना या साधारण कैद आदि।

2. **महापराध अथवा गम्भीर अपराध**–गम्भीर अपराध उस अपराध को कहते हैं जिसकी प्रकृति भी गम्भीर होती है। उदाहरणार्थ, हत्या करना, बलात्कार, देशद्रोह आदि गम्भीर अपराध हैं। इन गम्भीर अपराधियों के लिए दी जाने वाली सजा की प्रकृति भी गम्भीर होती है। इनके लिए आजन्म कारावास एवं प्राणदण्ड तक दिया जाता है। अनेक विद्वानों (जैसे जेम्स स्टीफन) ने इस वर्गीकरण की आलोचना की है क्योंकि इससे अपराध के वर्ग अधिक स्पष्ट नहीं होते, इस वर्गीकरण की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसे अपराधियों के लिए भी प्रयोग किया जाता है। एक व्यक्ति एक सप्ताह महापराध कर सकता है तथा दूसरे सप्ताह कदाचार, इसलिए यह वर्गीकरण अधिक उपयुक्त नहीं है।

बोंगर ने 'अपराध की प्रकृति' के आधार पर अपराधों को चार श्रेणियों में विभाजित किया है–

1. आर्थिक अपराध–इस प्रकार के अपराध का मुख्य उद्देश्य, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, धन प्राप्त करना होता है। गबन, चोरी, डकैती आदि आर्थिक अपराधों के ही कुछ उदाहरण हैं।

2. यौन अपराध–इस प्रकार के अपराधों का सम्बन्ध समाज द्वारा अमान्य (अथवा कानून द्वारा वर्जित) तरीके से यौन सन्तुष्टि करने से है। बलात्कार, अप्राकृतिक यौन सम्बन्ध, गैर-कानूनी वेश्यावृत्ति आदि यौन अपराधों के ही मुख्य उदाहरण हैं।

3. राजनीतिक अपराध–ऐसे अपराधों का सम्बन्ध मुख्य रूप से राजनीतिक व्यवस्था में असन्तुलन लाना अथवा राज्य की शान्ति को भंग करना है। देशद्रोह, साम्प्रदायिकता आदि राजनीतिक अपराध है।

4. विविध अपराध–उपर्युक्त तीनों श्रेणियों में जो अपराध सम्मिलित नहीं होते, उन्हें इस श्रेणी में रखा गया है। प्रतिशोध की भावना से आग लगाना, सार्वजनिक सम्पत्ति को क्षति पहुँचाना आदि इस श्रेणी के उदाहरण हैं।

2.5 अपराध के सामान्य कारक

अपराध की प्रकृति इतनी अधिक जटिल है कि इसके लिए कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं है। क्योंकि अपराध अनेक प्रकार के होते हैं इसलिए इनके कारक भी अनेक हैं। वास्तव में, अपराध के लिए कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। मुख्य रूप से हम अपराध के कारकों को निम्नलिखित श्रेणियों में बाँट सकते हैं–

(अ) अपराध के जैविक कारक– अपराध के अनेक जैविक कारक बताए गए हैं– जैविक कारकों का अर्थ उन कारकों से है जो जन्म से सम्बन्धित या शरीर से सम्बन्धित होते हैं। अपराध में निम्नलिखित जैविक कारक सहायक बताए गए हैं–

1. आयु–अपराधशास्त्रियों ने आयु को व्यक्ति को अपराधी बनाने में महत्वपूर्ण कारक माना है। प्राय: युवावस्था में अपराध अधिक किए जाते हैं। इलियट तथा मैरिल के मतानुसार अपराध सम्बन्धी आँकड़ों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि अपराधियों में अधिक सख्या युवा वर्ग की होती है। अधिकतर मानसिक संघर्ष का शिकार युवा अपराधी बन जाते हैं। अन्वेषणों से यह भी पता चलता है कि कम गम्भीर अपराध 17 से 24 वर्ष की आयु तक तीव्र गति से किए जाते हैं तथा गम्भीर अपराध 20 से 26 वर्ष की आयु में। हेस्टिंग ने इसका कारक यह बताया है कि युवक पैतृक नियन्त्रण से मुक्त होने की इच्छा या प्रयास में अपराध कर बैठता है, इस आयु में व्यक्ति शारीरिक रूप से सक्षम तथा साहसी होता है। यौन सम्बन्धी अपराध अधिकतर प्रौढ़ अवस्था में किए जाते हैं। भारतीय समाज में अपराध सम्बन्धी आँकड़ों से पता चलता है कि आधे से अधिक अपराधी 16 से 21 वर्ष की आयु के हैं।

2. लिंग–अधिकतर पुरुष ही अपराध करते हैं, इसका कारक यह है कि पुरुष का स्वभाव आक्रमणशील (Aggressive) होता है। लड़कियों का प्रत्येक व्यवहार माताओं द्वारा निर्देशित होता रहता है, इसी से लड़कियाँ अधिक नियन्त्रित रहती हैं तथा वे लड़कियाँ, जो नियन्त्रण से भाग निकलती है, अवैध रूप से गर्भवती हो जाती हैं। किन्तु पौलॉक ने बताया है कि, "स्त्रियों का ऐसा बहुत बड़ा वर्ग बलात् धन प्राप्त करने (Extortion), भ्रूणहत्या (Abortion), ब्लैकमेल (Blackmail), तथा उठाईगीरी (Shoplifting) आदि अपराधी कार्यों को करता है, जोकि समाज की दृष्टि से ओझल हैं।"

3. शारीरिक दोष–कुछ विद्वान् शारीरिक दोषों को अपराध का कारक मानते है। उदाहरणार्थ, लोम्ब्रोसो के अनुसार अपराधियों में जन्म से ही विशेष प्रकार के शारीरिक लक्षण पाए जाते हैं, परन्तु गोरिंग ने इसका खण्डन करते हुए इस बात पर अधिक बल दिया कि अपराधी शारीरिक दृष्टि से सामान्य व्यक्तियों के समान होता है।

4. प्रजाति तथा जन्म-स्थान–प्रजाति तथा जन्म-स्थान भी अपराध के कारक बताए गए हैं। अपने देश में पहले बहुत सी ऐसी अपराधी जातियाँ पाई जाती थीं जिनमें अपराध का परिवार में प्रशिक्षण दिया जाता था और अपराध करना गौरव का सूचक था। कुछ प्रजातियों को भी अधिक अपराध करने से जोड़ा गया है। उदाहरणार्थ,

नीग्रो, श्वेतों की अपेक्षा अधिक अपराध करते हैं। लेकिन यह कारक पक्षपात युक्त भी हो सकता है, क्योंकि ऐसे दृष्टिकोण वैज्ञानिक दृष्टि से खरे नहीं उतरते हैं।

5. **वंशानुक्रमण**–कुछ अपराधशास्त्रियों जैसे लोम्ब्रोसो गैरोफैलो, फैरी आदि का विचार था कि अपराधी जन्म से ही अपराध प्रवृत्ति लेकर आता है। वंशानुक्रमण के द्वारा व्यक्ति में जन्म से ही अपराधी-प्रवृत्ति आ जाती है और वह अपराधी बन बैठता है। परन्तु इसे आज स्वीकार नहीं किया जाता है।

(ब) अपराध के मनोवैज्ञानिक कारक–अपराध के अनेक मनोवैज्ञानिक कारक भी बताए गए हैं। ऐसे कारक व्यक्ति की मनोदशा से सम्बन्धित होते हैं। अपराध के निम्नलिखित मनोवैज्ञानिक कारक बताए गए हैं–

1. **मानसिक कमी**–अपराधशास्त्री गोडार्ड के मतानुसार मानसिक दुर्बलता (Feeble mindedness) अपराध का एकमात्र कारक है। दुर्बल मस्तिष्क का व्यक्ति अपने द्वारा किए गए कार्यों के परिणाम के बारे में नहीं सोच सकता है और गलत कार्यों को करने के लिए सरलता से प्रेरित हो जाता है। परन्तु एडलर (Adler) के अनुसार ज्यादातर अपराधी बौद्धिक स्तर (Intelligence level) में सामान्य व्यक्ति के समान होते हैं। केवल वेश्याएँ तथा यौन सम्बन्धी अपराधी बुद्धि-स्तर में कम होते हैं।

2. **मानसिक रोग**–अनेक मानसिक रोग व्यक्तिगत तथा सामाजिक कुशलता में बाधा डालते हैं जिससे व्यक्ति का व्यवहार असामान्य हो जाता है। न्यूरोसिस तथा साक्रोसिस कुछ इसी प्रकार के रोग हैं। सामान्यत: कारागारों के अन्दर मानसिक रोगों से पीड़ितों की संख्या अधिक पाई जाती है, इस कारण इसको अपराध के मुख्य कारकों में से एक माना जाने लगा है।

3. **संवेगात्मक अस्थिरता और संघर्ष**–मनोवैज्ञानिकों के अनुसार संवेगात्मक तनाव का अन्त अर्थात् निवारण अपराध ही होता है। किसी व्यक्ति में जब संवेगात्मक संघर्ष होता है तो वह हीनता की भावनाओं को हिंसात्मक कार्यों के द्वारा सन्तुष्ट करके अपने को आत्मविश्वासी तथा बहादुर समझने लगता है। बर्ट के अध्ययन में 47.10 प्रतिशत व्यक्ति संवेगात्मक अस्थिरता वाले तथा हीले एवं ब्रोनर के अध्ययन में 91 प्रतिशत व्यक्ति संवेगात्मक अस्थिरता से ग्रस्त पाए गए।

4. **चरित्रहीनता**–कुछ व्यक्तियों का चरित्र बहुत ही दूषित होता है। इनकी दृष्टि में सामाजिक आदर्श तथा मान्यताओं का महत्व नहीं होता, इस हेतु ऐसे चरित्रहीन व्यक्ति अपराध करने लगते हैं।

(स) अपराध के पारिवारिक कारक–वास्तव में, व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में परिवार का अद्वितीय स्थान है। एक व्यक्ति पर उसके परिवार की पूर्ण छाप पड़ी होती है। क्योंकि परिवार में समाजीकरण की प्रक्रिया बच्चे के स्वभाव को निश्चित करती है। यदि बचपन में बच्चे की उचित रूप से शिक्षा-दीक्षा नहीं होती है तो बाद में बच्चा एक अच्छा नागरिक बनने में विफल हो जाता है जिस कारण वह अपराधी भी बन सकता है। अपराध को प्रोत्साहन देने वाले कुछ पारिवारिक कारक अग्रलिखित हैं–

1. **वैवाहिक स्तर**–अपराधियों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि गम्भीर अपराध अधिकांश अविवाहित व्यक्ति करते है, क्योंकि उनके ऊपर जिम्मेदारी कम रहती है। इलियट तथा मैरिल के मतानुसार तलाकशुदा, विधवा या विधुर अधिक अपराध करते हैं क्योंकि वे पहले से ही संवेगात्मक तनाव से ग्रसित होते हैं।

2. **टूटे या भग्न परिवार**–अधिकांश अपराधी टूटे, भग्न या नष्ट घरों से आते हैं। भग्न परिवार से अभिप्राय ऐसे परिवारों से होता है जहाँ किसी संकट के कारण परिवार का नियन्त्रण और व्यवस्था समाप्त हो जाती है। अगर माता-पिता दोनों मर चुके हैं या उनमें से एक की मृत्यु हो चुकी है या माता-पिता के सम्बन्ध प्रेमपूर्ण नहीं हैं, तो ऐसी स्थिति वाले परिवार भग्न परिवार कहलाते हैं। जब माता-पिता या उनमें से कोई एक व्यभिचारी या अपराधी होता है तो बच्चों पर भी वही प्रभाव पड़ता है। ऐसे घरों में पारिवारिक सदस्यों को न तो उचित प्रेम ही प्राप्त होता है और न ही सम्मान। ऐसी स्थिति में उन्हें सभी प्रकार के कार्य करने का अवसर प्राप्त होता है और पारिवारिक नियन्त्रण भी शिथिल पड़ जाता है। बार्न्स एवं टीटर्स के अनुसार, भग्न पारिवार मनोवैज्ञानिक अथवा भौतिक दृष्टि से टूटे परिवार होते हैं। वहाँ अत्यधिक तनावपूर्ण वातावरण रहता है जिसका प्रभाव सदस्यों, विशेष रूप से बच्चों पर पड़ता है। वे अपने घर तथा परिवार के सदस्यों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण भावना नहीं रख पाते और निराशा व कुण्ठा के शिकार हो जाते हैं जिनका प्रदर्शन उनके अपराधी व्यवहार द्वारा होता है। शिकागो में हुए अध्ययन से

पता चलता है कि 37 प्रतिशत लड़के तथा 53 प्रतिशत लड़कियाँ जोकि बाल अपराधी बन जाती हैं, इन्हीं भग्न परिवारों से आते है। भग्न परिवार का प्रभाव लड़कों की अपेक्षा लड़कियों पर अधिक पड़ता है।

3. अनुशासन का अभाव–पारिवारिक अनुशासन का अभाव भी व्यक्ति पर पड़ता है। शिथिल अनुशासन अथवा कठोर अनुशासन व्यक्ति को असामान्य व्यवहार एवं अपराध करने के लिए प्रेरित करता है। पक्षपातपूर्ण अनुशासन भी अपराधी व्यवहार को प्रोत्साहन देता है।

(द) अपराध के आर्थिक कारक–अपराध के प्रमुख आर्थिक कारक निम्नलिखित हैं–

1. आर्थिक स्थिति– अपराध मुख्यत: आर्थिक दशा की देन माना जाता है। बेकारी, व्यापार की गिरावट, व्यापार चक्र, बच्चे का नौकरी करना, निर्धनता, व्यापारिक मनोरंजन, वेश्यागमन, जुआ तथा मद्यपान आदि आर्थिक दशाएँ अपराध को प्रेरित करती है।

2. व्यापारिक स्थिति–व्यापार की गिरावट के कारण रोजगार में कमी पड़ जाती है, माल का निकास रुक जाता है, पैसे की कमी पड़ जाती है और इससे समाज में भ्रष्टाचार और अपराध बढ़ने लगते हैं।

3. कम मजदूरी और बेरोजगारी–जब मजदूरी काफी मिलती है तथा रोजगार भी अच्छी प्रकार से मिलता है, तो व्यक्तियों में सम्पत्ति सम्बन्धी अपराध बहुत कम पाए जाते है। ऐसी स्थिति में केवल बलात्कार जैसे अपराध पाए जाते हैं, इसके विपरीत, जब समाज में बेरोजगारी अधिक होती है और मजदूरी कम होती है, तो समाज में अधिक अपराध पाए जाते है।

4. औद्योगीकरण तथा नगरीकरण–समाज में अपराध की प्रवृत्ति को जन्म देने में औद्योगीकरण और नगरीकरण का महत्वपूर्ण हाथ है। औद्योगीकरण तथा नगरीकरण पारिवारिक नियन्त्रण को शिथिल करते हैं तथा अपरिचितता के कारण व्यक्ति अपराध करने लगता है। साथ ही, इन दोनों प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप मलिन बस्तियों का विकास होता है जिनका वातावरण अपराध प्रवृत्ति को बढ़ावा देने वाला होता है। औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण प्रतिस्पर्द्धा को अत्यधिक बढ़ावा मिलता है और मनुष्य धन प्राप्त करने के लिए अवैधानिक तरीकों का प्रयोग करने लगता है।

5. व्यावसायिक मनोरंजन–आज के युग में मनोरंजन भी व्यवसाय है। सिनेमा, रेडियो, टेलीविज़न, क्लब, रेस्ट्रां तथा होटल इत्यादि मनोरंजन के व्यावसायिक माध्यम हैं। इनमें मनोरंजन प्रस्तुत करने वाले अपने लाभ की दृष्टि से प्रोग्राम अथवा फिल्म बनाते हैं। यही कारण है कि कई फिल्मों का बालकों के चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कई बाल युवा अपराधी पकड़े जाने पर बताते हैं कि उन्होंने अपराध की प्रेरणा और तरीका अमुक फिल्म से सीखा है। रेडियो ही आमतौर पर सस्ते फिल्मी गानों का प्रसारण करता है। क्लब जुए के अड्डे हैं और रेस्ट्रां नारी के 'नग्न और कुत्सित नृत्य' कैबरे के केन्द्र बने हैं। ये सब अपराध की वृत्ति को प्रेरित करते हैं।

6. निर्धनता–जहाँ निर्धनता के अनेक अभिशाप हैं वहाँ एक महत्वपूर्ण अभिशाप यह भी है कि निर्धनता समाज में अपराध को बढ़ावा देती है। जब व्यक्ति अपने दायित्व को सामान्य रूप से निभाने में विफल हो जाता है तो अपराध कर बैठता है। जब व्यक्ति निर्धनता से घिरा होता है तो वह अपनी सभी नैतिक मान्यताओं को नष्ट कर देता है और अपना व परिवार का जीवन चलाने के लिए अपराध करने लगता है। कहा भी गया है 'बुभुक्षितं किं न करोति पापम्'।

(य) अपराध के भौगोलिक या पारिस्थितिकीय कारक– अनेक विद्वानों का मत है कि अपराध पर ऋतु तथा मौसम का भी प्रभाव पड़ता है। उनके मतानुसार गर्म जलवायु में व्यक्ति के विरुद्ध अपराध और ठण्डी जलवायु में सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध अधिक होते हैं। डैक्सटर ने बताया है कि बैरोमीटर के पारे के गिरने पर अपराध की संख्या बढ़ती है, इसी प्रकार लकेसन ने तो एक अपराधी कैलेण्डर (Criminal Calender) का निर्माण किया जिसमें भौगोलिक पर्यावरण और अपराध का सम्बन्ध स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। कुछ अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि शीत स्थानों पर यौन सम्बन्धी अपराध अधिक पाए जाते हैं। परन्तु आज अनेक विद्वान् भौगोलिक एवं पारिस्थितिकीय कारकों को अपराध के लिए अधिक उत्तरदायी नहीं मानते।

(र) अपराध के सामाजिक कारक– अपराध के निम्नलिखित प्रमुख सामाजिक कारक बताए गए हैं–

1. सामाजिक कुरीतियाँ–सामाजिक कुरीतियाँ भी अपराध को बढ़ावा देती है। भारत में अनेक प्रकार के अपराध कुरीतियों का परिणाम कहे जा सकते हैं। बाल विवाह तथा दहेज प्रथा ऐसी कुरीतियाँ है जिनके दूषित

परिणाम आए दिन सामने आते रहते हैं। बाल विवाह के कारण अनेक लड़कियाँ छोटी आयु में विधवा हो जाती हैं और अन्तत: वेश्यावृत्ति का शिकार बन बैठती हैं। अनेक धार्मिक विश्वासों के कारण नारियाँ मन्दिरों में देवदासियों के रूप में रहती हैं।

NOTES

2. सांस्कृतिक संघर्ष– कभी-कभी एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति से सम्पर्क हो जाने के कारण सांस्कृतिक तनाव प्रारम्भ हो जाता है और व्यक्ति इस भ्रम में पड़ जाता है कि उसको क्या करना है तथा क्या नहीं करना है। ऐसी अस्थिरता एव अनिश्चितता की स्थिति में व्यक्ति अपराध कर बैठता है।

3. चलचित्र– चलचित्र ने आधुनिक युग में अनेक प्रकार से अपराधों को बढ़ावा दिया है। यौन सम्बन्धी अपराध तथा किशोर अपराध इसी की देन हैं। इन चलचित्रों ने समाज में विघटन उत्पन्न कर दिया है। भारतीय चलचित्रों में कामवासना का नग्न रूप देखने को मिलता है जिसके फलस्वरूप नवयुवकों के मन में मानसिक संघर्ष पैदा होने लगता है। आज का युवक दिन भर चलचित्रों के गाने गाता हुआ दिवास्वप्न देखता रहता है, वह सदैव हीरो बनने के प्रयास में हिरोइन की खोज में लगा रहता है। आज यौन सम्बन्धी अपराध हमारे समाज में अधिक बढ़ रहे हैं जिसे चलचित्रों की देन कहा जा सकता है। चलचित्रों ने भौतिकवादी विचारधारा को भी बढ़ाया है।

4. सामाजिक धारणाएँ तथा मूल्य– अपराध को जन्म देने के लिए जब समाज में प्रचलित धारणाओं तथा मूल्यों के प्रति अविश्वास उत्पन्न होने लगता है तो उस दशा में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तथा समाज में विघटन की प्रक्रिया क्रियाशील होने लगती है, जिससे अपराध को प्रोत्साहन मिलता है। आज के समाज में व्यक्तिवादी विचारधारा को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है और व्यक्ति अपने हित के लिए दूसरों के हितों की अवहेलना करता है तथा हानि पहुँचाने का प्रयत्न करता है, इस प्रकार वैयक्तिक स्वार्थ, अपराधवृत्ति को जन्म देकर समूह के कल्याण को हानि पहुँचाता है, इस स्थिति में सामाजिक संगठन समाप्त होने लगता है और समाज को नियन्त्रित करने वाले साधनों की नियन्त्रण शक्ति समाप्त होने लगती है और ऐसी स्थिति में मनुष्यों पर नियन्त्रण रखना कठिन हो जाता है और अपराध की दर में वृद्धि होने लगती है।

5. सामाजिक विघटन– सामाजिक विघटन से समाज में सदस्यों के मध्य सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। पदों तथा भूमिकाओं में अस्पष्टता होने के कारण व्यक्ति का व्यवहार समाज के अनुरूप नहीं रह पाता है। साथ ही सामाजिक विघटन से पारिवारिक व वैयक्तिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है और ऐसी दशा में अपराध में वृद्धि होना स्वाभाविक बात हो जाती है।

6. मलिन बस्तियाँ– गन्दी या मलिन बस्तियों के कारण अपराध में वृद्धि होती है। नगरों एवं औद्योगिक केन्द्रों में मलिन बस्तियों में अनैतिक अड्डे (जैसे शराब बनाना, वेश्यालय, जुआघर आदि) का होना आम बात होती है। मलिन बस्तियों में दूषित वातावरण तथा अस्वास्थ्यकर परिवेश रहता है, इसके कारण वहाँ के रहने वालों में कार्यकुशलता की कमी हो जाती है, आर्थिक स्थिति निम्न हो जाती है, इससे छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति आसानी से धन प्राप्ति की ओर प्रलोभित होता है तथा अपराध, शराब बनाने तथा जुए के द्वारा धन प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

7. दूषित कारावास व्यवस्था– अपराध के लिए दूषित कारावास भी उत्तरदायी हैं। नए अपराधी गम्भीर अपराधियों के सम्पर्क में आकर बुरी आदतों के शिकार बन जाते हैं। जेलों में दुर्व्यवहार किया जाता है और अपराधियों को अच्छी शिक्षा नहीं दी जाती। जेलों में अपराधी को सुधारने के सफल प्रयास नहीं किए जाते जिससे अपराधी में हीनता की भावना आ जाती है और वह अपराध की आदत नहीं छोड़ पाता।

बोध प्रश्न

1. अपराध की अवधारणा समझाइये।

....

....

....

....

2. अपराध के कारकों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

NOTES

2.6 अपराध के सिद्धान्त

अपराध सदैव सभी समाजों में चिन्ता का विषय रहा है, इसकी विद्यमानता तथा प्रचलन इतना अधिक हो गया है कि इटली में फ्लोरिटा तथा फ्रांस में दुर्खीम ने अपराधों को सामान्य प्रघटनाएँ या सामाजिक तथ्य मान लिया। अभी हमने अपराध के सामान्य कारकों की व्याख्या प्रस्तुत की है। वास्तव में, अपराध के कारकों की खोज भी उतनी ही पुरानी है जितना कि स्वयं अपराध का इतिहास, इसीलिए समाजशास्त्र तथा अपराध से सम्बन्धित इसकी शाखाओं के विकास के साथ-साथ अपराध के कारकों का वैज्ञानिक अध्ययन भी प्रारम्भ हुआ। अपराध के सिद्धान्त (जिन्हें सम्प्रदाय भी कहा जाता है) वास्तव में अपराध के कारकों की खोज के ही परिणाम हैं। जैसे-जैसे अपराध सम्बन्धी अध्ययनों में वैज्ञानिकता आती गई, वैसे-वैसे इन सिद्धान्तों का खण्डन भी होता चला गया। वास्तव में, प्रत्येक सिद्धान्त, अपराध के केवल एक कारक पर ही आधारित है तथा आज यह अनुभव किया जाने लगा है कि अपराध का कोई एक कारक नहीं है। अत: अपराध के सिद्धान्त या सम्प्रदाय अपराध की कारक सम्बन्धी व्याख्या से सम्बन्धित हैं। अपराध होने के क्या कारक है? इस पर विद्वानों ने अलग-अलग मत प्रस्तुत किए हैं। सदरलैण्ड ने अपराध के सिद्धान्तों को निम्नवर्णित प्रकार से समझाने का प्रयास किया है—

अपराध के सिद्धान्त या सम्प्रदाय

सम्प्रदाय	समय	व्याख्या के आधार	पद्धतियाँ
शास्त्रीय सिद्धान्त	1775	सुखवादी सिद्धान्त	काल्पनिक
भौगोलिकवादी सिद्धान्त	1830	परिस्थिति, संस्कृति व जनसंख्या की बनावट	सांख्यिकी
समाजवादी सिद्धान्त	1850	आर्थिक निश्चयात्मकवाद	सांख्यिकी
प्ररूपवादी सिद्धान्त		जैविक विशेषताएँ	क्लिनिकल
(1) लोम्ब्रोसो का सिद्धान्त	1875	जन्मजात अपराधी	सांख्यिकी
(2) मानसिक परीक्षण सिद्धान्त	1905	मानसिक दुर्बलता	क्लिनिकल परीक्षण तथा सांख्यिकी
(3) मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त	1905	मानसिक चिकित्सा	क्लिनिकल
समाजशास्त्रीय सिद्धान्त	1915	समूह तथा सामाजिक प्रक्रियाएँ	सांख्यिकी

कुछ लोगों ने प्रेतशास्त्रीय सिद्धान्त को अपराध का सर्वाधिक प्राचीन सिद्धान्त माना है। यद्यपि इसे तथा सदरलैण्ड का वर्गीकरण वर्तमान स्थिति को देखते हुए पूर्ण नहीं माना जा सकता है और आज अनेक नवीन सिद्धान्तों (यथा बहुकारकीय सिद्धान्त) का प्रतिपादन हो चुका है, फिर भी इन सिद्धान्तों का अपना ही महत्व है। अत: इन्हें संक्षेप में समझ लेना अनिवार्य है।

2.7 भारत में अपराध

भारत में अपराध की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है जो वैयक्ति विघटन की द्योतक मानी जाती है।

भारत में 2008 ई. में हुए कुल 59,38,104 अपराधों में 10.9 प्रतिशत हिंसात्मक अपराध, 9.4 प्रतिशत महिलाओं के विरुद्ध अपराध, 4.1 प्रतिशत आर्थिक अपराध, 1.9 प्रतिशत अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के विरुद्ध अपराध तथा 1.1 प्रतिशत बच्चों के प्रति होने वाले अपराध की श्रेणी के थे। 1998 ई. में भारत में हुए कुल अपराधों की संख्या 61,82,103 थी जिसमें एक दशक में केवल 3.9 प्रतिशत की कमी हुई है। भारत में अपराध वृद्धि के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—

1. पारिवारिक विघटन– भारत में परम्परागत रूप से संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रचलन रहा है। संयुक्त परिवार में 'परिवारवाद' की भावना पाई जाती रही है तथा परिवार सभी सदस्यों को सामाजिक, आर्थिक तथा मानसिक सुरक्षा प्रदान करता रहा है। परन्तु औद्योगीकरण, नगरीकरण, पश्चिमीकरण तथा परिवर्तन की अन्य प्रक्रियाओं ने संयुक्त परिवार में विघटन की स्थिति पैदा कर दी है। पारिवारिक कलह तथा माता-पिता में तनाव का बच्चों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। परिवार के जो सदस्य परिवार में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते वे जरा सी बुरी संगति मिलते ही अपराध की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। नगरों में संयुक्त परिवार का स्थान एकाकी परिवारों ने ले लिया है। इन परिवारों का एक तो बच्चों पर नियन्त्रण कम होता है और दूसरे अगर किसी कारणवश माता-पिता में से किसी एक या दोनों की मृत्यु हो जाए तो परिवार विघटित हो जाता है। आज व्यक्तिवादी धारणा का विकास परिवार में भी हो गया है। ऐसी धारणा सदस्यों में अलगाव पैदा करती है जिससे व्यक्ति सरलता से अपराध की ओर उन्मुख हो जाता है। दहेज प्रथा जैसी कुरीतियाँ भी कई बार माता-पिता को गलत कार्य करने के लिए विवश कर देती हैं। अनमेल विवाह, विधवा पुनर्विवाह निषेध आदि कुप्रथाओं ने भी अपराध को प्रोत्साहन दिया है। अत: भारत में अनेक पारिवारिक स्थितियाँ अपराध को बढ़ावा देने लगी हैं।

2. आर्थिक स्थिति–स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की आर्थिक स्थिति कोई ज्यादा अच्छी नहीं रही है। लोगों के मूल्यों में परिवर्तन हो गया है तथा उनमें ऊँचा जीवन स्तर जीने की चाह पैदा हो गई है, परन्तु उनकी आर्थिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। वास्तव में, गरीबों और अमीरों में अन्तराल बढ़ा है। ऐसी स्थिति में उनके मन में निराशा पैदा होती है तथा वे शीघ्र ही पथभ्रष्ट हो जाते हैं। व्यापारिक मन्दी व कालाबाजारी आग में घी का कार्य करती है। डा. हैकरवाल ने अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला है कि अनाज के भाव घटने और बढ़ने से उसी अनुपात में चोरियों की संख्या घटती व बढ़ती है। जब सच्चाई और ईमानदारी से व्यक्ति अपना जीवन व्यतीत करने में असमर्थ हो जाता है तो वह गैर-कानूनी कार्यों द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करने के लिए प्रेरित हो जाता है।

3. अनियोजित औद्योगीकरण–भारत में अंग्रेजी शासनकाल तथा स्वतन्त्रता के पश्चात् औद्योगीकरण का तेजी से विकास हुआ है। परन्तु भारत में औद्योगिक विकास पूर्व-नियोजित नहीं रहा, इससे अनेक ऐसी समस्याएँ पैदा हो गई हैं जिन्होंने अपराधी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया है। उदाहरणार्थ, औद्योगिक केन्द्रों में गन्दी बस्तियों का अत्यधिक विकास हुआ है। इन गन्दी बस्तियों का अनैतिक वातावरण अपराधी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने का प्रमुख स्रोत है। जो महिलाएँ निर्धनता के कारण उद्योगों में काम के लिए आती हैं उनका भी कई बार यौन-शोषण होने लगता है। बाल श्रमिकों का व्यक्तित्व कुण्ठित हो जाता है क्योंकि छोटी उम्र में ही वे शोषण का शिकार हो जाते हैं। औद्योगिक क्षेत्रों में सस्ता व अश्लील व्यावसायिक मनोरंजन भी अपराधों को बढ़ावा देने का एक प्रमुख कारण है।

4. जनसंख्या विस्फोट–भारत की जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि भी निर्धनता, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार तथा अनेक समस्याओं को जन्म देती है जिनसे अपराधी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है। भारत में गरीबी तथा अत्यधिक निम्न पारिवारिक स्तर का मुख्य कारण जनसंख्या विस्फोट ही है। अभी भारत में अपराध के विस्तार से सम्बन्धित जो आँकड़े प्रस्तुत किए गए हैं, उनसे भी यह पता चलता है कि महानगरों, जहाँ अत्यधिक जनसंख्या होती है, में अपराध की दर भी अधिक होती है।

5. राजनीतिक संरक्षण–भारत में पिछले कुछ दशकों में अपराध में अत्यधिक वृद्धि का कारण अपराधियों को मिलने वाला राजनीतिक संरक्षण भी माना जाता है। राजनेता-अपराधी सहजीविता के कारण अनेक गैंग तथा माफिया गिरोहों का विकास हुआ है। अपहरण के मामलों में अत्यधिक वृद्धि इन्हीं गिरोहों के कारण हुई है। पुलिस भी राजनीतिक संरक्षण के कारण इन गिरोहों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर पाती है तथा ऐसा लगता है जैसे

इन्हें अपराध करने का लाइसन्स प्राप्त हो गया हो। बहुत से अपराधी पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति स्वयं राजनेता बनने में सफल हो जाते है जिससे स्थिति और खराब हो गई है। अनेक विद्वानों का मत है कि अपराध नियन्त्रण के लिए पुलिस-अपराधी-राजनेता गठबन्धन को तोड़ना अनिवार्य है।

6. अश्लील साहित्य तथा चलचित्र– भारत में युवा पीढ़ी को विचलित करने में अश्लील साहित्य तथा मार-धाड़ से भरपूर चलचित्रों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह सस्ता तथा अश्लील साहित्य युवक-युवतियों में प्रेम, यौन-व्यभिचार, हत्या, आत्महत्या, चोरी आदि की कहानियों से भरा होता है जिसका पढ़ने वालों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बहुत से अपराधियों ने यह तक स्वीकार किया है कि उन्होंने विशिष्ट प्रकार का अपराध करने के तरीके अमुक चलचित्र से सीखे थे, इससे इस बात का अनुमान आसानी से लगाया जाता सकता है कि चलचित्र गलत उत्तेजनाएँ पैदा करके अपराधी प्रवृत्तियाँ पैदा करने में सहायता देते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत में निर्धनता, बेरोजगारी, औद्योगीकरण के दुष्परिणाम, संवेगात्मक अस्थिरता, शीघ्र ही अमीर हो जाने की लालसा, टूटे अथवा भग्न परिवार, व्यापारिक अपकर्षण, शहरों का भीड़ भरा उत्तेजनापूर्ण वातावरण, सस्ता तथा अश्लील मनोरंजन सम्बन्धी साहित्य, मारपीट से भरी फिल्में, उत्तेजनापूर्ण गन्दे गाने, अन्धविश्वास तथा अनेक अन्य कारण अपराधी प्रवृत्ति को विकसित करते हैं।

2.8 शब्दावली

पारिस्थितिकी– पारिस्थितिकी प्राणि-मात्र और उसके पर्यावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन है, इसे विज्ञान का एक ऐसा बहुवैषयिक क्षेत्र माना जाता है जिसमें आनुवंशिकी, समाजशास्त्र, नृविज्ञान आदि अनेक विषयों से सुव्यवस्थित रूप से ज्ञान लिया जाता है।

अपराध– अपराध एक ऐसा समाज-विरोधी व्यवहार है जिसने सार्वजनिक भावना को कानून से निषिद्ध सीमा तक तोड़ा है। यह वह क्रिया है जिसके द्वारा कानून का उल्लंघन होता है।

2.9 सारांश

इस इकाई में हमने नगरीय समाज की परिस्थिति में बढ़ती हुई समस्याओं जैसे– अपराध, बाल अपराध, संघर्ष, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, अश्पृश्यता, भ्रष्टाचार, समाजशास्त्रियों ने समस्याओं के अध्ययन में रूचि ली है। जीवन की मुख्य विशेषताओं के बारे में जानकारी हासिल की है। हमने अपराध का अर्थ वर्गीकरण, कारक, सिद्धान्त को भी समझाया है, इसलिए नगरीय समाज को समझने के लिए सामाजिक समस्याओं को समझना आवश्यक है।

2.10 अभ्यास प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. अपराध किसे कहते हैं।
2. अपराधों का वर्गीकरण को विस्तार पूर्वक समझाइये।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. अपराध के सामाजिक एवं आर्थिक कारकों की व्याख्या कीजिए।
2. भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में अपराध की विशेषतायें बताइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अपराधों के वर्गीकरण कितने हैं–

   (अ) दो (ब) तीन (स) चार (द) पाँच

उत्तर 1. (अ)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Brooks, Robert C., **Corruption in American Politics and Life,** New York : Dodd, Mead and Company, 1910.

Burt, C., **The Young Delinquent,** London : University of London Press, 1938.

Caldwell, R. G., **Criminology,** New York : Ronald Press, 1965.

Dwivedy, S. and G. S. Bhargava, **Political Corruption in India,** New Delhi : Popular Book Service, 1968.

Elliott, M. A. and F. E. Merrill, **Social Disorganization,** New York : Harper and Brothers, 1941.

Etzioni, Amitai, **Modern Organizations,** New Delhi : Prentice Hall of India (Pvt.) Ltd., 1965.

Frederick B. Sussman, **Law of Juvenile Delinquency : The Laws of the Forty Eight States,** New York : Oceana Publications, 1950.

Frederick M. Thrasher, **The Gang, Chicago,** University of Chicago Press, 1927.

●●●

NOTES

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

अध्याय–3 समूह संघर्ष व बाल अपराध
(GROUP CONFLICT & JUVENILE DELINQUENCY)

NOTES

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 समूह संघर्ष

3.3 बाल अपराध

3.4 बाल अपराध की प्रकृति

3.5 बाल अपराध के कारक

3.6 बाल अपराध का उपचार : कुछ सुझाव

3.7 बाल अपराध की रोकथाम सुधारवादी संस्थाएँ

3.8 सारांश

3.9 शब्दावली

3.10 अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

बालक राष्ट्र के भविष्य है परन्तु उन्हें भी उसी समाज में जीवन यापन करना होता है जिसके यह सदस्य होते हैं। प्रत्येक समाज में सहयोग और संघर्ष दोनों पाए जाते हैं अतः उस समाज की समस्त प्रकृति का असर उस बालक के मनोचित में पड़ता है और इसी शाखा में जब विभिन्न परिस्थितियों में सहयोग प्राप्त होता है तो वह जीवन में एकमत एकीकरण और संगठन का विकास करता है। जबकि संघर्ष दमन तथा हिंसा की उत्पत्ति करता है अतः इस इकाई के अन्तर्गत हम बाल अपराध व समूह संघर्ष के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे और असामाजिक समूह का अर्थ भी प्रस्तुत करेंगे।

3.1 प्रस्तावना

बाल अपराध के वास्तविक अर्थ के सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं हैं। यहाँ तक की कानूनी दृष्टि से भी कोई सर्वमान्य परिभाषा हमें नहीं मिलती फिर भी विभिन्न राज्यों के कानूनों में दी गयी बाल अपराध की परिभाषा से अवश्य स्पष्ट होता है कि बालअपराधियों की एक अधिकतम और न्यूनतम आयु होती है उससे कम आयु के बच्चे जब कोई ऐसा कार्य करते हैं। जो लोक कल्याण के लिए हानिकारक है तथा कानून द्वारा निषेध है तो उसे बाल अपराध कहते हैं।

3.2 समूह संघर्ष

प्रत्येक समाज में सहयोग तथा संघर्ष पाया जाता है। सहयोग जीवन में एकमत एकीकरण और संगठन का विकास करता है, जबकि संघर्ष दमन, विरोध तथा हिंसा की उत्पत्ति करता है। यद्यपि संघर्ष से व्यवस्था में सन्तुलंन नहीं रहता, फिर भी सहयोग की तरह संघर्ष भी सामाजिक व्यवस्था का एक अनिवार्य अंग है। यह जीवन का एक शाश्वत सत्य है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि संघर्ष प्रत्येक समाज तथा समाज के प्रत्येक युग

में किसी-न-किसी रूप व मात्रा में विद्यमान रहा है। व्यक्तियों अथवा समूहों की इच्छा के विरुद्ध प्रतिकार अथवा बलपूर्वक बदला लेने की भावना से जान-बूझ कर की गई प्रक्रिया संघर्ष है। गिलिन एवं गिलिन (Gillin and Gillin) के अनुसार, "संघर्ष वह सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न व्यक्ति अथवा समूह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयत्न , विरोधी को हिंसा अथवा हिंसा की धमकी की चुनौती देकर करते हैं।"

नगरीय समाज में समूह संघर्ष भी एक समस्या है। यह संघर्ष जातीय अथवा धार्मिक आधार पर होते हैं। आज के अत्यधिक परिवर्तन के दौर में विभिन्न जातियों एवं सम्प्रदायों में प्रतियोगिता बढ़ गई है। यह प्रतियोगिता कई बार व्यक्तियों या समूहों को अपने लाभ तथा दूसरे को नुकसान पहुँचाने हेतु अनुचित साधन अपनाने के लिए प्रेरित करती है। आए दिन समाचार-पत्रों में जातीय आधार पर होने वाले संघर्षों का उल्लेख होता है। विश्वविद्यालयों में राजनीति करने वाले छात्र जातीय आधार पर विभिन्न समूहों में बँटे होते हैं तथा समय-समय पर दूसरों पर अपना प्रभुत्व जमाने हेतु संघर्ष का सहारा लेते हैं। ऐसा माना जाता है कि समूह संघर्ष करने वाले गुटों को सम्बन्धित जातियों के राजनीतिक नेताओं का भी संरक्षण प्राप्त होता है, इससे स्थिति और भी खराब हो जाती है। साम्प्रदायिक भावना भी सामूहिक संघर्ष का प्रमुख कारण मानी जाती है। अल्पसंख्यक सम्प्रदाय यह मानता है कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय उसका शोषण कर रहा है तथा इसीलिए वह पिछड़ा हुआ है। दूसरी ओर, बहुसंख्यक सम्प्रदाय के लोग इस भावना से ग्रसित होते हैं कि अल्पसंख्यकों को वोट की राजनीति के लिए उनसे कहीं अधिक सुविधाएँ दी जा रही हैं, इस प्रकार की दूषित भावनाएँ समूह संघर्ष को बढ़ावा देने वाली मानी जाती हैं।

नगरों में विभिन्न अपराधी समूहों में होने वाली गैंग वार भी समूह संघर्ष का ही एक उदाहरण है। प्रत्येक अपराधी समूह किसी क्षेत्र-विशेष में अपना प्रभुत्व जमाने हेतु दूसरे अपराधी समूह को कमजोर करने का प्रयास करता है। अपराधी गुटों में होने वाले संघर्ष के समाचार भी दैनिक समाचार-पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं। भाषावाद एवं क्षेत्रवाद की भावना भी सामूहिक संघर्ष को विकसित कर सकती है। कई बार अत्यधिक आर्थिक असमानता ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर देती है जो समूह संघर्ष को प्रोत्साहन देती हैं।

3.3 बाल अपराध

बाल अपराध आधुनिक युग की एक गम्भीर समस्या है। बाल अपराध (किशोर अपराध) बालक का लड़कपन या नटखटपन है जिसके वशीभूत वह कानून का उल्लंघन करता है अथवा जन-कल्याण में बाधा उत्पन्न करता है। सभी देशों में बाल अपराधियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि चिन्ता का एक विषय है क्योंकि जिन बालकों पर देश या राष्ट्र का भविष्य निर्भर करता है, अगर वही असामान्य बालक हो जाएँगे, तो देश के भविष्य की कल्पना तक नहीं की जा सकती है। बाल अपराध को अपराध का मुख्य द्वार कहा गया है तथा ऐसे अपराधों की संख्या में वृद्धि से चिन्ता होना स्वाभाविक ही है। बाल अपराध के सम्बन्ध में सभी समाजशास्त्री एक मत नहीं हैं। कानून के आधार पर भी इसकी एक सामान्य परिभाषा देना कठिन है, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सभी देशों में बाल अपराधियों की अधिकतम आयु कानून द्वारा निर्धारित होती है, इस आयु से कम के बच्चे जब कोई ऐसा कार्य करते है, जो लोक-कल्याण के लिए हानिकारक तथा कानून द्वारा निषिद्ध हो तो उसे हम अपराध न कहकर बाल अपराध कहते हैं। सदरलैण्ड (Sutherland) ने 16– 18 वर्ष से कम आयु के सभी अपराधियों को किशोर अपराधी कहा है किन्तु भारत में बाल अपराध का तात्पर्य ऐसे अपराधों से है जो 18 वर्ष से कम आयु वाली लड़की या लड़के द्वारा किए जाते हैं।

3.3.1 बाल अपराध का अर्थ एवं परिभाषाएँ

बाल अपराध निश्चित आयु से कम बच्चों के ऐसे व्यवहार को कहते हैं जिसे समाज अस्वीकार करता है अथवा बाल अपराध उनके ऐसे कार्यों को कहा जाता है जोकि समाज-कल्याण के लिए हानिकारक हो सकते हैं। बाल अपराध से तात्पर्य बच्चों का उन असामाजिक तथा अनैतिक आचरण में लिप्त होना है जो प्रौढ़ों के लिए दण्डणीय होते हैं। बाल अपराधी की परिभाषा देना कठिन कार्य है क्योंकि समाजशास्त्री तथा अपराधशास्त्री इसे अलग-अलग दृष्टिकोण से देखते हैं। सेथना (Sethna) के अनुसार, "बाल अपराध के अन्तर्गत किसी ऐसे बालक या तरुण के गलत कार्य आते है जोकि सम्बन्धित स्थान के कानून (जो इस समय लागू हो) के द्वारा निर्दिष्ट आयु सीमा के अन्तर्गत आता हो।" गिलिन एवं गिलिन (Gillin and Gillin) के अनुसार, "समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

से एक अपराधी या किशोर वह होता है जिसके कार्य को समूह द्वारा गिरा हुआ समझा जाता है और जो हानिकर होने के नाते निषिद्ध है।" मावरर (Mowrer) के अनुसार, "बाल अपराधी वह व्यक्ति है जो जानबूझकर, इरादे के साथ तथा समझते हुए समाज की रूढ़ियों की उपेक्षा करता है, जिससे उसका सम्बन्ध है।" रेकलेस (Reckless) ने बाल अपराध को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "बाल अपराध शब्द अपराधिक-संहिता के उल्लंघन पर एवं/अथवा व्यवहार संरूपण के उस अनुसरण पर लागू होता है जिसे बच्चों या वयस्कों द्वारा अच्छा नहीं समझा जाता है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बाल अपराध की प्रमुख रूप से दो विशेषताएँ हैं– प्रथम, यह अपराध निश्चित आयु से कम के बच्चों के द्वारा किया जाता है, और द्वितीय, बच्चों के वे व्यवहार जोकि लोक-कल्याण के लिए अहितकर सिद्ध होते हैं, बाल अपराध कहलाते हैं। साधारणत: बाल अपराध की परिभाषा देते समय आवारा, आदतन, आज्ञा का उल्लंघन करने वाला या सुधार से परे शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। बाल अपराध की आयु भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न है। बाल अपराधियों की उच्चतम आयु सीमा मिस्र, इराक, लेबनान तथा सीरिया में 15 वर्ष; फिलिपाइन्स, लंका, बर्मा तथा इंग्लैण्ड में 16 वर्ष; भारत में लड़कियों के लिए 18 वर्ष तथा लड़कों के लिए 16 वर्ष; ईरान, जोर्डन, सऊदी अरब तथा थाईलैंड में 18 वर्ष तथा जापान में 20 वर्ष है। डॉ. सेथना की परिभाषा से यह ज्ञात होता है कि जिनके घर-बार नहीं होते हैं तथा जो बेकार और निरुद्देश्य इधर-उधर घूमते हैं, वही बाल अपराधी कहलाते हैं, इस प्रकार, यदि कोई बालक स्कूल से भागता है या अनुपस्थित रहता है, आवारा लोगों के साथ रहता है, रात को घर नहीं ठहरता है, जुआ आदि खेलता है, तो वह अपराधी है। अमेरिका में राष्ट्रीय परिवीक्षा समिति ने बाल अपराधी उसे माना है जिसने–

1. किसी प्रान्त अथवा इसके किसी क्षेत्र के कानून अथवा मान्यता का उल्लंघन किया हो,
2. जो सुधार से परे, उद्दण्ड तथा अवज्ञाकारी हो और अपने माता-पिता, संरक्षक अथवा कानून अधिकारियों के नियन्त्रण से परे हो,
3. जिसको स्कूल से अनुपस्थित रहने की आदत पड़ गई हो तथा
4. जो इस प्रकार का व्यवहार करता हो जिसमें जानबूझकर स्वयं उसकी या अन्य व्यक्तियों की नैतिकता अथवा स्वास्थ्य को हानि पहुँचाती हो।

बोध प्रश्न

1. समूह संघर्ष से आप क्या समझते हैं!

....

....

....

....

2. बाल अपराध की परिभाषा लिखिए।

....

....

....

....

3.4 बाल अपराध की प्रकृति

बाल अपराध नाना प्रकार के होते हैं तथा इनकी सूची बनाना एक कठिन कार्य है। अनैतिक और अशोभनीय व्यवहार करना, चोरी करना, जुआ खेलना, मद्यपान और मादक द्रव्यों का व्यसन करना, दंगा करना, विश्वासघात

करना, स्कूल से भाग जाना, अनैतिक एवं बुरे आदमियों की संगति में रहना, रात्रि को निरुद्देश्य घूमना तथा बीड़ी-सिगरेट पीना आदि विविध प्रकार के समाज-विरोधी कार्य बाल अपराध कहलाते हैं।

फ्रेडरिक बी. सुसमन ने ऐसे कार्यों की एक सूची तैयार की है जिन्हें बाल अपराध के अन्तर्गत रखा जा सकता है–

1. किसी कानून या अध्यादेश को भंग करना।
2. स्कूल तथा घर से भागने की आदत।
3. जानबूझकर चोर, कुकर्मी व अनैतिक व्यक्तियों के साथ रहना।
4. पूर्णत: विकृत।
5. माता-पिता अथवा संरक्षकों के नियन्त्रण को न मानना।
6. अकर्मण्यता, आलस्य एवं अपराधी पर्यावरण में पलना।
7. ऐसे कार्य करना जिनसे स्वयं को अथवा दूसरों को चोट पहुँच सकती है अथवा किसी प्रकार का खतरा उत्पन्न हो सकता है।
8. घर से बिना आज्ञा अनुपस्थित रहना।
9. अनैतिक तथा भद्दा व्यवहार करना।
10. स्वभावत: गन्दी भाषा (व गाली-गलौज) का आदतन प्रयोग करना।
11. जानबूझकर निन्दनीय व्यक्तियों (बदनाम) के घरों में जाना।
12. क्रीड़ा स्थलों पर अड्डे बनाना।
13. आदतन रेलवे स्टेशन या लाइनों पर निरुद्देश्य घूमना।
14. चलती ट्रेन से कूदना, बिना किसी की आज्ञा से कार या इन्जिन में घुस जाना।
15. ऐसे स्थानों पर जाना जहाँ शराब बेची जाती है।
16. बिना किसी वैधानिक रूप से स्वीकृत कार्य के रात को सड़कों पर अकारण आवारागर्दी करना तथा सड़कों व पार्कों में सो जाना।
17. अनैतिक व अवैधानिक व्यवसाय करना या इनमें किसी प्रकार का सहयोग देना।
18. सिगरेट पीना।
19. शराब पीना।
20. अन्य मादक द्रव्यों का व्यसन करना।
21. यौन-अनैतिकताओं में फँसे रहना।
22. स्वभावत: नागा करना।
23. स्कूल या अन्य किसी स्थान पर अनैतिक आचरण करना।
24. ऐसे व्यवहार करना या उन दशाओं में पाया जाना जिनसे खुद को या दूसरे को नुकसान पहुँचे।
25. उन स्थानों पर जाना जिन पर जाने के लिए वयस्कों को दण्ड दिया जाता है।
26. उपद्रवी तथा उत्पाती होना।
27. भिक्षावृत्ति करना।
28. अशिष्ट प्रस्ताव रखना।

29. राजकीय तथा निजी बाल सुधार संस्थाओं से भागना, तथा

30. नशे में साइकिल, मोटर तथा स्कूटर चलाना।

3.5 बाल अपराध के कारक

NOTES

बाल अपराध एक सामाजिक समस्या है। अत: इसके अधिकांश कारक भी समाज में ही विद्यमान है, इसके प्रमुख कारकों को निम्नांकित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) बाल अपराध के पारिवारिक कारक–बच्चे के बिगड़ने में परिवार एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि बच्चों पर बड़ों का काफी प्रभाव पड़ता है। परिवार में ऐसे अनेक कारक हो सकते है जोकि बच्चे पर बुरा प्रभाव डालते हैं। ऐसे परिवार में बच्चे को सुरक्षा नहीं मिलती तथा वह बाल अपराधी बन जाता है। बाल अपराध के प्रमुख पारिवारिक कारक इस प्रकार हैं—

1. भग्न अथवा नष्ट परिवार–बाल अपराध के सम्बन्ध में किए गए सर्वेक्षणों द्वारा पता चलता है कि बाल अपराधी की मात्रा साधारण परिवारों के मुकाबले नष्ट परिवारों में अधिक पाई जाती है। भग्न या नष्ट परिवारों में बच्चों का समाजीकरण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है और बच्चे माता-पिता से वह स्नेह नहीं पाते जो उन्हें मिलना चाहिए। शॉ एवं मैक्के, मौड ए. मैरिल, शैल्डन एवं ग्लुक, शिडलर, हीले एवं ब्रोनर तथा नेई आदि विद्वानों ने भग्न परिवार को बाल अपराध का प्रमुख कारक माना है। नष्ट परिवारों का अर्थ ऐसे परिवारों से है जिनमें माता-पिता बच्चों के प्रति अपने कर्त्तव्यों को नहीं समझते अथवा मृत्यु, तलाक या परित्याग इत्यादि दशाओं के परिणामस्वरूप माता-पिता में से किसी एक का अभाव पाया जाता है। नष्ट परिवार भी निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं—

(i) मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नष्ट परिवार–ये वे परिवार हैं जहाँ माता-पिता तथा बच्चे इकट्ठे तो रहते हैं परन्तु अपने कर्त्तव्यों को नहीं समझते, एक-दूसरे का आदर नहीं करते तथा बच्चों की देख-रेख ठीक प्रकार से नहीं की जाती। ऐसे परिवारों में बच्चों को हीनता की दृष्टि से देखा जाता है, जिसके कारण उनका मन घर पर नहीं लगता तथा वे अकेला महसूस करते है और गलत रास्ते पर चल पड़ते हैं।

(ii) भौतिक दृष्टि से नष्ट परिवार– माता-पिता में से किसी एक का घर पर न रहना अथवा दोनों का न होना भी बाल अपराध के लिए जिम्मेदार है। तलाक, घर में लम्बी बीमारी तथा मृत्यु बच्चों पर बुरा प्रभाव डालती है। सौतेली माता का व्यवहार भी बच्चों को अपराधी बना सकता है।

2. दुर्व्यसन परिवार–दुर्व्यसन परिवार उन परिवारों को कहा जा सकता है जहाँ पर एकता की कमी होती है तथा लड़ाई-झगड़ों के कारण मानसिक तथा संवेगात्मक तनाव व संघर्ष पैदा होता है जोकि बच्चों के व्यवहार में अस्थायित्व लाने लगता है। असुरक्षा, चिड़चिड़ापन, सख्ती इत्यादि परिस्थितियाँ बच्चों पर बुरा प्रभाव डालती हैं तथा वे बाल अपराधी बन जाते हैं।

3. अपराधी प्रतिमानों वाले परिवार–कई परिवार ऐसे होते है जहाँ पर अपराध को प्रोत्साहन दिया जाता है। माता-पिता स्वयं बच्चों की बेईमानी से पैसा लाने, चोरी करने, जुआ खेलने तथा शोषण करने का प्रशिक्षण देते हैं। ऐसे परिवार में बच्चे जल्दी ही बाल अपराधी बन जाते है। बच्चों में अनुकरण करने की तीव्र शक्ति होती है तथा वे अच्छी-बुरी बातों का अनुकरण तीव्रता से कर लेते हैं। जब बालक परिवार के सदस्यों को अपराधी व्यवहार करता देखता है, तो वह भी उसे अपनाने का प्रयास करने लगता है।

4. माता-पिता का शून्य व्यवहार–जब माता-पिता अपने बच्चों का अधिक ध्यान रखते हैं और उन पर कड़ी निगरानी रखते है, तब उन बच्चों के बिगड़ने की सम्भावना कम होती है। वे बच्चे अधिकतर शीघ्रता से बिगड़ जाते हैं जिनके बारे में उनके माता-पिता ध्यान नहीं रखते हैं। ऐसे परिवारों में बच्चे सारे दिन घर से बाहर रहते हैं और माता-पिता उनसे कुछ भी पूछने का साहस नहीं रखते। माता-पिता के शून्य व्यवहार के कारण बच्चे गन्दी चौकड़ियों का शिकार हो बैठते हैं।

5. अनैतिक परिवार– अनैतिक परिवार से अभिप्राय ऐसे परिवार से होता है जिसमें परिवार का कोई सदस्य अनैतिक जीवन व्यतीत करता है। माता-पिता का चरित्र अगर दूषित है तो बच्चों का समाजीकरण ठीक तरह से नहीं हो पाता। कुछ माता-पिता बच्चों को समाज के प्रति समुचित ज्ञान नहीं करा पाते हैं क्योंकि वे स्वयं

सामाजिक मान्यताओं को महत्व नहीं देते हैं। बच्चे की माता या पिता का चरित्र अगर दूषित है, तो बच्चे बिगड़ जाते हैं और बाल अपराधी बन जाते हैं। घर में अनैतिकतापूर्ण व्यवहार तथा दुराचरण बच्चों पर कुप्रभाव डालते हैं तथा इनसे बच्चों में अपराधी मनोवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है।

6. परिवार में निर्धनता–बाल अपराध तथा परिवार की आर्थिक स्थिति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। बाल अपराधों पर हुए सर्वेक्षणों के आधार पर यह पता चलता है कि बाल अपराधी अधिकतर उन परिवारों के पाए जाते है, जिनकी आय थोड़ी होती है। बच्चों की अनेक प्रकार की इच्छाएँ होती हैं। वह समाज में ऐसी वस्तुएँ देखता है जो मन मोह लेती हैं। जब सामान्य रूप से वह उन वस्तुओं को प्राप्त करने में विफल हो जाता है तो असामान्य ढंग से उन्हें प्राप्त करने का प्रयास करता रहता है तथा बाल अपराधी बन बैठता है। गरीबी के कारण छोटे-छोटे बच्चे नौकरियाँ करने निकल पड़ते हैं, बुरी संगति का शिकार बन बैठते है और अन्त में बाल अपराधी बन जाते हैं। परिवार उनकी इच्छाओं की पूर्ति करने में विफल रहता है। भारतीय समाज में परिवार की निर्धनता को बाल अपराध का प्रमुख कारक माना गया है।

7. छोटा घर तथा गोपनीयता का अभाव– औद्योगिक एवं नगरीय केन्द्रों में आवास एक गम्भीर समस्या है तथा सारे परिवार को एक या दो कमरों में ही गुजारा करना पड़ता है। ऐसे परिवारों में पति-पत्नी को सहवास के लिए गोपनीयता नहीं मिल पाती तथा बच्चों के सामने सभी प्रकार की बातें होती हैं जिनका उनके मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है। छोटे घरों में बच्चों के लिए खेलने के स्थान का भी अभाव होता है तथा अगर बाहर वह कुसंगति का शिकार हो जाता है, तो बाल अपराधी बन जाता है।

(ब) बाल अपराध के शारीरिक एवं व्यक्तिगत कारक–कुछ विद्वानों के मतानुसार शारीरिक एवं जैविक दोष भी बाल अपराधी बनाने में सहायक होते हैं। किन्तु यह कारक सर्वमान्य नहीं हैं। बर्ट ने बताया है कि कुछ अपराधियों में शारीरिक हीनता अवश्य देखने को मिलती है लेकिन अधिकांश बाल अपराधी शारीरिक दृष्टि से सामान्य ही होते हैं। ड्गडेल ने भी जैविक हीनता को अपराध का आधार माना है। इनके अनुसार अपराधिता दोषपूर्ण वंश परम्परा के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित होती है। प्राय: ऐसा देखने में आया है कि जो बच्चे काने या लंगड़े होते हैं या जिनका शारीरिक विकास पूर्ण गति से विकसित नहीं हो पाता है, वे बच्चे बाल अपराधी बन बैठते हैं। निम्नलिखित शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक कारक बाल अपराध के लिए उत्तरदायी माने जाते हैं–

1. शारीरिक असामान्यताएँ– बाल अपराधियों में शारीरिक असामान्यताएँ तथा अस्वस्थ शरीर अधिकतर पाया जाता है। यह तभी होता है, जबकि बच्चे को पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता है। बच्चा अपने को कमजोर महसूस करने लगता है तथा उसको आलस्य घेरे रहता है, इसके फलस्वरूप वह स्कूल से अनुपस्थित रहने का प्रयत्न करता है, इसी बीच अगर उसे आवारा बच्चों का सम्पर्क मिल जाता है तो वह बाल अपराधी बन बैठता है। थर्सटन ने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि बाल अपराधी क्षेत्रों के बच्चों में पोषण सम्बन्धी दोष अपेक्षाकृत अधिक पाए जाते हैं अर्थात् अधिकांश अध्ययनों में शारीरिक असामान्यताओं और हीन स्वास्थ्य को बाल अपराधी और अनापराधी बालकों के अन्तर में महत्वपूर्ण पाया गया है।

2. शारीरिक दोष– अनेक विद्वानों का यह विचार है कि शारीरिक हीनता एवं विकार से बच्चे को समाज में असफलता मिलती है और इस असफलता की क्षतिपूर्ति अपराध द्वारा की जाने लगती है। प्राय: यह देखा गया है कि लंगड़ा, लूला या हकलाने वाला (Stammerer) बच्चा अपने साथी बच्चों से अलग ही रहता है और ऐसे बच्चों के अन्दर हीनता की भावना जाग्रत हो जाती है। अन्य बच्चे उससे छेड़छाड़ करते हैं जिसके फलस्वरूप उसके अन्दर प्रतिक्रिया व प्रतिशोध की भावनाएँ बढ़ती चली जाती हैं और ये भावनाएँ बाल अपराध का रूप धारण कर लेती है।

3. बीमारी–लम्बी बीमारी भी बाल अपराध का कारण मानी गई है। रोगी बच्चे चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाते हैं तथा उनका शारीरिक स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। बीमारी की स्थिति बच्चे को बाल अपराधी बनाने में सहायता देती है।

4. वंशानुक्रमण या पैतृकता–कुछ लोग बाल अपराध का कारक पैतृकता मानते है अर्थात् इनके अनुसार अपराधी माता-पिता के गुण उनकी सन्तान में हस्तान्तरित होते हैं। हैण्डी तथा रोशनॉफ ने अध्ययनों द्वारा यह बतलाने का प्रयास किया है कि बच्चों में अपराधिता पैतृकता द्वारा संचारित होती है। लेवी तथा ब्रोनस्टीन के अनुसार भी अपराधी बच्चों के स्पाइनल फ्लूइड (Spinal fluid) में अन्तर पाया जाता है।

29. राजकीय तथा निजी बाल सुधार संस्थाओं से भागना, तथा

30. नशे में साइकिल, मोटर तथा स्कूटर चलाना।

3.5 बाल अपराध के कारक

NOTES

बाल अपराध एक सामाजिक समस्या है। अतः इसके अधिकांश कारक भी समाज में ही विद्यमान हैं, इसके प्रमुख कारकों को निम्नांकित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) बाल अपराध के पारिवारिक कारक–बच्चे के बिगड़ने में परिवार एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि बच्चों पर बड़ों का काफी प्रभाव पड़ता है। परिवार में ऐसे अनेक कारक हो सकते हैं जोकि बच्चे पर बुरा प्रभाव डालते हैं। ऐसे परिवार में बच्चे को सुरक्षा नहीं मिलती तथा वह बाल अपराधी बन जाता है। बाल अपराध के प्रमुख पारिवारिक कारक इस प्रकार हैं—

1. भग्न अथवा नष्ट परिवार–बाल अपराध के सम्बन्ध में किए गए सर्वेक्षणों द्वारा पता चलता है कि बाल अपराधी की मात्रा साधारण परिवारों के मुकाबले नष्ट परिवारों में अधिक पाई जाती है। भग्न या नष्ट परिवारों में बच्चों का समाजीकरण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है और बच्चे माता-पिता से वह स्नेह नहीं पाते जो उन्हें मिलना चाहिए। शॉ एवं मैक्के, मौड ए. मैरिल, शैल्डन एवं ग्लुक, शिडलर, हीले एवं ब्रोनर तथा नेई आदि विद्वानों ने भग्न परिवार को बाल अपराध का प्रमुख कारक माना है। नष्ट परिवारों का अर्थ ऐसे परिवारों से है जिनमें माता-पिता बच्चों के प्रति अपने कर्त्तव्यों को नहीं समझते अथवा मृत्यु, तलाक या परित्याग इत्यादि दशाओं के परिणामस्वरूप माता-पिता में से किसी एक का अभाव पाया जाता है। नष्ट परिवार भी निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं—

(i) मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नष्ट परिवार–ये वे परिवार हैं जहाँ माता-पिता तथा बच्चे इकट्ठे तो रहते हैं परन्तु अपने कर्त्तव्यों को नहीं समझते, एक-दूसरे का आदर नहीं करते तथा बच्चों की देख-रेख ठीक प्रकार से नहीं की जाती। ऐसे परिवारों में बच्चों को हीनता की दृष्टि से देखा जाता है, जिसके कारण उनका मन घर पर नहीं लगता तथा वे अकेला महसूस करते हैं और गलत रास्ते पर चल पड़ते हैं।

(ii) भौतिक दृष्टि से नष्ट परिवार– माता-पिता में से किसी एक का घर पर न रहना अथवा दोनों का न होना भी बाल अपराध के लिए जिम्मेदार है। तलाक, घर में लम्बी बीमारी तथा मृत्यु बच्चों पर बुरा प्रभाव डालती है। सौतेली माता का व्यवहार भी बच्चों को अपराधी बना सकता है।

2. दुर्व्यसन परिवार–दुर्व्यसन परिवार उन परिवारों को कहा जा सकता है जहाँ पर एकता की कमी होती है तथा लड़ाई-झगड़ों के कारण मानसिक तथा संवेगात्मक तनाव व संघर्ष पैदा होता है जोकि बच्चों के व्यवहार में अस्थायित्व लाने लगता है। असुरक्षा, चिड़चिड़ापन, सख्ती इत्यादि परिस्थितियाँ बच्चों पर बुरा प्रभाव डालती हैं तथा वे बाल अपराधी बन जाते हैं।

3. अपराधी प्रतिमानों वाले परिवार–कई परिवार ऐसे होते हैं जहाँ पर अपराध को प्रोत्साहन दिया जाता है। माता-पिता स्वयं बच्चों को बेईमानी से पैसा लाने, चोरी करने, जुआ खेलने तथा शोषण करने का प्रशिक्षण देते हैं। ऐसे परिवार में बच्चे जल्दी ही बाल अपराधी बन जाते हैं। बच्चों में अनुकरण करने की तीव्र शक्ति होती है तथा वे अच्छी-बुरी बातों का अनुकरण तीव्रता से कर लेते हैं। जब बालक परिवार के सदस्यों को अपराधी व्यवहार करता देखता है, तो वह भी उसे अपनाने का प्रयास करने लगता है।

4. माता-पिता का शून्य व्यवहार–जब माता-पिता अपने बच्चों का अधिक ध्यान रखते हैं और उन पर कड़ी निगरानी रखते हैं, तब उन बच्चों के बिगड़ने की सम्भावना कम होती है। वे बच्चे अधिकतर शीघ्रता से बिगड़ जाते हैं जिनके बारे में उनके माता-पिता ध्यान नहीं रखते हैं। ऐसे परिवारों में बच्चे सारे दिन घर से बाहर रहते हैं और माता-पिता उनसे कुछ भी पूछने का साहस नहीं रखते। माता-पिता के शून्य व्यवहार के कारण बच्चे गन्दी चौकड़ियों का शिकार हो बैठते हैं।

5. अनैतिक परिवार– अनैतिक परिवार से अभिप्राय ऐसे परिवार से होता है जिसमें परिवार का कोई सदस्य अनैतिक जीवन व्यतीत करता है। माता-पिता का चरित्र अगर दूषित है तो बच्चों का समाजीकरण ठीक तरह से नहीं हो पाता। कुछ माता-पिता बच्चों को समाज के प्रति समुचित ज्ञान नहीं करा पाते हैं क्योंकि वे स्वयं

सामाजिक मान्यताओं को महत्व नहीं देते हैं। बच्चे की माता या पिता का चरित्र अगर दूषित है, तो बच्चे बिगड़ जाते हैं और बाल अपराधी बन जाते हैं। घर में अनैतिकतापूर्ण व्यवहार तथा दुराचरण बच्चों पर कुप्रभाव डालते है तथा इनसे बच्चों में अपराधी मनोवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है।

NOTES

6. परिवार में निर्धनता–बाल अपराध तथा परिवार की आर्थिक स्थिति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। बाल अपराधों पर हुए सर्वेक्षणों के आधार पर यह पता चलता है कि बाल अपराधी अधिकतर उन परिवारों के पाए जाते है, जिनकी आय थोड़ी होती है। बच्चों की अनेक प्रकार की इच्छाएँ होती हैं। वह समाज में ऐसी वस्तुएँ देखता है जो मन मोह लेती हैं। जब सामान्य रूप से वह उन वस्तुओं को प्राप्त करने में विफल हो जाता है तो असामान्य ढंग से उन्हें प्राप्त करने का प्रयास करता रहता है तथा बाल अपराधी बन बैठता है। गरीबी के कारण छोटे-छोटे बच्चे नौकरियाँ करने निकल पड़ते हैं, बुरी संगति का शिकार बन बैठते है और अन्त में बाल अपराधी बन जाते हैं। परिवार उनकी इच्छाओं की पूर्ति करने में विफल रहता है। भारतीय समाज में परिवार की निर्धनता को बाल अपराध का प्रमुख कारक माना गया है।

7. छोटा घर तथा गोपनीयता का अभाव– औद्योगिक एवं नगरीय केन्द्रों में आवास एक गम्भीर समस्या है तथा सारे परिवार को एक या दो कमरों में ही गुजारा करना पड़ता है। ऐसे परिवारों में पति-पत्नी को सहवास के लिए गोपनीयता नहीं मिल पाती तथा बच्चों के सामने सभी प्रकार की बातें होती हैं जिनका उनके मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है। छोटे घरों में बच्चों के लिए खेलने के स्थान का भी अभाव होता है तथा अगर बाहर वह कुसंगति का शिकार हो जाता है, तो बाल अपराधी बन जाता है।

(ब) बाल अपराध के शारीरिक एवं व्यक्तिगत कारक–कुछ विद्वानों के मतानुसार शारीरिक एवं जैविक दोष भी बाल अपराधी बनाने में सहायक होते हैं। किन्तु यह कारक सर्वमान्य नहीं हैं। बर्ट ने बताया है कि कुछ अपराधियों में शारीरिक हीनता अवश्य देखने को मिलती है लेकिन अधिकांश बाल अपराधी शारीरिक दृष्टि से सामान्य ही होते हैं। डुगडेल ने भी जैविक हीनता को अपराध का आधार माना है। इनके अनुसार अपराधिता दोषपूर्ण वंश परम्परा के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित होती है। प्राय: ऐसा देखने में आया है कि जो बच्चे काने या लंगड़े होते हैं या जिनका शारीरिक विकास पूर्ण गति से विकसित नहीं हो पाता है, वे बच्चे बाल अपराधी बन बैठते हैं। निम्नलिखित शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक कारक बाल अपराध के लिए उत्तरदायी माने जाते हैं–

1. शारीरिक असामान्यताएँ– बाल अपराधियों में शारीरिक असामान्यताएँ तथा अस्वस्थ शरीर अधिकतर पाया जाता है। यह तभी होता है, जबकि बच्चे को पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता है। बच्चा अपने को कमजोर महसूस करने लगता है तथा उसको आलस्य घेरे रहता है, इसके फलस्वरूप वह स्कूल से अनुपस्थित रहने का प्रयत्न करता है, इसी बीच अगर उसे आवारा बच्चों का सम्पर्क मिल जाता है तो वह बाल अपराधी बन बैठता है। थर्सटन ने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि बाल अपराधी क्षेत्रों के बच्चों में पोषण सम्बन्धी दोष अपेक्षाकृत अधिक पाए जाते हैं अर्थात् अधिकांश अध्ययनों में शारीरिक असामान्यताओं और हीन स्वास्थ्य को बाल अपराधी और अनापराधी बालकों के अन्तर में महत्वपूर्ण पाया गया है।

2. शारीरिक दोष– अनेक विद्वानों का यह विचार है कि शारीरिक हीनता एवं विकार से बच्चे को समाज में असफलता मिलती है और इस असफलता की क्षतिपूर्ति अपराध द्वारा की जाने लगती है। प्राय: यह देखा गया है कि लंगड़ा, लूला या हकलाने वाला (Stammerer) बच्चा अपने साथी बच्चों से अलग ही रहता है और ऐसे बच्चों के अन्दर हीनता की भावना जाग्रत हो जाती है। अन्य बच्चे उससे छेड़छाड़ करते हैं जिसके फलस्वरूप उसके अन्दर प्रतिक्रिया व प्रतिशोध की भावनाएँ बढ़ती चली जाती है और ये भावनाएँ बाल अपराध का रूप धारण कर लेती है।

3. बीमारी–लम्बी बीमारी भी बाल अपराध का कारण मानी गई है। रोगी बच्चे चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाते हैं तथा उनका शारीरिक स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। बीमारी की स्थिति बच्चे को बाल अपराधी बनाने में सहायता देती है।

4. वंशानुक्रमण या पैतृकता–कुछ लोग बाल अपराध का कारक पैतृकता मानते है अर्थात् इनके अनुसार अपराधी माता-पिता के गुण उनकी सन्तान में हस्तान्तरित होते हैं। हैण्डी तथा रोशनॉफ ने अध्ययनों द्वारा यह बतलाने का प्रयास किया है कि बच्चों में अपराधिता पैतृकता द्वारा संचारित होती है। लेवी तथा ब्रोनस्टीन के अनुसार भी अपराधी बच्चों के स्पाइनल फ्लूइड (Spinal fluid) में अन्तर पाया जाता है।

5. अपूर्ण आवश्यकताएँ–कई बच्चों की मौलिक आवश्यकताएँ तथा आकांक्षाएँ पूरी नहीं हो पाती, जिससे बच्चों में असन्तुलन की स्थिति पैदा हो जाती है तथा वे बुरे कार्यों से अपनी अपूर्ण इच्छाओं को पूरा करने का प्रयास करते है जिससे कि वे बाल अपराधी बन जाते हैं।

(स) बाल अपराध के मनोवैज्ञानिक कारक–सामाजिक अनुसन्धानकर्ता, विशेषत: मनोवैज्ञानिक चिकित्सक, मस्तिष्क को बाल अपराध का एक महत्वपूर्ण कारक समझते हैं। गोडार्ड ने यह सिद्ध किया है कि करीब-करीब सभी अपराधी निम्न बुद्धि के होते हैं तथा मानसिक दुर्बलता की सीमा के निकट होते हैं। बाल अपराध के प्रमुख मनोवैज्ञानिक कारक इस प्रकार है–

1. मानसिक हीनता– मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह स्वीकार किया गया है कि मानसिक हीनता बच्चों को अपराधी व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती है। यह मानसिक हीनता मन्द बुद्धि के कारण आती है तथा इसे जन्मजात माना जाता है। कभी-कभी मानसिक चोट के कारण भी ऐसा हो जाता है। मानसिक रूप से हीन व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ रह जाते हैं और उनकी चिन्तन शक्ति भी ठीक नहीं रह पाती है, इस प्रकार के बच्चे शिक्षण संस्थाओं में निर्देशों को तथा शिक्षा को ग्रहण करने में असमर्थ रह जाते हैं। गिलिन तथा गिलिन, बर्ट, शैल्डन तथा ग्लुक आदि विद्वानों ने मानसिक हीनता को बाल अपराध का मुख्य कारक माना है।

2. संवेगात्मक संघर्ष और अस्थिरता–मानसिक अस्थिरता संवेगात्मक संघर्ष को जन्म देती है जिससे बालक अपराध करने के लिए प्रेरित होता है। मानसिक संघर्षों का परिणाम यह होता है कि बच्चे चोरी आदि करने लगते हैं और कभी-कभी तो संवेग में आकर घर आदि में आग लगा बैठते हैं। डोलार्ड के अनुसार भी मानसिक कुण्ठा बच्चों में आक्रमणकारी प्रवृत्ति को जन्म देती है जिसके कारण वह अपराधी व्यवहार करने लगता है।

3. कम बुद्धि वाले तथा बड़े बच्चे– कई बच्चे अपनी आयु के बच्चों से काफी कम बुद्धि वाले होते हैं। दूसरी तरफ, कई बच्चे इतनी ज्यादा जल्दी बड़े होते हैं कि अपनी वास्तविक आयु से कहीं अधिक बड़े दिखाई देते हैं। ऐसे बच्चों की सहयोगी बच्चे हँसी उड़ाते हैं जिससे उनमें हीनता की भावना (Inferiority complex) आ जाती है। वे अपने जीवन से निराश हो जाते हैं तथा अपराधी व्यवहार को अपना लेते हैं, इस प्रकार, हीनता की भावना इन कम बुद्धि वाले बच्चों तथा बड़े बच्चों को बाल अपराधी बना देती है।

(द) बाल अपराध के सामुदायिक कारक–अनेक सामुदायिक कारक भी बाल अपराध में सहायक होते हैं। प्रमुख सामुदायिक कारक निम्न प्रकार हैं–

1. बुरा पड़ोस–गन्दा अथवा बुरा पड़ोस भी बाल अपराध को प्रोत्साहन देता है। भीड़ वाले स्थानों तथा गन्दी बस्तियों और पड़ोसों में बाल अपराधियों की संख्या अधिक पाई जाती है। वेश्यावृत्ति, सस्ते उत्तेजक कार्यक्रम तथा वयस्क अपराधियों के कारण इन स्थानों पर रहने वाले बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा वे भी असामाजिक कार्य करने लगते है तथा बाल अपराधी बन जाते हैं। न्यूमेयर के अनुसार मित्रों का चुनाव ही बच्चों को बिगाड़ता अथवा बनाता है। सदरलैण्ड ने भी कुसंगति को बाल अपराध का प्रमुख कारक बताया है। अगर बच्चा अपराधी समूह के साथ अधिक समय तक रहता है या बार-बार ऐसे उस समूह के सम्पर्क में आता है तो उसके बाल अपराधी बनने की पूरी सम्भावना होती है।

2. स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन का अभाव– आधुनिक विद्वानों ने इस बात पर जोर दिया है कि बाल अपराधी उन परिवारों या क्षेत्रों में अधिक होते है, जहाँ पर बच्चों को खेलने एवं मनोरंजन के स्वास्थ्यप्रद साधन उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। ऐसी अवस्था में बच्चा सारे दिन सड़कों पर घूमता रहता है या इधर-उधर भटकता फिरता है। प्राय: ऐसा बड़े नगरों में अधिक देखा गया है। गन्दी बस्तियों में इन सब साधनों का अभाव होता है जिसके कारण बच्चे बुरी आदतों के शिकार हो जाते हैं। अवकाश के समय अगर सही मनोरंजन का साधन नहीं मिल पाता तो मस्तिष्क गलत बातें सोचने लगता है। ब्लमर तथा होजर के अनुसार चलचित्रों को देखने वाले बच्चों और व्यक्तियों में अपराध से सम्बन्धित अनेक उत्तेजनाएँ तथा विचार होते हैं जिनकी अभिव्यक्ति अपराध के द्वारा की जाती है। आज अधिकांश चलचित्र अपराध, रोमांस, मारपीट व नग्नता से भरपूर होते हैं और इनका बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मनोरंजन के अभाव में बच्चे अपना खाली समय ऐसे लोगों के साथ काटने लगते हैं जो उन्हें गन्दी आदतें सिखा देते हैं और अपराध की प्रेरणा देते हैं।

3. स्कूल की परिस्थिति–कुछ विचारक स्कूल को भी बाल अपराध का एक प्रमुख कारक मानते हैं। कई स्कूलों की परिस्थिति ऐसी होती है कि वहाँ पर बच्चे अधिक देर नहीं रुक सकते। उनकी कक्षा में बैठने की रुचि नहीं होती तथा स्कूलों से अनुपस्थित रहने लगते हैं। वे पूरा समय स्कूल से बाहर रहकर सिगरेट पीते हैं, जुआ खेलते हैं, लड़कियों पर व्यंग कसते हैं तथा सिनेमा तथा अपराधी कहानियाँ एक-दूसरे को सुनाते हैं। ऐसे लड़के परीक्षा में फेल हो जाते हैं, अपनी आयु के लड़कों में पिछड़ जाते हैं तथा बाल अपराधी बन जाते हैं। विलियमसन के अनुसार बाल अपराधियों में पाए जाने वाले कुछ असामान्य व्यवहार जैसे चोरी, यौन अपराध तथा स्कूल से भागने का कारण अध्यापक द्वारा कठोर दण्ड, बालक की उपेक्षा, तथा स्तर का ऊँचा होना है। स्कूल से भागने वाले बच्चे अपना समय ऐसे लोगों के साथ बिताते हैं जिनके कार्यों की प्रकृति समाज-विरोधी होती है।

4. नगरीकरण–नगरीकरण समय के साथ-साथ कुल जनसंख्या में नगरीय जनसंख्या के भाग में वृद्धि है। नगरीकरण सामाजिक विजातीयता, व्यक्तिवादिता, स्थानीय पृथकता तथा द्वितीयक सम्बन्धों को बढ़ावा देता है। परिवार तथा अन्य प्राथमिक समूहों का नियन्त्रण शिथिल पड़ जाता है। अत्यधिक आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा के कारण मानसिक चिन्ता व रोगों में वृद्धि हो जाती है तथा मनोरंजन के सस्ते साधन उपलब्ध हो जाते हैं। आवास की समस्या के कारण गन्दी बस्तियों का तीव्रता से विकास होने लगता है। इन बस्तियों में अनैतिक कार्यों की भरमार होती है। पारिवारिक नियन्त्रण की शिथिलता व अन्य सामुदायिक परिस्थितियाँ नगरों में बाल अपराधों को प्रोत्साहन देती हैं, इसलिए अधिकांश नगरों में ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में बाल अपराधियों की संख्या कहीं अधिक होती है।

5. आपत्तिजनक साहित्य– आपत्तिजनक साहित्य भी बाल अपराध का एक कारक माना गया है। कई अखबार वाले अपराध से सम्बन्धित खबरों को बढ़ा-चढ़ा कर छापते हैं। अपराध की विधि बताकर तथा अपराध के लिए दण्ड न दिए जाने की आवश्यकता पर जोर देकर पुलिस व्यवस्था का उपहास उड़ाते हैं। अश्लील तथा यौन इच्छा भड़काने वाले चित्रों तथा चोर डाकुओं की कथाओं (जो बच्चे सिनेमाओं में देखते या पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ते हैं) का बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है और बच्चे बाल अपराधी हो जाते है। टैफ्ट तथा इंग्लैंड के अनुसार पत्र-पत्रिकाएँ अपराध विधि का विवरण देकर, अपराधों को लाभप्रद बताकर, अपराधी को हीरो निरूपित करके तथा अपराधी को प्रतिष्ठा प्रदान करके अपराध व बाल अपराध को बढ़ावा देती हैं।

6. अपराधी क्षेत्र– अगर बालक अपराधी क्षेत्रों (जहाँ अपराधी व अनैतिक कार्यों में लगे लोग जैसे वेश्याएँ आदि रहती हैं) में रहते हैं तो इसका उन पर बड़ा कुप्रभाव पड़ता है और वह अपराधी मूल्यों को ग्रहण कर लेता है। शॉ तथा मैक्के ने इक्कीस अमेरिकी नगरों की परिस्थिति सम्बन्धी दशाओं के अध्ययन के आधार पर अपराधी क्षेत्र तथा बाल अपराध के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया है।

7. युद्ध– युद्ध करने वाले दोनों देशों में भी बाल अपराधों को बढ़ावा मिलता है। युद्ध के द्वारा सामाजिक विघटन होता है और छोटे-छोटे बच्चों की ठीक प्रकार से देखभाल कोई नहीं कर पाता। रात्रि में ब्लैक आऊट आदि के कारण अन्धेरा होने पर घर से भागने का अच्छा अवसर प्राप्त हो जाता है। लूटमार भी होने लगती है और बच्चे भी इन आदतों का शिकार बन जाते हैं। द्वितीय विश्युद्ध काल में यूरोप के सन्दर्भ में इलियट तथा मैरिल ने यह लिखा है कि इस काल में अमेरिका में बाल अपराधों में 50 प्रतिशत की वृद्धि हो गई। लड़कियाँ शीतकाल की अपेक्षा युद्ध काल में यौन-आकर्षणों में फँसकर बड़ी संख्या में पतोन्मुखी हो गई क्योंकि युद्धकाल में अपराधों की संख्या में अन्धाधुन्ध वृद्धि होती है तथा बालक भी इसका शिकार बने बिना नहीं रह सकते।

(य) बाल अपराध के आर्थिक कारक– बाल अपराध के कारक के रूप में आर्थिक कारक भी महत्वपूर्ण हैं। आर्थिक कारकों में निम्नलिखित चार प्रमुख हैं–

1. निर्धनता तथा पराश्रयता–निर्धनता के करण बच्चे अपनी आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर पाते, जिसके कारण उनमें क्षोभ का जन्म होता है और इन चीजों को पाने के लिए वे अनैतिक तरीके अपनाते हैं। निर्धनता के कारण माता-पिता दोनों को नौकरी करनी पड़ती है, जिस कारण बच्चों की देखभाल नहीं हो पाती और न नियन्त्रण ही हो पाता है, इस दशा में बच्चों का बाल अपराधी बन जाना स्वाभाविक ही है। बर्ट एवं हीले ने अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष दिया कि लन्दन के आधे बाल अपराधी गरीब या बहुत गरीब घरों से आते हैं।

2. व्यापार चक्र– कुछ अध्ययनों से हमें यह पता चलता है कि व्यापार चक्रों के उतार-चढ़ाव के साथ अपराध की दर में वृद्धि या कमी पाई जाती है। गरीबी के साथ-साथ अत्यधिक समृद्धता भी बाल अपराधों को

जन्म देती है। अत्यधिक इच्छापूर्ति उसे बहुत से अनैतिक कार्य करने की प्रेरणा देती है। विद्वानों का मत है कि, "किसी देश में जब आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि होती है तभी बाल अपराधों की दरों में भी वृद्धि होती है।"

3. बेरोजगारी–आर्थिक दशा के निम्न होने का एक महत्त्वपूर्ण कारक बेरोजगारी या बेकारी है। बेकारी की दशा में भी वह अपना जीवन या अपने परिवार का जीवन- यापन करने के लिए उस प्रकार के ढंग अपनाता है, जो समाज और कानून की निगाहों में वर्जित है। जब अधिक संस्थानों में श्रमिक बेरोजगार हो जाते है तो यह पाया गया कि आस-पास के क्षेत्रों में अपराध की दर में वृद्धि हो जाती है।

4. निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति–बाल अपराधों पर हुए अध्ययनों से हमें यह भी पता चलता है कि अधिकांशत: बाल अपराधी निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति अर्थात् निम्न वर्ग के होते हैं। या तो उनकी उपसंस्कृति अपराध को प्रोत्साहन देती है या वे उच्च जीवन-यापन की अभिलाषा में असफल हो जाने के कारण अपराध की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। भारत में हुए अध्ययनों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि बाल अपराध का कोई एक कारक नहीं है अपितु इसके लिए अनेक कारक उत्तरदायी हैं। इतना हो सकता है कि इसमें एक कारक की प्रमुख भूमिका हो, जबकि अन्य कारकों की सहायक अथवा गौण भूमिका हो।

बोध प्रश्न

1. बाल अपराध की प्रकृति समझाइये।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. बाल अपराध के कारक बताइये।

   ....

   ....

   ....

   ....

3.5.1 भारत में बाल अपराध

भारत में बाल अपराध का बढ़ता अनुपात भी वैयक्तिक विघटन का द्योतक माना जाता है। 1998 ई. में कुल संज्ञेय अपराधों की संख्या 17,78,815 थी जिनमें बाल अपराधियों की संख्या 9,352 अर्थात् 0.5 प्रतिशत थी। 2008 ई. में कुल 20,93,379 संज्ञेय अपराधों में बाल अपराधियों की संख्या 24,535 अर्थात् 1.2 प्रतिशत थी। केवल दस वर्षों की अवधि में बाल अपराधियों की संख्या में दोगुना से अधिक वृद्धि हुई है। न केवल अपहरण एवं व्यपहरण जैसे अपराधों में बाल अपराधियों की संख्या में वृद्धि हुई है, अपितु हत्या, हत्या का प्रयास तथा बलात्कार जैसे अपराधों में भी लिप्त बाल अपराधियों की संख्या बढ़ी है। भारत में बाल अपराध के लिए वे सभी कारण उत्तरदायी माने जाते है जो इसके सामान्य कारण हैं।

3.6 बाल अपराध का उपचार : कुछ सुझाव

बाल अपराध एक गम्भीर समस्या है जिसका उपचार करना अनिवार्य है। उपचार में निम्नांकित सामाजिक इकाइयाँ अथवा सुविधाएँ सहायक हो सकती हैं–

1. **परिवार**–बालापराध को रोकने के लिए विद्वानों ने अपने भिन्न-भिन्न सुझाव रखे हैं। डॉ. सेथना का कथन है कि बालापराध निरोध में पारिवारिक संगठन का विशेष महत्व है। वास्तव में, बालापराध रोकने के लिए परिवार का बड़ा योगदान है। यदि परिवार बच्चे की उचित देख-रेख करे, बच्चे का समाजीकरण भी उचित प्रकार से हो तथा माता-पिता का नियन्त्रण रहे, तो बालापराध को रोका जा सकता है। मुख्य रूप से इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं–

(i) परिवार में माता-पिता सुशिक्षित होने चाहिए।

(ii) बच्चे के साथ ऐसा व्यवहार होना चाहिए जिससे कि उसकी भावनाएँ कुण्ठित न हों।

(iii) बालक का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाए जिससे कि माता-पिता को उसकी इच्छाओं के अनुकूल वातावरण बनाने में सहायता मिल सके।

(iv) परिवार को बालक की इच्छाओं का ध्यान रखा जाना चाहिए अन्यथा वह चोरी या अनुचित साधनों से अपनी इच्छाओं की पूर्ति का उपाय खोजेगा।

(v) परिवार की आर्थिक दशा अच्छी होनी चाहिए जिससे कि बालक को स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन के साधन भी उपलब्ध होते रहें।

(vi) बालक की रुचि सत्संग की ओर लगानी चाहिए।

(vii) माता-पिता को बच्चे की अभिरुचियों के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए।

(viii) बच्चों के साथ निर्दयता के स्थान पर प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार होना चाहिए।

(ix) बच्चों को उनके शारीरिक और मानसिक विकास के पूर्ण अवसर प्राप्त होने चाहिए, तथा

(x) परिवार में सभी बच्चों के साथ एक-समान प्रेम एवं व्यवहार होना चाहिए।

2. **विद्यालय एवं शिक्षक**–प्रसिद्ध विद्वान् ह्यूगो के अनुसार विद्यालयों का संगठन बालापराध को रोकने में अधिक सहायक होता है। स्कूल बालक की चतुर्मुखी प्रतिभा को विकसित करने के साधनों से युक्त एक ऐसा केन्द्र है जो उसे एक योग्य नागरिक बना सकता है, इसलिए ह्यूगो ने ठीक ही लिखा है कि, "वह जो एक स्कूल खोलता है, एक जेल बन्द करता है।" विद्यालयों में बालापराध को रोकने के लिए निम्नलिखित कार्य करने चाहिए–

(i) बालक की मनोवृत्तियों का विशेष रूप से अध्ययन किया जाना चाहिए।

(ii) विद्यालय में रहते हुए बालकों को पारस्परिक सहयोग की शिक्षा भी देनी चाहिए। डॉ. सेथना ने कहा है कि जैसे ही बच्चा स्कूल जाना आरम्भ करता है, वैसे ही उसको समाज में अन्य साथियों के साथ रहने का पाठ सिखाया जाना चाहिए।

(iii) विद्यालयों में एक ऐसा वातावरण बनाना चाहिए जिससे कि बालक दूसरों के गुणों को ग्रहण कर सकें।

(iv) शिक्षकों को पाठ्य सामग्री सरल बनाने का प्रयास भी इस दिशा में उचित होगा।

(v) शिक्षकों को इस योग्य होना चाहिए कि वे बच्चों में उन लक्षणों को पहचाने जो उन्हें बाल अपराधी बनाते हैं।

(vi) परेशान बच्चों की सहायता करने के लिए उन्हें परामर्श देने की प्रभावपूर्ण योजनाएँ होनी चाहिए तथा

(vii) स्कूल का वातावरण इतना रोचक एवं स्वास्थ्यप्रद बना देना चाहिए कि बच्चे स्कूल से अनुपस्थित न रहें।

स्कूल तथा अध्यापकों की शोचनीय हालत भी बच्चे को अपराधी बनाने में सहायक सिद्ध होती है। जब स्कूल की दशा शोचनीय होती है, वहाँ पर्याप्त स्थान (बच्चों के बैठने, खेलने आदि के लिए) नहीं होता तथा शिक्षकों की कमी होती है या स्कूल गन्दी बस्तियों या मनोरंजन केन्द्र (सिनेमा) के समीप स्थित होता है, तो बच्चों

में अपराधीपन की आदत पड़ना स्वाभाविक कहा जा सकता है। ऐसे स्कूलों के प्रति बच्चों का आकर्षण समाप्त हो जाता है। स्कूल जब किसी आकर्षण केन्द्र के समीप होता है, तो बच्चे स्कूल से भागकर आकर्षण केन्द्र की ओर आकर्षित हो जाते है और पूर्ण रूप से बुरी संगति का शिकार होकर बालापराधी बन जाते हैं।

शिक्षक का व्यवहार भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है। जब अध्यापक शिष्यों से ठीक व्यवहार नहीं करता, उन्हें प्यार न देकर मारपीट, डाँट-फटकार देता है, तो बच्चे स्कूल में अपनापन अनुभव नहीं करते हैं। बच्चों की स्कूल तथा शिक्षकों के प्रति रुचि नहीं रहती और वे स्कूल में आना पसन्द नहीं करते। बहुत से अध्यापकों का व्यवहार तो ठीक होता है लेकिन उनका पढ़ाने का ढंग नीरस होता है, जिसके कारण बच्चे पढ़ाई में कमजोर रह जाते हैं और कक्षा से जी चुराने लगते है, इसलिए बालापराध को रोकने के लिए स्कूल का उचित वातावरण परम आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सकों को स्कूलों में नियमित रूप से आमन्त्रित किया जाना चाहिए। डॉ. सेथना ने इस सम्बन्ध में सुझाव देते हुए अभ्यागत अध्यापकों (Visiting teachers) पर भी बल दिया है अर्थात् स्कूलों में ऐसे अध्यापकों को भी रखा जाए जो बच्चों के घर जाएँ और बच्चों के माता-पिता से बच्चों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करें।

3. स्वस्थ मनोरंजन के साधनों में वृद्धि– मनोरंजन व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकताओं में से एक है। थके हुए व्यक्ति को यदि उचित मनोरंजन प्राप्त हो जाता है तो वह अपनी सारी थकान भूल जाता है। बालक अधिक मनोरंजन चहता है। स्कूल में यदि बालकों के मनोरंजन के पर्याप्त साधन होते है तो वहाँ बालक बाहरी साधनों की ओर आकर्षित नहीं होते। लेकिन हमारे देश में दुर्भाग्यवश मनोरंजन के साधनों की बहुत कमी है। बालापराध को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि बच्चों के लिए मनोरंजन के उचित साधन उपलब्ध किए जाएँ।

4. सामुदायिक संगठन– सामुदायिक मूल्यों एवं दृष्टिकोणों में अपेक्षित गति से परिवर्तन आना कठिन है, लेकिन फिर भी कुछ न कुछ ऐसे परिवर्तन अवश्य किए जा सकते हैं जिनसे बच्चों को अपराधी बनने से बचने में काफी सहायता मिल सकती है। स्थानीय समुदायों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समुदाय की शक्ति एवं क्षमता को संगठित किया जाना चाहिए, इसी विचारधारा से प्रभावित होकर अमेरिका में सामुदायिक सहयोग समितियों की स्थापना की गई है। हमारे देश में भी इस प्रकार की समितियों की नितान्त आवश्यकता है। इन समितियों में स्थानीय किशोर न्यायालय, परीक्षण विभाग, पुलिस, शैक्षणिक तथा धार्मिक संस्थाओं, समाज कल्याण संस्थाओं तथा नागरिक संगठन के प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया जाता है, इस प्रकार की समितियों का मुख्य कार्य स्थानीय सामुदायिक आवश्यकताओं का अनुभव करके उनकी पूर्ति द्वारा अपराध निरोधक योजनाओं की रूपरेखा बनाना है।

सामाजिक कार्य की शाखा के रूप में समूह कार्य का विकास होता है। यह बालापराध निरोध में एक सफल प्रयत्न कहा जा सकता है, इसका आधार व्यक्तिगत कार्य (Case work) को सम्पूर्ण समूह पर लागू करने की आकांक्षा है, इसके अन्तर्गत दो विधियाँ अपनायी गई हैं– (अ) जिस बच्चे में अपराध का अंकुर निकल चुका हो, उन्हें खेल की टीम या अन्य स्वास्थ्य मनोरंजन (गोष्ठी आदि) के द्वारा स्वस्थ समूह में सम्मिलित करके समूह से उनका धीरे-धीरे समन्वय कराकर उनकी मनोवृत्ति को उचित दिशा में मोड़ना तथा (ब) बालापराधियों या उनसे मिलते-जुलते बच्चों की क्रियाओं का सामान्य एवं समायोजित व्यवहार की ओर मोड़ने का प्रयास करना।

3.7 बाल अपराध की रोकथाम से सम्बन्धित सुधारवादी संस्थाएँ

भारतवर्ष में बाल अपराध की रोकथाम और सुधार के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। बाल अपराध की रोकथाम या सुधार सम्बन्धी कानूनों के बनने से पहले भी अनेक समाजसेवी संगठन इस दिशा में कार्य कर रहे थे। डॉ. बुइस्ट द्वारा 1883 ई. में बम्बई में सबसे पहले सुधारात्मक स्कूल बाल अपराधियों के लिए खोला गया था। यह स्कूल आज भी 'दि डेविड सैसून इण्डस्ट्रीयल स्कूल के नाम से जाना जाता है और अपनी तरह का भारत में एक ही संगठन है। भारत में बालापराध की रोकथाम और सुधार के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं। अपराधी प्रक्रिया संहिता (Criminal Procedure Code) की धारा 311 (i) इस दशा में सबसे प्रथम कदम है, जो यह आदेश देती है किसी 15 वर्ष से कम आयु के बालक को न्यायालय किसी ऐसी सुधारक संस्था में भेज सकता है, जहाँ अनुशासन के साथ-साथ कोई उपयोगी दस्तकारी भी सिखाई जाती है।

भारत में बालापराधियों के सुधार हेतु निम्नलिखित संस्थाएँ गठित की गई हैं–

1. बोर्सटल स्कूल– इस संस्था का आविष्कार सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में हुआ। यहाँ 1902 ई. में सर ब्राइस ने बोर्सटल नामक स्थान पर एक गैर-सरकारी जेलखाना खोला जिसका उद्देश्य किशोर अपराधियों को वहाँ रखकर उनका सुधार करना था। 1962 ई. में भारत में सर्वप्रथम तमिलनाडु राज्य में बोर्सटल स्कूल की स्थापना हुई तथा इसके पश्चात् बंगाल, महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं मध्य प्रदेश में भी एक-एक बोर्सटल स्कूल की स्थापना की गई। उत्तर प्रदेश में भी यह नियम पारित हुआ और बरेली में बाल बन्दीगृह (Juvenile Jail) स्थापित किया गया जिसमें 15 वर्ष से 21 वर्ष तक के बच्चे रखे जाते हैं। उनके लिए वहाँ विविध व्यावसायिक एवं औद्योगिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है तथा नाना प्रकार की शिक्षा दी जाती है। इन स्कूलों के शिक्षक भी कुशल होते हैं। बच्चों को नैतिक शिक्षा भी दी जाती है। इन स्कूलों में इस बात पर अधिक बल दिया जाता है कि बच्चा यहाँ से निकलने पर समाज में अच्छा व्यवहार कर सके, इस समय इस पद्धति का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि अपराधी बालक के व्यक्तित्व को इस प्रकार बढ़ावा दिया जाए, ताकि वह अपराध की मनोवृत्ति को त्याग दे, इस प्रणाली में अपराध पर ध्यान न रखकर अपराधी पर ध्यान रखा जाता है।

इन संस्थाओं में बच्चों को छोटे-छोटे समूहों में रखा जाता है। इन समूहों का एक-एक पृथक् मोनीटर होता है। मोनीटर का चुनाव होता है तथा वह हाउस मास्टर (**House master**) कहलाता है। इन समस्त बच्चों में जो बच्चा बहुत अच्छे आचरण का होता है, उसे सरकार द्वारा **बैज धनराशि (Badge money)** भी दी जाती है।

2. सुधार अथवा रिफोर्मेटरी स्कूल– 1897 ई. में रिफोर्मेटरी स्कूल एक्ट (**Reformatory** School Act, 1897) सभी बड़े-बड़े राज्यों तथा कुछ केन्द्र शासित प्रदेशों में लागू किया गया था।

इसमें 15 वर्ष की आयु तक के बच्चे रखे जाते हैं तथा उन बच्चों को इन स्कूलों में–

(i) रात के समय अलग-अलग रखने की व्यवस्था है।

(ii) सफाई, रोशनी एवं पानी का उचित प्रबन्ध किया जाता है। खाने तथा कपड़े की भी व्यवस्था बहुत ही उचित होती है।

(iii) बीमार होने पर उनके लिए चिकित्सा की भी व्यवस्था होती है।

(iv) उनको औद्योगिक प्रशिक्षण उचित रूप से दिया जाता है।

हमारे देश में इस प्रकार की सात संस्थाएँ कार्य कर रही हैं।

3. बाल बन्दीगृह– बाल बन्दीगृह भी सुधार संस्था के रूप में विकसित किए गए हैं तथा ये बोर्सटल स्कूल के सिद्धान्तों पर निर्भर हैं। ये संस्थाएँ बिहार, उड़ीसा एवं उत्तर प्रदेश (बरेली) में स्थापित की गई हैं जिनको किशोर सदन के नाम से भी पुकारा जाता है, इस प्रकार की 92 जेल इस समय हमारे देश में हैं। इन संस्थाओं में सामान्यत: 21 वर्ष तक के बालापराधी रखे जाते हैं। वहाँ शिक्षा की व्यवस्था होती है तथा पढ़ने में रुचि रखने वाले बच्चों को बाहर पढ़ने की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। बरेली के बन्दीगृह में तो बच्चों द्वारा सहकारी व्यवस्था पर एक कैन्टीन भी चलाई जाती है जिसका प्रबन्ध बच्चे ही करते हैं। बच्चों की अनेक समितियाँ भी बनाई जाती हैं जिनका प्रबन्ध वे स्वयं करते हैं तथा चुनाव आदि भी स्वयं ही करते हैं। उत्तर प्रदेश के किशोर सदन में केवल उन्हीं बच्चों को रखा जाता है जिनकी आयु 19 वर्ष के लगभग होती है तथा बाल अपराधियों को एक साल से कम की सजा नहीं दी गई होती। तीन मास तक कारावास का अधिकारी उस बच्चे की निगरानी करता है और यदि बच्चा ठीक व्यवहार नहीं करता तो उसे केन्द्रीय कारावास भेज दिया जाता है।

4. रिमाण्ड होम– बाल अपराधियों को मामले की सुनवाई और जाँच-पड़ताल के दौरान इन्हीं सदनों में रखा जाता है ताकि उन पर अपराधियों का कुप्रभाव न पड़ सके। रिमाण्ड होम के कार्यों के बारे में डी. वी. कुलकर्णी ने लिखा है कि, "रिमाण्ड होम के बहुपक्षीय कार्य हैं। सुरक्षा का स्थान होने के साथ-साथ यह वह स्थान भी है जहाँ बाल अपराधियों के अवलोकन व वर्गीकरण का महत्वपूर्ण कार्य पूरा किया जाता है, विशेषत: प्रशिक्षित और अनुभवी प्रोबेशन अधिकारी खोज करते है और न्यायालयों के सम्मुख बच्चे के बारे में सभी आवश्यक तथ्य प्रस्तुत करते हैं।"

5. प्रमाणित स्कूल– बाल अधिनियम के अनुसार मुम्बई, आन्ध्र प्रदेश, केरल, मैसूर, उत्तर प्रदेश, पंजाब, दिल्ली एवं पश्चिम बंगाल में प्रमाणित स्कूलों की स्थापना की गई है। इन स्कूलों में साधारण शिक्षा के साथ-साथ

NOTES

औद्योगिक प्रशिक्षण (जैसे बढ़ईगिरी, दरी बुनना, कताई-बुनाई, कपड़े धोना, जिल्दसाजी, मधुपालन, कढ़ाई, संगीत, राजगिरी एवं कृषि सम्बन्धी ट्रेनिंग) की भी व्यवस्था होती है। प्रत्येक 12 बच्चों पर एक मोनीटर होता है। इन बच्चों में जो अच्छे आचरण से रहता है, उसको जेब खर्च तथा 14 दिन का अवकाश भी दिया जाता है। यह स्कूल दो प्रकार के होते हैं— (i) जूनियर सर्टिफाइड स्कूल, तथा (ii) सीनियर सर्टिफाइड स्कूल। इन दोनों में भिन्न-भिन्न आयु के बच्चे लिए जाते हैं, जैसे कि पहले प्रकार के स्कूलों की व्यवस्था राज्य सरकार के हाथ में होती है किन्तु कुछ स्कूलों की व्यवस्था सार्वजनिक समितियाँ भी करती हैं।

6. **बाल सलाह केन्द्र–** इन केन्द्रों के अन्दर मनोवैज्ञानिक ढंग से बच्चों का आचरण ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है, इस प्रकार का केन्द्र दिल्ली में खोला गया है जोकि आधुनिक मनोविज्ञान के ज्ञान पर आधारित है।

7. **बाल क्लब**–बाल अपराधी बच्चों के लिए आजकल बाल क्लबों की प्रथा को अपनाया गया है। हमारे देश में इस समय इस प्रकार के 33 क्लब हैं, जिनमें 7 मैसूर में, 3 चेन्नई में, 4 राजस्थान में हैं तथा बाकी अन्य राज्यों में हैं।

8. **फोस्टर होम–** न्यायालयों की अनुमति से बाल अपराधी को किसी सम्मानित परिवार को जो उस बालक की जिम्मेदारी वहन करने को इच्छुक व तैयार हो, सौंपा जा सकता है। वहाँ वह बिलकुल घर के वातावरण में अन्य हम-उम्र के बच्चों के साथ पलता है। उस परिवार के मुखिया, उसके फोस्टर माता-पिता कहलाते हैं। वास्तव में, अनेक समाज सुधारक व दयावान व्यक्तियों ने इस दिशा में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है।

9. **प्रोबेशन हॉस्टल–** इसके अन्तर्गत प्रोबेशन अधिकारी के अधीन बच्चों को रखा जाता है तथा उनके पढ़ने का उचित प्रबन्ध भी इन्हीं अधिकारियों के अधीन किया जाता है। प्रोबेशन अधिकारी इन बच्चों की रिपोर्ट बाल न्यायालयों को देता है। अच्छे आचरण करने पर बच्चे को न्यायालय की सलाह पर छोड़ दिया जाता है। लगभग प्रत्येक राज्य में यह व्यवस्था उपलब्ध है। प्रोबेशन अधिकारी बाल अपराधियों की समाज में पुनर्स्थापना में सहायता करता है।

10. **किशोर न्यायालय–बाल अपराधियों को** सामान्य वयस्क अपराधी न्यायालय की जटिल प्रक्रिया से दूर रखने के प्रयास के परिणामस्वरूप किशोर न्यायालय अलग से बनाए जाते हैं। बाल अपराधी के सम्बन्ध में न्यायालय के सम्मुख यह प्रश्न नहीं है कि अपराध हुआ या नहीं और अभियुक्त अपराधी है या नहीं? (ऐसा वयस्क अपराधियों के केस में किया जाता है) बल्कि प्रमुख प्रश्न यह है कि बालक ने अपराध क्यों किया? दोष कहाँ है और दोष से मुक्ति के उपाय क्या हैं? इसलिए बाल अपराधियों के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना की गई है। विश्व में सबसे पहला किशोर न्यायालय 1899 में शिकागो में स्थापित हुआ था। भारत में 1920 ई. का बाल अधिनियम बाल अपराधियों के लिए पृथक् किशोर न्यायालयों तथा बाल कल्याण परिषदों की स्थापना की व्यवस्था करता है। अब हमारे देश में किशोर न्यायालयों की स्थापना हो गई है। इन न्यायालयों का वातावरण साधारण न्यायालयों से भिन्न होता है। न्यायाधीश प्रायः महिला होती है। बम्बई में स्थापित सर्वप्रथम ऐसे न्यायालय की न्यायाधीश कुमारी बडन थीं। पुलिस सादे कपड़ों में आती है और इन न्यायालयों में अपराध के कारकों को जानने का प्रयास किया जाता है। यहाँ ऐसा कोई भी कार्य नहीं किया जाता जो बच्चे को भयभीत करे। यदि बच्चा अपराधी पाया जाता है तो उसे सुधार गृहों में भेज दिया जाता है।

3.8 सारांश

इस इकाई में हमने समूह संघर्ष एवं बाल अपराध की चर्चा की है। हमने बाल अपराध की प्रकृति, कारक उपचार को कानूनी दृष्टि से समझाने का प्रयास किया है। कम आयु के बच्चे जब कोई ऐसे कार्य करते है जो कल्याण के लिए हानिकारक हो कानून द्वारा निषेध है। हमने समूह संघर्ष और सामाजिक समस्याओं की एक शर्त के रूप में संघर्ष की प्रक्रिया के बारे में विचार-विमर्श किया है।

3.9 शब्दावली

संघर्ष –संघर्ष वह सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न व्यक्ति अथवा समूह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयत्न विरोधी हिंसा अथवा हिंसा की धमकी की चुनौती देकर करते हैं।

बाल अपराध– किसी समाज में कानून द्वारा निर्धारित निश्चित आयु से कम आयु के बच्चों द्वारा किया जाने वाला अपराध बाल अपराध कहलाता है।

3.10 अभ्यास प्रश्न

NOTES

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. बाल अपराध क्या है संक्षेप में बाल अपराध के प्रमुख कारणों को समझाइये।

लघुउत्तरीय प्रश्न

2. अपराध और बाल अपराध में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. बाल अपराध के आर्थिक कारक कितने हैं–

   (अ) पाँच (ब) चार (स) छः (द) सात

उत्तर 1. (ब)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Michael, J. and M. J. Adler, **Crime, Law and Social Science,** London : Kegan Paul, 1933.

Monteiro, J. B., **Corruption Control of Malad ministration,** Bombay : Manaktalas, 1966.

Mowrer, E. R., **Disorganization : Personal and Social,** New York : Lippincott, 1942.

Myrdal, Gunnar, **Asian Drama,** England : Penguin Books, 1968.

Neumeyer, Martin H., **Juvenile Delinquency in Modern Society,** New York : D. Van Nostrand Co. Inc., 1956.

●●●

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

अध्याय–4 भ्रष्टाचार (CORRUPTION)

इकाई की रूपरेखा

NOTES

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 भ्रष्टाचार का अर्थ एवं परिभाषाएँ
4.3 भ्रष्टाचार का समाजशास्त्र
4.4 भ्रष्टाचार का मनोविज्ञान
4.5 भ्रष्टाचार के स्वरूप
4.6 भ्रष्टाचार के क्षेत्र
4.7 भ्रष्टाचार के कारण
4.8 भ्रष्टाचार के परिणाम
4.9 भ्रष्टाचार के विरुद्ध अपनाये गये उपाय
4.10 भ्रष्टाचार के निरोध के लिए सुझाव
4.11 शब्दावली
4.12 सारांश
4.13 अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

विश्व के सभी समाज लोक जीवन में भ्रष्टाचार की समस्या से पीड़ित हैं। सम्भवत: आधुनिक सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ भ्रष्टाचार भी बढ़ा है। वन्य समाज में व्यक्ति 'सच्चा शरीफ इंसान' था, परन्तु सभ्य मानव तो आचरण के अनेक दोषों से युक्त है। रोमन साम्राज्य के ह्रास व पतन पर प्रसिद्ध इतिहासकार गिब्बन (Gibbon) ने लिखा था कि "भ्रष्टाचार संवैधानिक स्वतन्त्रता का सबसे अटल लक्षण है।" वास्तव में, सर्वाधिकारी व्यवस्थाएँ भी इसके प्रभाव से मुक्त नहीं है। स्टेटस (States) के अनुसार साम्यवादी रूस में भी घूस, राजकीय कोष के दुरुपयोग, नियुक्तियों के पक्षपात आदि के गम्भीर मामले घटित होते रहते हैं। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो. योगेन्द्र सिंह के अनुसार ऐतिहासिक दृष्टि से भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी एक ऐसी व्यवस्था में पनपती है, जहाँ आर्थिक संसाधनों से सम्पन्न एवं सशक्त वर्ग के लोग काम करते हैं, जो कानूनी व नैतिक नियमों-आदर्शों के प्रतिकूल व्यवहार करते हैं, इस वर्ग में नौकरशाही, राजसत्ता एवं उद्योग से जुड़े लोग सम्मिलित हैं। उपहार, सुविधा शुल्क, पैसे आदि से सशक्त वर्ग से सम्पर्क करने का प्रयास भी भ्रष्टाचार का ही एक रूप है जो भारत में अंग्रेजों के जमाने से चला आ रहा है।

4.1 प्रस्तावना

1999 ई. में 'ट्रांसपरेंसी इण्टरनेशलन संस्था' द्वारा 99 देशों में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार यह तथ्य सामने आया है कि विश्व का कोई देश ऐसा नहीं है जहाँ भ्रष्टाचार बिलकुल न हो। यह और बात है कि यह कहीं ज्यादा है तथा कहीं कम। भारत दुनिया के सबसे अधिक भ्रष्टाचार युक्त देशों में सम्मिलित है। भ्रष्टाचार के मामले

में भारत से ऊपर सिर्फ पाकिस्तान था। वर्ष 2000 में यह सर्वेक्षण 90 देशों में किया गया। फौजी शासन के कारण पाकिस्तान में यह सर्वे नहीं हो पाया। 1999 की तुलना में 2000 में भारत का ग्राफ थोड़ा नीचे जरूर आया है लेकिन अब उसे दुनिया के भ्रष्टतम की श्रेणी में ही रखा गया है। यहाँ सर्वेक्षणकर्त्ताओं ने स्कैन्डिनोवियाई और अन्य कई देशों को ईमानदारी के लिए 10 में से 10 अथवा 8-9 अंक प्रदान किए, वहीं भारत को मात्र 2.8 अंक प्राप्त हुए। चीन की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। उसे भारत से थोड़ा ही ज्यादा 3.1 अंक मिले। भ्रष्टाचार के मामले में सबसे ऊपर नाइजीरिया का स्थान है, इसके बाद यूगोस्लाविया, उक्रेन, अजरबैजान, इण्डोनेशिया, अंगोला, कैमरून, रूस, केन्या, मोजाम्बिक, युगांडा, उजबेकिस्तान, वियतनाम, तंजानिया, आर्मेनिया, माल्डोवा, इक्वाडोर, वेनेजुएला, कोटि डी आइवरी, बोलीविया, फिलीपीन्स, भारत, रोमानिया, जिम्बाब्वे तथा कजाकिस्तान का स्थान है। सर्वेक्षण में यह तथ्य भी सामने आया कि न्यूजीलैण्ड, डेनमार्क, सिंगापुर, फिनलैण्ड, कनाडा, स्वीडन, ऑस्ट्रेलिया, स्विटजरलैण्ड, हॉलैण्ड, नार्वे, आयरलैण्ड, ब्रिटेन, जर्मनी और चिली के मुकाबले अमेरिका में भ्रष्टाचार कहीं ज्यादा है।

भारत में लोक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार एक गम्भीर समस्या है। सरकारीतन्त्र और राजनेताओं के भ्रष्ट कारनामे सामान्य जनता को आश्चर्य चकित कर देते हैं। वास्तव में, जनता का विश्वास उनके ऊपर से इन्हीं कारनामों के कारण उठता जा रहा है। आज धारणा यही है कि सब अपनी-अपनी तिजोरियों को भरने में लगे हुए हैं, किसी को जनता के दु:ख-दर्द सुनने या दूर करने में रुचि नहीं है। चोरी हो जाने पर भी क्षतिग्रस्त व्यक्ति प्राय: पुलिस में रिपोर्ट करने से हिचकता है, क्योंकि वह जानता है कि इसमें कोई लाभ नहीं होगा वरन् उलटा परेशान होना पड़ेगा।

4.2 भ्रष्टाचार का अर्थ एवं परिभाषाएँ

हम भ्रष्टाचार शब्द का प्रयोग दैनिक जीवन में करते हैं परन्तु उसकी ठोस परिभाषा करना बड़ा कठिन प्रतीत होता है। एक बात बिल्कुल स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार, व्यक्ति की किसी मनोवृत्ति, चिन्तन या गुण का नाम नहीं है, अपितु यह तो एक विशेष प्रकार के आचरण का परिचायक है जो भ्रष्ट माना जाता है। शाब्दिक दृष्टि से 'भ्रष्टाचार' व्यक्ति के उस आचरण को कहते हैं जो सामाजिक रूप से उसके अपेक्षित व्यवहार प्रतिमानों से हटकर है। अंग्रेजी भाषा में इसे 'Corruption' कहा जाता है जिसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Corrutus' से है, जिसका आशय है तौर-तरीके और नैतिकता में आदर्शों का टूट जाना, घूस आदि लेना। समाजशास्त्रीय अर्थ में भ्रष्टाचार लोक जीवन में प्रतिष्ठित व्यक्ति का वह आचरण है जिसके द्वारा वह अपने निजी स्वार्थ या लाभ के लिए अपने पद या सत्ता का दुरुपयोग करता है। इलियट एवं मैरिल (Elliott and Merrill) के अनुसार, "अपने अथवा अपने सगे सम्बन्धियों, परिवार वालों और मित्रों के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई आर्थिक अथवा अन्य लाभ उठाना भ्रष्टाचार है।" इन्होंने राजनीतिक भ्रष्टाचार की परिभाषा करते हुए लिखा कि, "राजनीतिक भ्रष्टाचार, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिगत लाभ करने के लिए किसी निर्दिष्ट कर्त्तव्य का जानबूझकर पालन न करना है।" इसी भाँति, रोबर्ट ब्रुक्स (Robert Brooks) के अनुसार, "इसमें किसी मूर्त या अमूर्त लाभ के लिए किए जाने वाले गैर-कानूनी कार्य भी सम्मिलित होते है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि भ्रष्टाचार अपने या अपनों के अथवा अपने राजनीतिक दल के लिए, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किया गया अपनी सत्ता का अनुचित व गैर-कानूनी प्रयोग है। अत: सामान्य शब्दों में व्यक्तिगत या पारिवारिक हित के लिए अपने कर्त्तव्यों की अवहेलना, अनैतिक व गैरकानूनी कार्य करना भ्रष्टाचार है, इसके अन्तर्गत गैर-कानूनी ढंग से कमाई करना, बेईमानी, छल-कपट, विश्वासघात, जालसाजी, अनैतिकता, पक्षपात, रिश्वत लेना, चोरी करना या करवाना, असत्य का आचरण करना आदि विविध बातों को सम्मिलित किया जाता है।

आजकल समाजशास्त्रीय व कानूनी क्षेत्र में भ्रष्टाचार के स्थान पर एक और व्यापक अर्थ वाला शब्द प्रयोग होने लगा है वह शब्द है 'अवचार' अथवा 'दुराचार' (Misconduct)। दुराचार अपने में भ्रष्टाचार को तो सम्मिलित करता ही है वरन् उन सब आचरणों को भी सम्मिलित करता है जो उस पद से अपेक्षित आदर्शों से गिरे हुए हैं, इस भाँति, दुराचार आचरण के सड़े (Rotten), दुर्गन्धयुक्त (Putrid), अशोभनीय (Improper), अशुद्ध (Impure) रूप को प्रकट करता है। राजनीतिक भ्रष्टाचार भी दुराचार का ही एक रूप है।

NOTES

4.3 भ्रष्टाचार का समाजशास्त्र

प्रो. योगेन्द्र सिंह ने भारतीय सन्दर्भ में 'भ्रष्टाचार के समाजशास्त्र' से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं का उल्लेख किया है। इनके अनुसार स्वतन्त्रता पूर्व भारत में भ्रष्टाचार बहुत कम था क्योंकि उस समय मध्य वर्ग बहुत छोटा था। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में भ्रष्टाचार का तेजी से विस्तार हुआ है। स्वतन्त्रता के पश्चात् राजसत्ता में प्रत्यक्ष नियोजन, पूँजी लागत की प्रक्रिया आदि के द्वारा नौकरशाही, प्रशासन, व्यापार एवं प्रबन्धन के क्षेत्र में ऐसे वर्गों का विकास हुआ जिनमें भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी की सम्भावना अधिक थी। स्वतन्त्रता के दो दशक बाद तक भारत में नौकरशाही एवं राजनीतिक नेतृत्व ईमानदारी को प्रोत्साहन देते थे परन्तु 1970 के दशक के बाद भारत में भ्रष्टाचार में जबरदस्त उछाल आया है। राजनीतिक पार्टियों के विघटन, नवीन पार्टियों के जन्म, क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद एवं सम्प्रदायवाद के राजनीति में घोलमेल से लोक जीवन में भी भ्रष्टाचार फैलने लगा। बार-बार होने वाले राजसत्ता में परिवर्तनों तथा कुछ राजनीतिक नेताओं की अत्यधिक उच्च व व्यक्तिगत महत्वकांक्षाओं ने राजनीति में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया। इनके अनुसार भारत में खुली प्रतियोगिता पर आधारित अर्थव्यवस्था के स्थान पर बन्द अर्थव्यवस्था ने नौकरशाही, औद्योगिक घरानों एवं राजनीतिक प्रतिष्ठानों की जेबें भरने का कार्य किया है। पूँजी की खरीद फरोत में भी बिचौलियों की महत्वपूर्ण भूमिका हो गई है।

प्रो. योगेन्द्र सिंह के अनुसार भ्रष्टाचार के लिए सार्वजनिक संस्थाएँ एवं व्यवस्था दोषी है। इन संस्थाओं के विकास के साथ भ्रष्टाचार पर निगरानी एवं नियन्त्रण करने वाली संस्थाओं का विकास नहीं हो पाया है। लोकायुक्त एवं लोकपाल विधेयक पर सभी राजनीतिक दल गम्भीर नहीं हैं। गोपनीयता के नाम पर सूचना के अधिकार से लोगों को वंचित रखा जाता है, जबकि गोपनीयता का कानून अंग्रेजों ने अपना स्वार्थ साधने के लिए बनाया था। भारत में भ्रष्टाचार फैलाने में मध्य वर्ग की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है क्योंकि यह वर्ग छोटे-छोटे स्वार्थों में इस कदर लिप्त है कि भ्रष्टाचार की घटनाओं को रोकने के बजाय उसे नजर अन्दाज करता रहा है। यद्यपि मध्य वर्ग भ्रष्टाचार को बुरा मानता है पर उसमें अपनी भागीदारी उसे बुरी नहीं लगती, इस 'समझौता परस्त मानसिकता' ने भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है।

बोध प्रश्न

1. भ्रष्टाचार का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

2. भारतीय सन्दर्भ में भ्रष्टाचार के समाजशास्त्र को बताइये।

....

....

....

4.4 भ्रष्टाचार का मनोविज्ञान

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अरुणा ब्रूटा ने भ्रष्टाचार के मनोविज्ञान को बड़े रोचक ढंग से समझाया है। इनके अनुसार भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण मूल्यों में होने वाला ह्रास तथा समाज के प्रति हमारी प्रतिबद्धता में आने वाली कमी है। प्रतिबद्धता में कमी होते ही व्यक्ति का आत्म विश्वास डगमगाने लगता है और जहाँ भी उसे थोड़ा-बहुत फायदा दिखाई देता है वह उसी तरफ झुकने लगता है। प्रत्येक व्यक्ति अवसर मिलने पर भ्रष्टाचार करने से नहीं चूकता। किसी कार्यालय में कार्य करने वाला एक क्लर्क यदि दफ्तर की स्टेशनरी, लिफाफे इत्यादि का प्रयोग अपने निजी कार्यों हेतु करता है, यदि एक शिक्षक विद्यालय में नहीं पढ़ाता, यदि व्यापारी कम तौलता है या मिलावट करता है या फिर एक ऑटो रिक्शा चालक अन्जान व्यक्ति से अधिक किराया वसूलता है तो क्या यह भ्रष्टाचार की परिधि में नहीं आता? इनका कहना है कि राजनेताओं के गलत आचरण पर हमें गुस्सा इसलिए आता है क्योंकि

हम राजनीति को केवल राजनीति की दृष्टि से देखते हैं एक व्यवसाय या कैरियर के रूप में नहीं। यदि कोई व्यक्ति कहता है कि वह जनता की सेवा करने के लिए राजनीति में आया है तो वह गलत कहता है। उसके दिलोदिमाग में ताकत की एक अतृप्त भूख है, इसीलिए जिसमें 'ताकत की चाहत' अधिक होती है वही राजनीति में सक्रिय होता है। आज अनेक कलाकार अपनी फण्डिंग अण्डरवर्ल्ड से करा रहे हैं, खिलाड़ी 'मैच फिक्सिंग' कर रहे हैं, डॉक्टर फार्मास्युटिकल कम्पनियों के हाथों में खेल रहे हैं, इसलिए भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज कौन उठाएगा। जब तक समाज एवं व्यवस्था के प्रति प्रतिबद्धता विकसित नहीं होगी भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना सम्भव नहीं है।

NOTES

4.5 भ्रष्टाचार के स्वरूप

भ्रष्टाचार कोई एक आचरण या दुराचरण नहीं है वरन् उसके अनेक तरीके प्रचलित हैं। घूसखोरी, झूठी रिपोर्ट तैयार करना, लोक-पद का दुरुपयोग व कुप्रयोग, गैर-कानूनी क्रियाओं का संरक्षण, लोक-धन का दुरुपयोग, भाई-भतीजावाद, राजनीति अपराधों का संरक्षण, चुनाव में अपनाए जाने वाले अनैतिक हथकण्डे आदि भ्रष्टाचार में सम्मिलित हैं। संक्षेप में भ्रष्ट क्रियाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है–

1. घूसखोरी तथा अनुचित लाभ–घूसखोरी सामाजिक जीवन में व्याप्त एक असाध्य रोग है। सरकारीतन्त्र के पदाधिकारी और लोकनेता यदि किसी भी व्यक्ति या समूह से उसके हित में कार्य करने या उसके विरुद्ध वैध कार्यवाही करने के लिए धनराशि स्वीकार करते हैं तो यह घूस या रिश्वत कहलाती है। भारत का अपराधी कानून इसे अवैध घोषित करता है और घूस से सम्बन्धित पक्षों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जाती है। परन्तु जब कोई कानून की पकड़ में आए तभी तो उसके विरुद्ध कार्यवाही होगी, और जब दोनों ही पक्ष (घूस लेने वाला और घूस देने वाला) इसकी गोपनीयता में रुचि रखते हों तो घूस का उन्मूलन कठिन कार्य बन जाता है।

2. संरक्षण–संरक्षण भ्रष्टाचार का सबसे सरल रूप है, इसके द्वारा लोक नेता अपने समर्थकों को नौकरियाँ, लाइसेंस, अनुदान, ऋण आदि दिलवाते हैं, इस भाँति, संरक्षण भी मोटे तौर पर दो प्रकार का हो सकता है– भाई-भतीजावाद (Nepotism) तथा पक्षपात (Favourtism)। यदि लोक जीवन में प्रभावी पदों पर आसीन व्यक्ति अपने बेटों, पोतों, नातेदारों को नौकरी या व्यवसाय में लाभ पहुँचाते हैं तो यह भाई-भतीजावाद कहलाता है और, यदि वे इस प्रकार के कार्य अपने समर्थकों, चमचों व दल के लोगों के लिए करते है तो यह पक्षपात कहलाता है। भारतीय समाज में संरक्षण दोनों ही रूपों में भयंकर रूप से व्याप्त है।

3. राजनीति-अपराधी गठबन्धन–राजनेताओं की निगाहें तो सदा अपने चुनाव पर रहती हैं अतः वे अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए अनुचित लाभ या संरक्षण का ही सहारा नहीं लेते वरन् अपराधियों का भी सहारा लेने में नहीं हिचकते। यही कारण है कि भ्रष्ट राजनेता या अधिकारी अपराधियों को संरक्षण दिए रहते हैं। कई बार तो विरोधियों की 'राजनीतिक हत्या' भी करा दी जाती है। ये अपराधी चुनाव के समय लोगों को आतंकित करने, झूठी वोट डलवाने या मत-पेटियों को बदलने आदि के काम आते हैं। राजनेताओं के संरक्षण के कारण वे कानून की पकड़ से बाहर रहते हैं। एफ. एम. थ्रेशर (F. M. Thrasher) ने इस विषय पर बहुत सूचनादायक सामग्री दी है और इस बात के प्रमाण पेश किए है कि राजनीतिक अपराधी गिरोह किस तरह सक्रिय होते हैं।

4. प्रतिवेदनों को फर्जी या झूठा बनाना– बहुत से मामलों में लोक-अफसरों या नेताओं की रिपोर्ट माँगी जाती है। वे उसमें अपने या अपनों के हित में मिथ्या तथ्य दे देते है और स्वार्थसिद्धि कर लेते हैं। तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर पेश किया जाता है। यह भी भ्रष्टाचार का ही एक रूप है।

5. लोक कोषों व सम्पत्ति का दुरुपयोग–सरकारी धन या सम्पत्ति का निजी या दल की स्वार्थसिद्धि के लिए दुरुपयोग किया जाता है। भ्रष्टाचार का यह स्वरूप भी आम रूप से प्रचलित है।

6. कानून के क्रियान्वयन को जानबूझकर रुकवाना–जो लोग नेताओं को और उनके दलों को बड़ी रकम प्रदान करते है अनेक बार कानूनों का उल्लंघन करने पर दण्ड से बच जाते हैं। आयकर, बिजली उपभोग सम्बन्धी भुगतान आदि अनेक व्यक्तियों के बकाया पड़े रहते हैं और वे अन्त में इनसे माफी पा जाते हैं।

7. भ्रष्टाचार का संस्थाकरण–सार्वजनिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में नजराना, दस्तूरी, कमीशन आदि के रूप में भ्रष्ट क्रियाओं ने एक नियमित रूप ले लिया है। समाज की स्वीकृति न होते हुए भी ये क्रियाएँ परोक्ष रूप से स्वीकृत ही हो गई हैं। ठेकेदारी व्यवसाय लोक अधिकारियों को अवैध कमीशन देने पर टिका हुआ है। कचहरी में आवाज लगाने वाले चपरासी से लेकर अन्य सभी कर्मचारी अपना - अपना हक या दस्तूरी माँगते

हैं। यह सब न्याय-मूर्तियों की नाक के नीचे ही घटित होता रहता है। यातायात कार्यालयों, आबकारी विभागों और पुलिस विभागों में व्याप्त भ्रष्टाचार दैनिक जीवन की सामान्य अनुभूतियाँ बन गई हैं।

अत: भ्रष्टाचार के अनेक रूप हैं, इस दिशा में लगे व्यक्तियों के मस्तिष्क बड़े प्रतिभावान होते हैं। अपने सम्पर्कों के माध्यम से सरकारी अफसरों एवं लोक नेताओं को सन्तुष्ट रखने के लिए बड़े आलीशान बंगलों या होटलों में सब तरह का प्रबन्ध रखा जाता है। स्वर्ण, सुरा और सुन्दरी के मोह जाल से कोई विरला ही अपना दामन बचाए रह सकता है। प्रश्न उठता है कि आखिर भ्रष्टाचार की जड़ें इतनी गहरी व मजबूत क्यों है? उसके विरुद्ध अभियान सफल क्यों नहीं हो पाता? इसलिए अब हम भ्रष्टाचार के क्षेत्रों एवं कारणों पर प्रकाश डालेंगे।

4.6 भ्रष्टाचार के क्षेत्र

सरकार के प्राय: सभी विभागों में भ्रष्टाचार बहुत बुरी तरह से पनप रहा है। राजस्व, आबकारी, आयातनिर्यात, आयकर, तटकर, कृषि, रेलवे आदि विभागों में यह अपनी चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है और छोटे-बड़े उद्योग एवं व्यापार-वाणिज्य के ठेकों, लाइसेंस, परमिट, ऋण अनुदान आदि में यह तीव्रता से फैलता जा रहा है। कचहरी तथा परिवहन विभाग में यह खुले आम संस्थागत रूप लेता जा रहा है और सेना, शिक्षा व स्वास्थ्य विभाग भी आज इससे अछूते नहीं रहे है। सन्थानम कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार कचहरी में पहले भ्रष्टाचार केवल निम्न स्तर पर ही व्याप्त था परन्तु अब यह उच्च स्तर पर फैल गया है। सन्थानम कमेटी ने भ्रष्टाचार की शिकायतों वाले विभागों की निम्न तालिका दी है—

1. उद्योग वाणिज्य विभाग,
2. सामुदायिक विकास और सहकारिता विभाग,
3. सुरक्षा सेना विभाग,
4. शिक्षा विभाग,
5. परराष्ट्र विभाग,
6. अर्थ-आबकारी, तटकर सुरक्षा, आर्थिक विकास, व्यय, आय-कर तथा राजस्व विभाग,
7. खाद्य और कृषि विभाग,
8. स्वास्थ्य विभाग,
9. गृह विभाग,
10. सूचना एवं प्रसारण विभाग,
11. सिंचाई और विद्युत विभाग,
12. श्रम व रोजगार विभाग,
13. न्याय विभाग,
14. खान विभाग,
15. रेलवे विभाग,
16. वैज्ञानिक शोध और संस्कृति विभाग,
17. इस्पात व भारी उद्योग विभाग,
18. यातायात व संचार विभाग,
19. डाक-तार विभाग,
20. पुनर्वास विभाग,
21. तामीरात विभाग,
22. राष्ट्रपति का सचिवालय,

23. प्रधानमंत्री का सचिवालय,
24. योजना आयोग, तथा
25. संघीय सार्वजनिक सेवा आयोग।

बोध प्रश्न

NOTES

1. भ्रष्टाचार के स्वरूपों का वर्णन कीजिये।

....

....

....

2. भ्रष्टाचार के क्षेत्र बताइये।

....

....

....

4.7 भ्रष्टाचार के कारण

किसी भी अन्य समस्या की तरह भ्रष्टाचार के भी अनेक प्रमुख कारण होते हैं। ये कारण व्यक्तिगत भी हो सकते हैं अथवा समाज की विभिन्न परिस्थितियों एवं पक्षों से भी सम्बन्धित हो सकते हैं। सरलता की दृष्टि से भ्रष्टाचार के कारणों को निम्नलिखित प्रमुख श्रेणियों में बाँटकर अध्ययन किया जा सकता है–

(अ) भ्रष्टाचार के व्यक्तिगत कारण–कभी-कभी व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसी विषम परिस्थितियाँ आ जाती हैं जिनका सामना वह सामान्य संवैधानिक तरीकों से नहीं कर पाता। कहा भी जाता है 'बुभुक्षित किं न करोति पापम्' अर्थात् भूखा व्यक्ति कौन सा पाप नहीं करता? अपनी बहनों, बेटियों के लिए दहेज के प्रबन्ध या नौकरी ढूँढने पर भी काम का न मिलना, या ऐसे काम का मिलना जिसमें दो समय का पर्याप्त भोजन भी न मिले व्यक्ति को भ्रष्टाचार के मार्ग पर आगे बढ़ा सकता है। आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में पीड़ित व्यक्ति भ्रष्टाचार के हाथों बड़ी सरलता से बिक सकता है।

(ब) भ्रष्टाचार के आर्थिक कारण–भ्रष्टाचार के लिए आर्थिक पृष्ठभूमि भी उपजाऊ बन जाती है। ऐसा निम्न कारणों की वजह से हो रहा है–

1. प्रतिस्पर्द्धात्मक भौतिकवादी जीवन-दर्शन–आधुनिकीकरण व औद्योगीकरण के साथ-साथ प्रतिस्पर्द्धात्मक भौतिकवादी जीवन-दर्शन भी बढ़ा है। आज हमारी सारी शिक्षा-दीक्षा प्रतिस्पर्द्धा के आधार पर होती है। हमें सिखाया जाता है कि हर क्षेत्र में सफलता ही प्राप्त नहीं करनी है वरन् उस कार्य-क्षेत्र में लगे अन्य व्यक्तियों से आगे भी निकलना है। अत: व्यक्ति केवल धनवान ही नहीं बनना चाहता वरन् अपने पड़ोसियों व रिश्तेदारों से अधिक धनवान बनना चाहता है, इस लक्ष्य की प्राप्ति में ईमानदारी से ओत-प्रोत साधन बड़े कठिन श्रम, धैर्य व तपस्या की माँग करते हैं। परन्तु प्रतिस्पर्द्धात्मक जीवन में इतनी प्रतीक्षा या धीरज के लिए स्थान कहाँ है? अत: व्यक्ति जल्दी ही, चाहे जैसे हो, सफलताएँ प्राप्त करना चाहता है, क्योंकि वह जानता है कि सफलता से बड़ी अन्य कोई उपलब्धि नहीं होती। यदि एक बार वह शीर्ष स्थान प्राप्त कर ले तो फिर कोई नहीं पूछता कि यह स्थान उसने कैसे प्राप्त किया है। अधिक से अधिक सम्पत्ति के संग्रहण पर आधारित भौतिक जीवन-दर्शन भ्रष्टाचार को अनिवार्य-सा बना देता है।

2. नव समृद्धों का आदर्श– आजादी के बाद देश में विकास की अनेक योजनाएँ लागू हो गईं। ठेके और लाइसेंसों का बोलबाला हुआ। जटिल व्यापारिक क्रिया में हेरा - फेरी का साहस कर सकने वाले अनेक व्यक्ति शून्य से लखपति बन बैठे है। इन नव-अमीरों का रहन-सहन भी बड़ा चमक-दमक वाला होता है। ये लोग अन्य व्यक्तियों के लिए सन्दर्भ समूह बन जाते है। अनेक अन्य व्यक्ति भी उनका अनुकरण कर समाज के प्रतिष्ठित वर्ग में सम्मिलित होने के लिए उनके द्वारा प्रयुक्त हथकण्डे अपनाने को प्रेरित हो जाते हैं।

3. महत्वाकांक्षा-स्तर का सतत वृद्धिरत स्वरूप– विकासोन्मुख समाजों में यह एक तीव्र समस्या है। चुनाव के समय हर राजनीतिक दल वोट प्राप्त करने के लिए जन-सामान्य की महत्वाकांक्षाओं की अग्नि को हवा देता है; चुनाव के बाद एक ऐसे दैवीय नगर की स्थापना का वायदा करता है जिसमें गरीबी, बेकारी आदि का नाम भी शेष नहीं रहेगा। यह भी देखा गया है कि जब तक व्यक्ति कष्टमय आर्थिक व्यवस्था (Pain economy) में रह रहा है, वह जो कुछ है उसी में सन्तुष्ट रहता है परन्तु तनिक भी व्यक्ति इस स्तर से ऊपर उठा कि उसके दिन-प्रतिदिन नए स्वप्न विकसित हो जाते हैं, उसकी नई माँगें होती हैं। विकासोन्मुख समाजों में इतने बढ़ते हुए महत्वाकांक्षा-स्तर की माँगों की पूर्ति के लिए पर्याप्त साधनों का अभाव होता है, इससे व्यक्ति निराश होता है और उसके नैतिक बन्धन ढीले होने लगते हैं। वह महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भ्रष्ट मार्ग अपनाने के लिए तैयार हो जाता है।

4. लाइसेंस, परमिट, कोटा व कण्ट्रोल तथा जटिल कर-प्रणाली पर आधारित आर्थिक व्यवस्था–यह सच है कि विकासशील देशों में साधनों की कमी है जिसके कारण कुछ वस्तुओं के नियन्त्रण के लिए 'लाइसेंस' व 'कोटा सिस्टम' होता है, परन्तु जहाँ कहीं भी ऐसी व्यवस्था होती है वहाँ भ्रष्टाचार पनपने के अवसर अधिक होते हैं। अफसरों व राजनेताओं के पास अपने विशेषाधिकार के आधार पर बाँटने को बहुत कुछ होता है और इन अनुग्रहों के वितरण में कुछ उनका भी भला हो जाए तो इसमें क्या बुराई है? और जब मियाँ-बीवी राजी तो बेचारा काजी क्या कर सकता है? दोनों ही पक्ष गुप-चुप अपने-अपने स्वार्थ पूरे करने में लगे रहते हैं। साथ ही यह भी कहा जाता है कि भारत में कर प्रणाली बड़ी जटिल व भारी है। व्यापारियों का तो यह कहना है कि यदि वे सभी कर दें और नम्बर दो का व्यवसाय न करें तो भूखों मरने लगेंगे। आमतौर पर यह देखा भी जाता है कि जिस वस्तु पर 'कण्ट्रोल' घोषित हुआ वही बाजार से गायब हुई।

5. राजनीतिक-व्यापारी-अपराधी सहजीवता–भ्रष्टाचार का एक कुचक्र राजनेता, व्यापारी व अपराधी के पराश्रयी सहजीवता के रूप में स्थापित हो चुका है। राजनेता को चुनाव के लिए बहुत बड़ी धनराशि चाहिए जो उसके पास प्राय: नहीं होती, उसकी पार्टी भी कोई व्यापार तो कर नहीं रही होती, इसलिए उसे भी चन्दा व अन्य साधन चाहिए। इतना ही नहीं चुनाव चक्रव्यूह में उसे शारीरिक बल की भी आवश्यकता होती है ताकि वह विरोधियों के पशु-बल का जवाब दे सके और उन्हें आतंकित भी कर सके। अत: उसे व्यापारी व समाज विरोधी अपराधी तत्वों के सहयोग की आवश्यकता होती है। व्यापारी को लाइसेंस व परमिट चाहिए, अपने हितों के संरक्षण वाली राजनीतिक नीतियाँ चाहिए, संसद या विधानसभा में व्यापारी हितों की रक्षा के लिए आवश्यक आवाज चाहिए, गैर-कानूनी ढंग से इधर-उधर से माल लाने वाले चाहिए तथा अपने मार्ग के रोड़ों को हटाने के लिए इस्पात का हाथ चाहिए। अत: व्यापारी को राजनेता व अपराधी की आवश्यकता होती है। अपराधी को अपनी अवैध कार्यवाहियों को चलाते रहने के लिए संरक्षण चाहिए, माल खपाने के लिए व्यापारी चाहिए। अत: व्यापारी राजनेता व अपराधी पर आश्रित है, इसी सहजीवता की स्थिति में ऊपर से परस्पर विरोधी दिखाई देने वाले तीनों पक्ष भ्रष्टाचार के शक्तिशाली स्तम्भ बन जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप तस्करी, मदिरालय, रंगीन रात्रि क्लब, जुआघर, वेश्यालय चलते रहते हैं और भ्रष्टाचार का अक्षय वट-वृक्ष फूलता-फलता रहता है।

(स) भ्रष्टाचार के पारिस्थितिकीय कारण–भ्रष्टाचार का पारिस्थितिकीय विज्ञान की दृष्टि से भी अध्ययन किया गया है। लासवैल (Lasswell) के अनुसार, विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या के राजनीतिक व सामाजिक मामलों पर दृष्टिकोण भी भिन्न-भिन्न है। गरीब व गन्दी (मलिन) बस्तियों में रहने वाले व्यक्ति राजनीतिक स्थिति की व्याख्या प्राय: दो दृष्टियों से करते है– एक तो उन्हें नागरिक संगठनों से रोजगार मिलता रहे, और दूसरे उन्हें अवैध इच्छाओं को (जैसे शराब या वेश्यागमन) पूर्ति के लिए सरल सुविधाएँ मिलती रहें, इसलिए वे नागरिक-प्रशासन के भ्रष्ट रूप को बनाए रखने में रुचि रखते हैं क्योंकि उनकी रोजी-रोटी का सवाल इससे जुड़ा है। प्राय: देखा गया है कि भ्रष्टाचार घनी बस्तियों और समवर्ती क्षेत्रों में अधिक होता है। कुछ लोक नेता इसके विरुद्ध आवाज उठाते हैं परन्तु वे इतने अल्पसंख्यक व असंगठित हैं कि संगठित भ्रष्टाचार के विरुद्ध शक्तिहीन हो जाते हैं।

(द) भ्रष्टाचार के प्रशासकीय कारण– भारतीय प्रशासकीय संरचना निम्नलिखित रूप में भ्रष्टाचार के उद्गम का कारण बन जाती है–

1. कानूनों का खोखलापन व कानूनी विधियों की जटिलता–भारत में कानून इतने जटिल और कानूनी-प्रक्रिया इतनी लम्बी, औपचारिक व दुरूह है कि सामान्य व्यक्ति के लिए उसका समझ सकना जटिल है। हमारी अधिकांश जनसंख्या अब भी अशिक्षित है अत: जब भी उसका कानून से कुछ वास्ता पड़ता है वे

भ्रष्ट तत्वों से मदद लेने के लिए मजबूर हो जाते हैं और कदम-कदम पर ठगे जाते हैं। पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी कानूनी-औपचारिकता के झंझटों व परेशानी से बचने के लिए भ्रष्ट तरीकों का सहारा लेने को प्रेरित हो जाता है। कानूनों का खोखलापन भी भ्रष्टाचार का कारण है। कानून बनते है एक उद्देश्य से, परन्तु अमल में आते समय उनका दूसरा ही रूप दिखाई पड़ता है।

2. कर्मचारीतन्त्र की लाल फीताशाही–मध्यम और निम्न श्रेणी के कर्मचारीतन्त्र के पास पहले ही अनैतिक लूट के लिए हथियार होते हैं। पुराने कागज ढूँढ़ना, केस का अध्ययन करना आदि अनेक ऐसे हथकण्डे है जिनके द्वारा किसी केस की फाइल प्रस्तुत करने में मनचाही देर लगाई जा सकती है। फाइलों का लाल फीता बड़ा मजबूत होता है, खुलता ही नहीं और उसकी चाल बड़ी धीमी होती है, परन्तु घूस की चिकनाई लगते ही फीता फिसल जाता है और फाइल के पंख उग आते हैं। वास्तव में, कर्मचारीतन्त्र की औपचारिक आवश्यकताएँ इतनी अधिक है कि भ्रष्टाचार के लिए अनगिनत रास्ते खुल जाते हैं।

3. प्रशासकों को विस्तृत विवेकाधिकारी सत्ता व शक्ति–प्राय: प्रशासन के कानून अंग्रेजों द्वारा बनाए गए थे। उन्होंने अपने अधिकार में लिए एक उपनिवेशिक देश पर शासन करना था तथा एक विदेशी कौम को गुलाम बनाए रखना था। स्वाभाविक ही उसके पास विस्तृत विवेकाधिकारी शक्ति का होना आवश्यक था। परन्तु अब भी वही अधिकार चले आ रहे हैं। अपराधों के लिए न्यायाधीशों के पास भी विस्तृत विवेकाधिकार है। प्राय: अधिकतम दण्ड की सीमा निर्धारित है। एक अपराध में, उदाहरणार्थ, 5000 रुपये तक जुर्माना हो सकता है और ऑफीसर के विवेकाधिकार की बात है कि चाहे तो मात्र 5 रुपये जुर्माना कर दे, इस विवेकाधिकारी शक्ति ने भी प्रशासकों के भ्रष्टाचार के क्षेत्र बढ़ा दिए हैं क्योंकि प्रशासन व प्रार्थी पारस्परिक लाभ के सौदे तय करने में समर्थ हो जाते है।

4. ईमानदार ऑफीसर की दुर्दशा–भ्रष्ट प्रशासनतन्त्र में यदि कहीं कोई ईमानदार ऑफीसर फँस जाता है तो उसके अधीन व्यक्तियों और कुछ सीमा तक उसके ज्येष्ठ अधिकारियों को उससे कष्ट होने लगता है। वे उसे अवांछनीय तत्व समझने लगते हैं और भ्रष्ट राजनेताओं की सहायता से उसका उत्पीड़न प्रारम्भ हो जाता है, उनकी पदोन्नति, स्थानान्तरण सभी कुछ प्रभावित होता है। अब धीरे-धीरे उसके सामने तीन मार्ग रह जाते हैं–प्रथम, वह भी भ्रष्टाचार की वृहद् मशीन का एक पुर्जा बन जाए, द्वितीय, वह स्वयं अपना दामन दागों से बचाए रखे और अपने सहकर्मियों के भ्रष्टाचार की ओर से आँखें मूँदे रखे और जब-तब उनकी सिफारिश भी मानता रहे और जैसे कटे अपना जीवन काटे तथा तृतीय, वह नौकरी छोड़ दे। स्पष्ट है कि निराश व सताया हुआ व्यक्ति प्राय: पहला ही मार्ग अपनाने की सोचेगा क्योंकि दूसरा मार्ग कठिन है और तीसरा तो इस बेरोजगारी के जमाने में आत्मघात है ही, इस भाँति, ईमानदार पदाधिकारी भी धीरे-धीरे कुण्ठित व उदासीन हो जाते हैं।

(क) भ्रष्टाचार के राजनीतिक कारण– लोक जीवन में भ्रष्टाचार राजनीतिक कारणों के परिणामस्वरूप ही सबसे अधिक प्रचलित है। प्रमुख रूप से निम्न राजनीतिक कारण इसके लिए जिम्मेदार है–

1. सत्ता की राजनीति–राजनीति का लक्ष्य केवल 'शक्ति' प्राप्त करके इसे बनाए रखना और उसका अपने और अपने दल के हित के लिए प्रयोग करना है। 'सत्ता की राजनीति' में नैतिक आदर्शों और राष्ट्रीय हितों के लिए कम ही स्थान रह पाता है। 'सत्ता' प्राप्त करने के लिए खुलकर धन व अन्य हथकण्डों का प्रयोग होता है। जब राजनेता ही भ्रष्ट है तो सामाजिक जीवन कैसे स्वच्छ रह सकता है।

2. खर्चीली व दोषपूर्ण चुनाव प्रणाली–प्रजातान्त्रिक प्रणाली में चुनाव भी एक बड़ा हास्यास्पद चित्र प्रस्तुत करते है। एक एम. एल. ए या एम. पी. के चुनाव में कम-से-कम 15 लाख से लेकर 20 लाख रुपया तक खर्च होता है। कैसा मजाक लगता है कि एक उम्मीदवार मतदाता से हाथ जोड़कर 'सेवा करने का हक' माँग रहे है, मानो किसी ने उन्हें सेवा करने से रोक रखा था। चुनाव क्षेत्र के लिए वे जब चाहें सामाजिक कार्य कर सकते हैं, परन्तु नहीं! अब वे सामाजिक सेवा करने के लिए जनता से हक माँग रहे हैं और उसके लिए लाखों रुपया खर्च कर रहे हैं, वह भी पाँच साल के लिए (कहीं मध्यावधि चुनाव हो जाएँ तो और भी कम समय के लिए)। वास्तव में, चुनाव में ये इतना खर्च तो विनियोग है, जिससे फिर लाभांश कमाना है। राजनीतिक दल कैसे-कैसे हथकण्डों से धन इकट्ठा करते हैं यह तो अब आम चर्चा का विषय है।

3. उच्च राष्ट्रीय नेताओं की प्रारम्भिक उदासीनता– आजादी के बाद भ्रष्टाचार का जो व्यापक प्रसार हुआ उसमें हमारे शीर्षस्थ राष्ट्रीय नेताओं की इस ओर उदासीनता भी एक प्रमुख कारण कही जाती है। यदि शुरू

में ही कड़ी कार्यवाही की जाती तथा इसकी रोकथाम के लिए प्रबन्ध किए जाते तो भ्रष्टाचार का नाग इतना बहुमुखी और विशालकाय न होता।

4. शक्तिशाली प्रचारतन्त्र–प्राय: राजनेताओं और व्यापारियों का प्रचारतन्त्र जैसे प्रेस, रेडियो, टेलीविज़न आदि पर काफी प्रभाव होता है। पत्रकार उनके आगे पीछे घूमते हैं। अत: वे अपनी छवि सही बनाए रखने के लिए और अपने कालिमामय कृत्यों को छिपाने के लिए प्रचारतन्त्र के द्वारा जनता में अनेक भ्रामक तथ्य भी फैलाते रहते हैं।

5. निष्पक्ष व प्रभावी जाँच-तन्त्र का अभाव–अभी तक ऐसी कोई निष्पक्ष, तटस्थ व शक्तिशाली संस्था विकसित नहीं हो सकती है जो लोक जीवन में लोक नेताओं के कुआचरण व भ्रष्टाचार के विरुद्ध शिकायत पर स्वतन्त्र रूप से जाँच कराती हो तथा निर्णय लेती हो। पिछले कुछ वर्षों में जो जाँच-आयोग बैठे वे सलाहकारी प्रकृति के रहे। अत: लोक जीवन में भ्रष्टाचार का घोड़ा बेलगाम उछलता-कूदता दौड़ता रहा।

(ख) भ्रष्टाचार के सांस्कृतिक कारण–भ्रष्टाचार के लिए हमारी समकालीन सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी हैं, क्योंकि इसके दो निम्नलिखित लक्षण भ्रष्टाचार के लिए सहयोगी कारण बन जाते हैं–

1. सांस्कृतिक मूल्यों में उभयभाविता व संघर्ष–परम्परा व आधुनिकता के बीच पला व्यक्ति सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति उभयभावी हो जाता है। वह एक 'मूल्य' के प्रति आकर्षण व घृणा दोनों ही दृष्टि रखने लगता है, इसी प्रकार अनेक क्षेत्रों में परम्परागत और आधुनिक मूल्यों में संघर्ष की स्थिति होती है। आधुनिक मूल्य उपलब्धि, भौतिक वस्तुओं के संग्रह, उपभोग के प्रतिमान से व्यक्ति की सफलता का मापदण्ड करते हैं और साधनों की शुद्धता पर अधिक जोर नहीं दिया जाता। परम्परागत मूल्य ईमानदार और शुद्ध साधनों को भी आवश्यक बताते हैं परन्तु सामाजिक संरचना व वातावरण ने ईमानदार व्यक्ति के लिए कोई प्रतिष्ठित पद छोड़े नहीं तो फिर व्यक्ति क्या करें? ऐसे मूल्य संघर्ष की सीमा पर खड़े व्यक्ति जरा भी बाधक परिस्थिति आने पर आदर्श की लक्ष्मण-रेखा पार कर भ्रष्टाचार के रावण के साथ चल पड़ते हैं।

2. चरित्र का संकट–वास्तव में, आज हमारे समाज में 'चरित्र' का संकट है। चरित्र के विकास की परम्परागत संस्थाएँ– कठोर पारिवारिक अनुशासन, गुरुकुल पद्धति, संस्कारों पर आधारित जीवनयात्रा– समाप्त हो गई हैं। आधुनिक संस्थाएँ 'चरित्र-निर्माण' पर आधारित नहीं हैं, अत: भारतीय राष्ट्रीय चरित्र गिरता ही चला गया है। ईमानदारी, सन्तोष, वचन पालन तो मध्य युग के पिछड़े गुण लगते हैं। आज तो अवसरवादिता, छीना-झपटी ही चरित्र का आधार बन गए हैं। कमजोर चरित्र भ्रष्टाचार के लिए उर्वर भूमि है।

(ग) भ्रष्टाचार के ऐतिहासिक कारण–भ्रष्टाचार के कारणों में इसकी ऐतिहासिकता को भी गिनाया जा सकता है। अंग्रेजी शासनकाल में प्रमुख अधिकारी अंग्रेज थे। वे देशी भाषाएँ नहीं जानते थे, इसीलिए हर काम के लिए बिचौलियों, एजेन्टों व ठेकेदारों की प्रणाली विकसित हो गई। अंग्रेज अफसरों के यहाँ डाली, नजराना आदि पहुँचाया जाने लगा तथा दफ्तरों में कर्मचारियों की कमीशन और दस्तूरी तय होने लगी। अंग्रेज तो गए पर देशी अफसर व कर्मचारियों ने विरासत में मिले भ्रष्टाचार को और व्यापक व संगठित रूप से फैलाया है। अत: भ्रष्टाचार समाज में अवैध एवं अस्वीकृति, परन्तु फिर भी यह एक सामूहिक आचार बन गया है।

इस भाँति, भ्रष्टाचार के कारणों का विस्तृत अध्ययन हमें बताता है कि भारत में भ्रष्टाचार की जड़ें बहुत मजबूत हैं और इसका प्रभाव भारतीय समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त है। शिक्षा के प्रांगण और देवालय व गिरजाघर भी इससे अछूते नहीं है। सच तो यह है कि स्वयं भ्रष्टाचार और आगे भ्रष्टाचार में वृद्धि का एक कारण है।

4.8 भ्रष्टाचार के परिणाम

भ्रष्टाचार के परिणामों का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है–

(अ) व्यक्ति की दृष्टि से भ्रष्टाचार के परिणाम– व्यक्ति की दृष्टि से भ्रष्टाचार निम्न प्रभाव डालता है–

1. चारित्रिक पतन–भ्रष्टाचार के परिणामस्वरूप व्यक्तियों का चारित्रिक पतन होता है। जो व्यक्ति इसमें लिप्त है उनसे किसी नैतिक या मानवीय आदर्श की आशा करना ही व्यर्थ है क्योंकि 'सत्ता', 'उपलब्धि या 'धन' ही उनके जीवन के मार्गदर्शक मूल्य बन जाते हैं। साधनों की शुद्धता का सवाल उठाना ही असंगत हो जाता है। चरित्र की दृष्टि से पतित ऐसे व्यक्ति न अच्छे प्रशासक हो सकते हैं और न राजनेता ही। काम चलता रहे या

'कुर्सी सुरक्षित रहे' ये ही उनके मूल मन्त्र हो जाते हैं। बाहर से वे भरे-पूरे रहते हैं परन्तु अन्दर से खोखले, क्योंकि अन्त: करण में तो वे अपराधी या हीन ही है। हर समय स्वयं के असली रूप को छिपाये रखने की उनकी चोर वृत्ति उनसे चारित्रिक अथवा नैतिक दृढ़ता छीन लेती है जोकि जीवन में सच्ची सफलता की कुंजी है। नैतिक पतन उन्हें जुआ, शराब, स्त्री-सहवास जैसी बुराइयों की ओर ले जाता है जिससे और आगे नैतिक पतन होता है।

2. व्यक्ति में निराशाओं व कुण्ठाओं का विकास–सदाचारी व्यक्ति भ्रष्टाचार के दैत्य के सम्मुख बौने बन जाते है। उनमें गुण और क्षमता होते हुए भी वे उनके विकास के अवसर नहीं पा सकते। अत: इनमें सापेक्षिक व बलात् अपने न्यायोचित स्थान से वंचित रह जाने की भावना निराशा भर देती है। वे स्वयं को उदासीन व शक्तिहीन महसूस करते हैं।

3. व्यक्ति का अलगावग्रस्त, सनकी व चिड़चिड़ा होना– सदाचारी निराश व कुण्ठित होने से और भ्रष्ट व्यक्ति अपनी शक्ति व सत्ता के मद में सनकी और चिड़चिड़े हो जाते है। वे पलायनवाद, एकाकीपन, आदर्शविहीनता की भावनाओं पर आधारित अलगाव के शिकार हो जाते हैं और भावात्मक दृष्टि से तनाव व उत्तेजित अवस्था में रहते हैं।

4. भ्रष्ट व्यक्ति की अनन्त हविश का विकास–भ्रष्टाचार की बीमारी का शिकार व्यक्ति कभी न मिटने वाली भूख– तन की भी धन की भी– विकसित कर लेता है और तृप्ति की तलाश में भटकता रहता है जोकि मृग-मरीचिका सी उससे दूर भागती रहती है।

(ब) समाज की दृष्टि से भ्रष्टाचार के परिणाम– इलियट एवं मैरिल ने बहुत उचित लिखा है कि राजनीतिक विघटन व भ्रष्टाचार, एक ही समय, सामाजिक विघटन का परिणाम व सहायक कारक हैं। वास्तव में, भ्रष्टाचार सामाजिक विघटन को उत्पन्न करता है। भ्रष्टाचार के सामाजिक कुपरिणाम निम्नलिखित हैं–

1. सामाजिक विघटन की प्रक्रिया को बढ़ावा–भ्रष्टाचार, सामाजिक विघटन को बढ़ाता है क्योंकि इसी के संरक्षण में जुआघर, वेश्यालय आदि चलते हैं। पुलिस अधिकारियों के क्षेत्र में ये अपराधी संगठन, संरक्षण के लिए नियमित 'सुरक्षाधन' (Protection money) क्षेत्र के इन्चार्ज को देते हैं और उसका बँटवारा श्रेणी के अनुसार कर्मचारियों को मिलता है। व्यक्तियों का नैतिक पतन उन्हें अपराध की ओर ले जाता है। जब व्यक्ति के पास काला धन आता है वह उसे सीधे कार्यों या सम्पत्ति आदि में तो दिखा नहीं सकता, इसे तो वह सुरा व सुन्दरी पर व्यय करता है। व्यक्तिगत विघटन से पारिवारिक विघटन को भी बल मिलता है।

2. सामाजिक असमानता में वृद्धि–भ्रष्टाचार के द्वारा धन कुछ ही हाथों में केन्द्रित होता जाता है। स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा के द्वार बन्द होते हैं और गरीब व अमीर के बीच खाई बढ़ती ही चली जाती है। जीविका के लिए गरीब भ्रष्ट कार्यों में दास की भाँति कार्य करते हैं, इस असमानता से असन्तोष व दोष बढ़ते हैं।

3. अलगावग्रस्त जनसमूह आन्दोलन के लिए तत्पर– असन्तोष से घिरे जनसमूह आन्दोलनों के लिए चारा बन जाते हैं। चालाक राजनेता या स्वार्थी समूह ऐसे जनसमूहों की भावनाओं को उभारकर कभी भड़का देते हैं और इसी कारण आए दिन तोड़-फोड़ की घटनाएँ होती रहती हैं।

4. दूषित राजनीतिक वातावरण का निर्धारण–भ्रष्टाचार के परिणामस्वरूप राजनीतिक व्यवस्था पूर्णत: दूषित हो जाती है। भ्रष्टाचार राजनीति द्वारा पोषित होकर राजनीतिक विघटन का कारण भी बन जाता है। राजनीतिक दृष्टि से भ्रष्टाचार के परिणाम निम्न हैं–

(i) राजनीतिक पार्टियों का नेतृत्व अवांछनीय तत्वों के हाथ में चला जाता है और पार्टी का सर्वांगीण पतन होता है।

(ii) राजनेताओं व प्रशासन पर से जनता का विश्वास उठ जाता है और जनता में असुरक्षा की भावना बढ़ती है।

(iii) कानून व्यवस्था भंग होने लगती है।

(iv) राजनेताओं की जनता को सही दिशा देने की क्षमता क्षीण हो जाती है, क्योंकि उनके वाक्य जनता को थोथे लगते हैं।

5. आजादी का अर्थहीन होना– एच. वी. कामथ ने सही कहा है कि भ्रष्टाचार की दुर्गन्ध स्वतन्त्रता की सुगन्ध को भी नष्ट कर देती है। भ्रष्ट परिस्थितियों में स्वतन्त्रता अर्थपूर्ण कैसे रह सकती है, जबकि व्यक्ति आतंकित, बाधित व असहाय महसूस करता हो।

6. सामाजिक सुधार व प्रगति में बाधा–भ्रष्टाचार से निहित स्वार्थ समाज सुधार के कार्यों में बाधा बन जाते हैं, क्योंकि सुधार द्वारा उनके हितों को चोट पहुँचती है। सरकार कानून भी नहीं बना पाती और यदि बना भी ले तो उसको क्रियान्वित नहीं कर पाती। विकास कार्यों में बाधा पड़ती है क्योंकि योजना-व्यय का बहुत बड़ा भाग विकास कार्य से हटकर भ्रष्टता की नीतियों से बहता हुआ व्यर्थ ही चला जाता है।

7. राष्ट्र-निर्माण में व्यवधान–भ्रष्टाचार राष्ट्र-निर्माण की गति को धीमा कर देता है। राष्ट्र-निर्माण बाँध बनाने से, बड़े-बड़े कारखाने लगाने से ही नहीं होता वरन् उत्तरदायी नागरिकों के निर्माण से होता है। अन्ततोगत्वा राष्ट्र के नागरिक ही हर विकास कार्य के हेतु हैं। यदि नागरिक ही चरित्र की दृष्टि से पतित हैं तो राष्ट्र का ह्रास भी अनिवार्य है। भ्रष्टाचार के इतने गम्भीर परिणाम होते हुए भी क्या किसी राष्ट्रीय नेता का इधर ध्यान नहीं गया? क्या राज्य ने इसके विरुद्ध कुछ नहीं किया? ऐसा नहीं है, भ्रष्टाचार के निरोध के लिए कुछ कदम भी उठाए गए हैं, यद्यपि उसके माध्यम से अभी तक अधिक सफलता नहीं मिल पाई है।

बोध प्रश्न

1. भ्रष्टाचार के कारण बताइये।

....

....

....

2. भ्रष्टाचार के परिणामों का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

4.9 भ्रष्टाचार के विरुद्ध अपनाए गए उपाय

स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान ही महात्मा गांधी ने भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठाई थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् इस दिशा में कुछ विशेष कदम उठाए गए हैं, जिन्हें प्रमुख रूप से इस प्रकार गिनाया जा सकता है–

1. 1947 ई. में भ्रष्टाचार निरोध-अधिनियम पारित किया गया जिसने भ्रष्टाचार की क्रियाओं की परिभाषा दी और दण्ड निर्धारित किए।
2. योजना आयोग ने श्री ए. डी. गोरवाला को प्रशासन के सुधार के लिए जाँच व सुझाव देने के लिए नियुक्त किया। 30 अप्रैल 1951 ई. को श्री गोरवाला ने लोक-प्रशासन पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, इसमें उन्होंने स्पष्ट दिखाया कि अनेक राजनेता भी दुराचरण में लिप्त हैं और यथा राजा तथा प्रजा कहावत को दोहराते हुए इस बात पर जोर दिया कि राष्ट्र के नेताओं को लोक जीवन में आदर्श व स्वच्छ आचरण रखना चाहिए।
3. लगभग इसी समय (9 अप्रैल 1951 ई.) श्री आयंगर की अध्यक्षता में नियुक्त कांग्रेस संसदीय दल की एक उप-समिति ने स्वर्गीय श्री बी. के. कृष्णमेनन के दुराचरण से सम्बन्धित जीप केस पर प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसमें भ्रष्टाचार के स्पष्ट उदाहरण थे। परन्तु खेद की बात यह है कि तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने केस दबा दिया, इस सम्बन्ध में सर्वश्री द्विवेदी व भार्गव ने लिखा है, "यदि श्री कृष्णमेनन द्वारा स्वीकार की गई भूलों के कारण कोई सरकारी अधिकारी अपराधी पाया जाता है तो उस पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए परन्तु श्री मेनन के केस में न केवल उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही ही की गई वरन् उन्हें मन्त्रिमण्डल में भी ले लिया गया। वे वहाँ तब तक सुरक्षित रहे, जब तक कि 1952 ई. में जनरोष की बाढ़ ने उन्हें लोक जीवन से बाहर कर लिया।" अतः राजनेताओं द्वारा भ्रष्टाचार का ऐसा संरक्षण भी घातकसिद्ध होता है।
4. 1952 ई. में जाँच आयोग अधिनियम पारित किया गया जिसके अनुसार लोकपाल के पद की भी व्यवस्था की गई।

NOTES

5. दिसम्बर 1957 ई. को लोकसभा में 'मुन्धरा केस' में तत्कालीन वित्त मन्त्री टी. टी. कृष्णमाचारी के आचरण को लेकर जोरदार बहस हुई और सरकार ने श्री एम. सी. छागला, जो उस समय बम्बई हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश थे, को जाँच आयोग के अध्यक्ष पद पर 17 जनवरी 1958 ई. को नियुक्त किया। श्री छागला ने 10 फरवरी 1958 ई. को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें श्री कृष्णमाचारी के आचरण को संदिग्ध पाया गया। टी. टी. कृष्णमाचारी ने मन्त्री पद से त्याग पत्र दे दिया। श्री नेहरू ने फिर उनकी प्रशस्ति की और थोड़े दिनों के बाद 1962 ई. में पुन: मन्त्रिमण्डल में वापस बुला लिया।

6. 1962 ई. में के. सन्थानम (K. Santhanam) की अध्यक्षता में भ्रष्टाचार निरोध पर एक कमेटी नियुक्त की जिसने अपनी रिपोर्ट 31 मार्च 1964 ई. को दी। वास्तव में, राजनेताओं और मन्त्रियों में भूतपूर्व गृहमन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा को यह श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने भ्रष्टाचार की समस्या को गम्भीरता से लिया और इसके उन्मूलन को अपना लक्ष्य बनाया। सन्थानम कमेटी की रिपोर्ट भी इस विषय पर बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत करती है।

7. 29 अक्तूबर 1964 ई. को केन्द्रीय एवं राज्य मन्त्रियों की आचरण संहिता भारतीय सरकार ने प्रकाशित की, जिसके अनुसार केन्द्रीय मन्त्रियों द्वारा आचरण-संहिता के पालन का दायित्व प्रधानमन्त्री का, मुख्यमन्त्रियों द्वारा पालन का दायित्व केन्द्रीय गृहमन्त्री का और राज्य के मन्त्रियों पर आचरणसंहिता लागू करने का दायित्व केन्द्रीय गृहमन्त्री तथा सम्बन्धित मुख्यमन्त्री का है। वे ही किसी मन्त्री द्वारा संहिता के उल्लंघन के विरुद्ध कार्यवाही का तरीका तय कर सकेंगे।

8. 1971 ई. में श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार ने लोक-आयुक्त बिल पेश किया जिस पर पूरी कार्यवाही न हो सकी।

9. 1977 ई. में जनता सरकार बनी। कांग्रेस का तीस वर्ष का शासन अपनी उपलब्धियों व असफलताओं की मीठी-खट्टी यादें छोड़ता हुआ समाप्त हुआ। प्रधानमन्त्री व गृहमन्त्री के पद पर क्रमश: श्री मोरारजी देसाई व श्री चरणसिंह आसीन हुए, जो अपने स्वच्छ व ईमानदार लोक जीवन के लिए प्रसिद्ध थे। श्री चरणसिंह भ्रष्टाचार के पुराने कट्टर शत्रु रहे हैं। उनका दृढ़ विश्वास था कि भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता है, अतएव शीर्षस्थ नेताओं और प्रशासकों में व्याप्त भ्रष्टाचार को पहले समाप्त करना होगा तभी नीचे तक लोक जीवन स्वच्छ हो सकेगा। परन्तु न तो प्रशासक वर्ग का उन्हें सहयोग मिला और न दलगत राजनीति की दल-दल मे फँसे राजनीतिज्ञों का, बल्कि उनसे गृहमन्त्री पद से इस्तीफा माँग लिया गया तथा जनता पार्टी आपसी फूट के कारण केवल 30 महीनों की अल्प अवधि में ही सत्ता से हाथ धो बैठी।

10. 22 जुलाई 1977 ई. को लोकसभा में भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष के लिए एक तटस्थ तन्त्र स्थापित करने के लिए लोकपाल बिल रखा गया। यह बड़ा व्यापक व दूरगामी प्रभाव डालने वाला प्रभावी अधिनियम है, इसमें लोक नायकों के दुराचार की परिभाषा दी गई है, लोक नायकों में कौन-कौन सम्मिलित होंगे वह बताया गया है और, उनके विरुद्ध कैसे तटस्थ, निष्पक्ष व प्रभावी जाँच किसके द्वारा होगी यह भी तय कर दिया गया। लगभग एक वर्ष के बाद कमेटी ने इस पर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कर दीं। इन सिफारिशों से, जोकि मान ली गईं मूल बिल की भ्रष्टाचार की व्याख्या व आत्मा पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा इसीलिए लोकपाल बिल भी अधिक प्रभावशाली नहीं रहा है।

11. पिछले पाँच दशकों में राजनेताओं तथा मन्त्रियों के बेटे, भाई-भतीजों एवं अपने स्वयं के दुराचार की जाँच के लिए अनेक आयोग बैठे हैं। 1977 का वर्ष तो आयोगों का वर्ष कहा जा सकता है। संघीय तथा राजकीय दोनों ही स्तरों पर अनेक आयोग बिठाए गए थे। शाह आयोग तो बच्चे-बच्चे की जुबान पर रहा है। इन सभी की रिपोर्टों का अध्ययन ही अपने आप में शोध का विषय है। करोड़ों रुपया व्यय कर इन आयोगों द्वारा कम से कम यह तो निर्विवाद सिद्ध हो गया कि भारतीय समाज गहरे तथा संगठित भ्रष्टाचार से पीड़ित है, इस रोग का निदान खोजना ही होगा अन्यथा भारतीय समाज रसातल में चला जाएगा।

इन उपर्युक्त प्रयासों का अध्ययन हमें अग्रलिखित निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए बाध्य करता है—

(i) अभी तक भ्रष्टाचार विरोधी अभियान में आधे दिल से कार्य किया गया है, इसीलिए कोई प्रभावी कदम नहीं उठाया जा सका है,

(ii) भ्रष्टाचार के दोषी पाए गए राजनेता भी दण्ड से साफ बच निकले हैं और आज भी लोकजीवन में सक्रिय हैं,

(iii) भ्रष्टाचार को प्रमाणित करना बहुत कठिन है, क्योंकि इसमें रत सभी पक्ष सत्ता में होते हैं, शक्तिशाली होते हैं और बड़ी चालाकी से भ्रष्ट कृत्य किया जाता है,

NOTES

(iv) जाँच आयोग बिठाकर भ्रष्टाचार के किसी मामले के तथ्य मालूम कर लेने से कुछ नहीं होगा जब तक कि दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध कड़ी व दूसरों को सबक देने वाली कार्यवाही न की जाए,

(v) देश के विभिन्न राज्यों में प्रशासकीय भ्रष्टाचार के विरुद्ध अभियान के लिए स्थापित सतर्कता अधिष्ठान भी इसे समाप्त करने में विफल रहे हैं यद्यपि उसका कार्यभार बढ़ता जा रहा है, जैसे उत्तर प्रदेश में ही इसकी स्थापना के प्रथम वर्ष 1964–65 में केवल 76 शिकायतों की जाँच की गई थी, यह संख्या 1977–78 में 740 हो गई थी परन्तु भ्रष्टाचार तो कम नहीं हुआ।

केवल आयोग बैठा देना भ्रष्टाचार के निरासन का उपाय नहीं है। उसके लिए सामाजिक और सार्वजनिक जीवन की बुनियादों को बदलना आवश्यक है। लोक नायक जयप्रकाश नारायण के ये विचार ध्यान में रखने योग्य है कि जो भ्रष्टता स्वयं सिद्ध हो उसको कानूनी दृष्टि से प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं होती।

4.10 भ्रष्टाचार के निरोध के लिए सुझाव

भ्रष्टाचार के निरोध के लिए प्रमुख सुझाव निम्नलिखित हैं–

1. भारत के अधिकतर कानून बहुत पुराने हैं। आजकल समाज की समस्याओं, भविष्य की महत्त्वकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए उनको नए सिरे से बनाया जाना चाहिए। सामाजिक हितों के विरुद्ध होने वाले अपराधों व दुराचारों को गम्भीर श्रेणी में रखा जाना चाहिए और उनके लिए कड़ी सजा की व्यवस्था होनी चाहिए।
2. प्रशासनिक ढाँचे और नियमों को सरल बनाया जाना चाहिए ताकि काम अविलम्ब और न्यायपूर्ण ढंग से हो सके।
3. प्रशासनिक अधिकारियों की विवेकाधिकारी शक्तियों का क्षेत्र स्पष्ट परिभाषित किया जाए और उसे संकुचित भी किया जाए।
4. कर-प्रणाली सीधी व सरल हो तथा कर-वसूलने के स्रोत भी निश्चित हों।
5. चुनाव प्रणाली में आमूल संशोधन हो। पिछले आम चुनावों का ढेर सारा अनुभव हमारे सामने मौजूद है। चुनाव की भ्रष्टता खत्म हो और चुनावों में धन की शक्ति का प्रभाव समाप्त किया जाए। स्वच्छ और योग्य व्यक्ति भी चुनाव लड़ सकें, ऐसी व्यवस्था की जाए।
6. सभी प्रकार की लाइसेंस व परमिट प्रणाली को समाप्त किया जाए।
7. प्रशासनिक ढाँचे में सुधार के साथ-साथ कर्मचारियों के वेतन-क्रम भी सुधारे जाएँ। नीचे वेतन-क्रम रखकर शायद सरकार खुद ही मानकर चलती है कि उसके विशिष्ट विभागों के कर्मचारी अपनी ऊपर की आमदनी से अपना काम चलाएँगे, यह गलत है। वेतन-क्रम ऐसे हों कि प्रत्येक पद के कर्मचारी अपने जीवन के उचित व सम्मानपूर्ण स्तर को बनाए रख सकें, तभी वे भ्रष्टाचार की ओर प्रेरित होने से बच पाएँगे।
8. भ्रष्टाचार के दोषियों की जाँच शीघ्रातिशीघ्र होनी चाहिए और अपराध की गम्भीरता के अनुसार व्यक्ति को शीघ्र व कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। ऐसे प्रशासनिक व न्यायिक निर्णय का व्यापक प्रचार भी किया जाना चाहिए।
9. लोकपालों की नियुक्ति अविलम्ब होनी चाहिए और उन्हें जाँच सम्बन्धी तथा न्यायिक अधिकार दिए जाने चाहिए।
10. आने वाले पीढ़ियों के चरित्र-निर्माण की विशिष्ट संस्थाएँ विकसित की जानी चाहिए, इसमें शिक्षाप्रणाली को सुधारना होगा।

11. सांस्कृतिक क्षेत्रों के मूल्यों में स्पष्टता लानी होगी। यह कार्य समाज सेवी संस्थाएँ अनुशासन व प्रचार द्वारा करें।
12. शीर्षस्थ राजनेताओं और अफसरों को अपने आचरण को सभी सन्देहों से ऊपर सिद्ध करना होगा। प्रो. गुन्नार मिर्डल का मत सही है कि भ्रष्टाचार से लड़ाई बिलकुल निराशाजनक है, यदि शीर्ष स्तरों पर उच्च पैमाने पर ईमानदारी और सत्यनिष्ठा नहीं है।

एट्जियोनी ने विकासोन्मुख समाजों में भ्रष्टाचार-निरोध की समस्या पर विचार व्यक्त करते हुए बड़ी सही बात लिखी है। उनके मतानुसार, "बुराइयों के स्रोत को, सहभागियों की शिक्षा व संस्कृति के परिवर्तन द्वारा और इस भाँति उनकी मनोवैज्ञानिक संरचना को बदलकर ही समाप्त किया जा सकता है जो एक लम्बी प्रक्रिया है।"

4.11 शब्दावली

भ्रष्टाचार – अपने अथवा अपने सगे सम्बन्धियों, परिवार वालों और मित्रों के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई आर्थिक अथवा अन्य लाभ उठाना भ्रष्टाचार कहलाता है।

4.12 सारांश

इस इकाई में हमने भ्रष्टाचार का अर्थ, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, स्वरूप क्षेत्रीयकरण की जातीय प्रक्रिया का अध्ययन किया है। विश्व के सभी समाज लोक जीवन में भ्रष्टाचार की समस्या से पीड़ित हैं। हमने इस इकाई में भ्रष्टाचार के उपाय एवं सुझावों को दूर करने के बार में विचार-विमर्श किया है।

4.13 अभ्यास प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. भ्रष्टाचार को परिभाषित कीजिए तथा इसके कारणों एवं परिणामों को समझाइए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

2. भ्रष्टाचार को रोकने के उपाय लिखें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भ्रष्टाचार के कारण कितने हैं–

   (अ) चार (ब) तीन (स) दो (द) एक

उत्तर 1. (स)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Brooks, Robert C., **Corruption in American Politics and Life,** New York : Dodd, Mead and Company, 1910.

Burt, C., **The Young Delinquent,** London : University of London Press, 1938.

Dwivedy, S. and G. S. Bhargava, **Political Corruption** in India, New Delhi : Popular Book Service, 1968.

Elliott, M. A. and F. E. Merrill, **Social Disorganization,** New York : Harper and Brothers, 1941.

Etzioni, Amitai, **Modern Organizations,** New Delhi : Prentice Hall of India (Pvt.) Ltd., 1965.

Ghurye, G. S., **Caste, Class and Occupation,** Bombay : Popular Book Depot, 1961.

Gillin, J. L. and J. P. Gillin, **Cultural Sociology,** New York : The Macmillan Company, 1948.

NOTES

Gist, N. P. and L. A. Halbert, **Urban Sociology**, New York : Crowell, 1933.

Giselher Wirsing, **The Indian Experiment : Key to Asia's Future**, New Delhi : Orient Longman, 1972.

Haikerwal, B. S., **Economic and Social Aspects of Crime in India**, London : Allen and Unwin, 1934.

Landis Paul H. and Judson T. Landis, **Social Living : Principles and Problems in. Introductory Sociology**, Boston : Ginn & Co., 1938.

Majumdar, D. N., **Races and Cultures of India**, Bombay : Asia Publishing House, 1961.

Michael, J. and M. J. Adler, **Crime, Law and Social Science**, London : Kegan Paul, 1933.

Monteiro, J. B., **Corruption Control of Maladministration**, Bombay : Manaktalas, 1966.

Neumeyer, Martin H., **Juvenile Delinquency in Modern Society**, New York : D. Van Nostrand Co. Inc., 1956.

Panikkar, K. M., **Hindu Society at Cross Roads**, Bombay : Asia Publishing House, 1967.

Puneker, S. D. and Kamla Rao, **A Study of Prostitutes in Bombay, Bombay** : Albed Publishers, Ltd., 1962.

Quinn, James A., **Human Ecology**, New York : Prentice-Hall, 1950.

Sellin, T., **Culture, Conflict and Crime**, New York : Social Science Research Council, 1938.

Sethna, M. J., **Society and the Criminal**, Bombay : Leaders Press Ltd., 1952.

States, S. J., **Corruption in the Soviet System and Problems of Communism**, Vol. 28, No. 1, January-February, 1972, U. S. A. Washington.

Sutherland, E. H., **White Collar Crime**, New York : Dyrden, 1949.

Sutherland, E. H., "White Collar Criminality" in **American Sociological Review**, Vol. 5. No. 1 1940.

Tappan, P. W., Crime, **Justice and Correction**, New York : McGraw-Hill, 1960.

योगेन्द्र सिंह, "भ्रष्टाचार का समाजशास्त्र", **राष्ट्रीय सहारा** (हस्तक्षेप), 31 मार्च, 2001, पृष्ठ 3.

●●●

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

अध्याय–5 निर्धनता (POVERTY)

NOTES

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 निर्धनता की अवधारणा
5.3 निर्धनता की माप
5.4 निर्धनता का विस्तार एवं परिमाण
5.5 निर्धनता के कारण
5.6 निर्धनता की समस्याएँ
5.7 निर्धनता निवारण की योजनाएँ
5.8 शब्दावली
5.9 सारांश
5.10 अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 उद्देश्य

आज निर्धनता एक प्रमुख सामाजिक समस्या है। यह दोनों विकसित एवं विकासशील देशों में अत्यधिक चिन्ता का विषय बनी हुई है। भारत की समस्याओं में भी निर्धनता सबसे गम्भीर समस्या मानी जाती है। ऐसा अनुमान है कि विश्व के एक-तिहाई निर्धन भारत में हैं। वर्ल्ड बैंक द्वारा 2005 में लगाए गए अनुमान के अनुसार भारत में 42 प्रतिशत लोग निर्धनता रेखा के नीचे जीवन-यापन करते है, इससे भारत में निर्धनता की स्थिति का पता चलता है। निर्धनता से सामाजिक निराशा जन्म लेती है तथा समाज में प्राय: उथल-पुथल का खतरा पैदा होने की सम्भावना बनी रहती है, इसलिए 'गरीबी हटाओ' आज सरकार का प्रमुख उद्देश्य बन गया है। भारत के करोड़ों लोगों के पास खाने के लिए रोटी, पहनने के लिए वस्त्र तथा रहने के लिए मकान नहीं हैं। निर्धन लोगों का जीवन स्तर अति निम्न है तथा वे न्यनूतम जीवन-निर्वाह स्तर से भी नीचे रह रहे हैं, इस इकाई का उद्देश्य भारत में निर्धनता की समस्या के विभिन्न पहलुओं की विवेचना करना है।

5.1 प्रस्तावना

भारत में आर्थिक विकास की दृष्टि से पिछड़े राज्यों में बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तराखण्ड, मणिपुर, त्रिपुरा तथा उत्तर प्रदेश प्रमुख हैं। इन राज्यों में प्रति व्यक्ति आय काफी कम है जिसके परिणामस्वरूप लाखों व्यक्ति ऐसे हैं जो निर्धनता, कुपोषण, अस्वास्थ्य एवं अशिक्षा की दशाओं में अपना जीवन-यापन कर रहे हैं। दिल्ली, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, गुजरात, तमिलनाडु, पंजाब तथा हरियाणा जैसे राज्यों में प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय आय की तुलना में काफी अधिक है तथा यह राज्य आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न माने जाते हैं। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न तमिलनाडु, महाराष्ट्र, दिल्ली तथा गुजरात जैसे राज्यों में देश के अन्य राज्यों की तुलना में औद्योगिक विकास भी अधिक हुआ है, जबकि पंजाब तथा हरियाणा में कृषि सम्बन्धी विकास अन्य राज्यों की तुलना में कहीं अधिक हुआ है। 1999 और 2008 के बीच हुई वार्षिक वृद्धि दर से इन राज्यों में हुई असमान वृद्धि का पता चलता है। गुजरात (8.8 प्रतिशत), हरियाणा (8.7 प्रतिशत) अथवा दिल्ली (7.4 प्रतिशत) में वार्षिक वृद्धि

की दर बिहार (5.1 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (4.4 प्रतिशत) अथवा मध्य प्रदेश (3.5 प्रतिशत) से कहीं अधिक रही। निर्धनता दर की दृष्टि से ग्रामीण उड़ीसा (43 प्रतिशत) तथा ग्रामीण बिहार (41 प्रतिशत) की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक रही है।

भारत में नगरीय क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता अधिक है। ग्रामीण निर्धनता में वृद्धि के साथ-साथ कृषक श्रम-शक्ति की संख्या भी बढ़ रही है। ग्रामीण विकास की विभिन्न योजनाओं, हरित क्रान्ति, भूमि सुधारों आदि का लाभ पहले से सम्पन्न ग्रामवासियों को ही मिल पा रहा है। समाज के निम्नतम वर्ग, जिन्हें सामाजिक-आर्थिक सहायता की सबसे अधिक आवश्यकता है, वे ग्रामीण समाज के विकास की इन सभी योजनाओं के लाभों से पूरी तरह से वंचित ही हैं, इसका एक अन्य परिणाम यह हो रहा है कि ग्रामीण समाज में अधिकाधिक सीमान्त और छोटे कृषक भूमिहीन श्रमिकों के रूप में परिवर्तित होते जा रहे हैं, जबकि भूमिहीन कृषक दरिद्र बनते जा रहे हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नवीन प्रौद्योगिकी एवं उन्नत किस्म के बीजों के प्रयोग से कृषि उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है, परन्तु इसका लाभ प्रमुखत: बड़े कृषकों या भू-स्वामियों को ही हुआ है। अत: कृषक संरचना में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया न तो कमजोर वर्गों को ऊपर उठाने में सहायक रही है और न ही उनकी आर्थिक दशा को उन्नत करने में, इसके विपरीत, नवीन कृषि प्रौद्योगिकी तथा भूमि सुधारों के लाभ कुछ बड़े-बड़े जोतों या फार्मों के मालिकों या 'आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न कृषकों' को ही अधिक हुए हैं। बढ़े हुए मूल्यों का लाभ भी छोटे तथा सीमान्त कृषकों की तुलना में बड़े कृषकों एवं भू-स्वामियों को ही मिल पा रहा है, इसके फलस्वरूप ग्रामीण भारत में असमानता, निर्धनता और दरिद्रता बढ़ी है। दरिद्रीकरण का सम्बन्ध बढ़ती हुई निरपेक्ष निर्धनता से ही है।

5.2 निर्धनता की अवधारणा

धन के अभाव को हम मोटे शब्दों में निर्धनता या गरीबी कह सकते हैं। यह एक सापेक्ष अवधारणा है क्योंकि इसका प्रयोग सदैव तुलनात्मक दृष्टि से किया जाता है। यह देश, काल एवं समाज की दृष्टि पर निर्भर करती है। जो व्यक्ति अपनी और अपने आश्रितों की न्यूनतम आवश्यकताएँ (भोजन, वस्त्र एवं आवास) पूरी करने तथा उनका भली-भाँति पालन-पोषण करने में असमर्थ है, उसे हम निर्धन कह सकते हैं। गिलिन एवं गिलिन (Gillin and Gillin) के शब्दों में, "निर्धनता वह दशा है जिसमें कोई व्यक्ति कम आय अथवा बुद्धिहीन खर्चे के कारण अपने जीवन-स्तर को अपनी शारीरिक तथा मानसिक कुशलता के योग्य रखने में असमर्थ रहता है तथा वह अपने स्वाभाविक आश्रितों को अपने समाज के स्तर के अनुकूल, जिसका कि वह सदस्य है, रखने में असमर्थ होता है।" इसी प्रकार, गोडार्ड (Goddard) के अनुसार, "निर्धनता उन वस्तुओं का अभाव या अपर्याप्त पूर्ति है जो कि एक व्यक्ति तथा उसके आश्रितों को स्वस्थ एवं बलवान बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं।" वीवर (Weaver) के शब्दों में, "निर्धनता एक ऐसे जीवन-स्तर के रूप में परिभाषित की जा सकती है जिसमें स्वास्थ्य और शरीर सम्बन्धी दक्षता नहीं बनी रहती है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि निर्धनता व्यक्ति की वह स्थिति है जिसमें वह अपनी और अपने स्वाभाविक आश्रितों की जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को भली-भाँति पूरा करने में असमर्थ होता है, इसका कारण धन का अभाव अथवा विवेकशून्य (बुद्धिमत्तारहित) व्यय हो सकता है, इसमें व्यक्तियों या समूहों के रहन-सहन का स्तर इतना नीचा हो सकता है कि उसके स्वास्थ्य, मनोबल और आत्मसम्मान को क्षति पहुँचने की नौबत आ जाती है।

निर्धन व्यक्ति की आर्थिक स्थिति का अत्यन्त दयनीय हो जाना दरिद्रता कहलाता है। दरिद्र व्यक्ति अपने तथा परिवार के सदस्यों का समाज के निम्नतम स्तर से अनुकूलन नहीं रख पाता, इस दृष्टि से दरिद्रता निर्धनता का ही एक विशिष्ट रूप है, इस शब्द का प्रयोग मार्क्सवादी विद्वानों ने पूँजीवादी व्यवस्था में अन्तर्निहित उन लक्षणों के लिए किया है जिनके परिणामस्वरूप श्रमिक निरपेक्ष रूप से अत्यधिक शोषण के कारण पूरी तरह से निर्धन हो जाता है। निर्धनता की तुलना में दरिद्रता एक निरपेक्ष अवधारणा है क्योंकि यह वह स्थिति है जिसमें किसी व्यक्ति से उसकी आय का स्रोत छिन जाता है तथा वह अपने एवं अपने आश्रितों के जीवन स्तर को बनाए

रखने हेतु पूर्णतया समाज पर निर्भर हो जाता है। 'दरिद्रता' एक पुराने फैशन का शब्द माना गया है जिसका अर्थ अत्यन्त निर्धन व्यक्ति है, जबकि दरिद्रीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोगों का एक समूह निर्धनता के निम्नतम स्तर पर पहुँच जाता है। अन्य शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि दरिद्रीकरण से अभिप्राय किसी निर्धन व्यक्ति को उसके आय के स्रोत से विमुख कर देना है। मार्क्सवादी विद्वानों (जैसे कार्ल मार्क्स, टॉम बॉटोमोर, जे. ई. इलियट, रोनाल्ड एल. मीक, ए. शेख, टी. सोवल इत्यादि) ने इस शब्द का प्रयोग छोटे तथा सीमान्त कृषकों के भूमिहीन श्रमिकों में बदल जाने तथा अत्यन्त निर्धन हो जाने की स्थिति के लिए किया है। इन विद्वानों के अनुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बाजारी शक्तियाँ श्रमिकों को शोषण के परिणामस्वरूप अन्ततः दरिद्रीकरण की ओर ले जाने में सहायक होती हैं। दरिद्रता की स्थिति में व्यक्ति अपने आपको असुरक्षित मानता है।

5.3 निर्धनता की माप

निर्धनता एक तुलनात्मक या सापेक्ष अवधारणा मानी जाती है, इसका निर्धारण किसी विशेष स्थान, समय तथा जीवन स्तर के मानकों के अनुसार किया जाता है। विभिन्न समाजों में जीवन स्तर के मानक एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। यही कारण है कि अमेरिका या जापान जैसे देशों में जिस स्तर के लोगों को निर्धन माना जाता है, भारत के मानकों के हिसाब से उन्हें निर्धन नहीं कहा जाता, इसीलिए यह कहा जाता है कि निर्धनता की धारणा को समझने हेतु किसी स्थान का जीवन स्तर, व्यक्ति की आय एवं उस पर आश्रित सदस्यों की संख्या तथा वस्तुओं का बाजार भाव को ध्यान में रखना अनिवार्य है। अर्थशास्त्रियों ने निर्धनता के माप हेतु अनेक पैमाने प्रस्तुत किए हैं। देश में उपभोग के लिए उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं के आधार पर राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जाता है। आय, आय का वितरण, मूल्यों का स्तर, रहन-सहन का स्तर आदि देखकर यह पता लगाया जाता है कि किसी विशेष समय में देश की आर्थिक स्थिति कैसी है। विभिन्न देशों की आर्थिक स्थिति की तुलना हेतु भी इन्हीं मापदण्डों को अपनाया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यदि व्यक्ति की प्रतिदिन की आय एक डॉलर से कम है तो उसे चरम निर्धनता (Extreme poverty) माना जाता है, इस माप के आधार पर भारत की 24 प्रतिशत जनसंख्या चरम निर्धनता की स्थिति में है।

निर्धनता को सामान्यतः निर्धनता रेखा (Poverty line) के सन्दर्भ में मापा जाता है। निर्धनता रेखा का निर्धारण निरपेक्ष आय अथवा उपभोग के स्तर के आधार पर किया जाता है तथा इसी से निर्धन एवं गैर-निर्धन में भेद किया जाता है। भारत में निर्धनता का अनुमान लगाने का कार्य भारत का योजना आयोग करता है जिसमें 1980 के दशक से जिस पद्धति को अपनाया है उसे इस कार्य हेतु गठित टास्क फोर्स ने 1979 ई. में सुझाया था। टास्क फोर्स ने 1973-74 में निर्धनता रेखा का अनुमान उस वर्ष की कीमतों को आधार मानते हुए ग्रामीण क्षेत्रों के लिए प्रति व्यक्ति 49 रुपये मासिक उपभोग तथा नगरीय क्षेत्रों के लिए 57 रुपये मासिक उपभोग माना था, इसमें प्रतिदिन प्रति व्यक्ति द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी तथा नगरीय क्षेत्रों के लिए 2100 कैलोरी के मापदण्ड को भी सम्मिलित किया गया। एक विशेषज्ञ दल द्वारा इस आधार की 1993 में पुनरीक्षा की गई, इस दल ने यह सुझाव दिया कि भारत जैसे अत्यधिक विविधता वाले देश में निर्धनता को राज्य स्तर पर मापा जाना चाहिए तथा इसी के आधार पर राष्ट्रीय स्तर पर इसका अनुमान लगाया जाना चाहिए।

आय पर आधारित निर्धनता रेखा में केवल खाने की माँग को पूरा करने हेतु न्यूनतम आय को ही ध्यान में रखा जाता है तथा स्वास्थ्य की देखरेख एवं शिक्षा जैसी अन्य अनिवार्यताओं की उपेक्षा की जाती है। 2000-01 में ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता रेखा के माप हेतु 328 रुपये प्रति व्यक्ति मासिक आय तथा नगरीय क्षेत्रों के लिए 454 रुपये प्रति व्यक्ति मासिक आय निर्धारित की गई। 2005-06 में यह आय क्रमशः 368 एवं 560 रुपये निर्धारित की गई। भारत में दसवीं पंचवर्षीय योजना में वंचन की मात्रा (Degree of deprivation) 13 प्राचलों के आधार पर मापी जाती है जिन्हें 0-4 अंक प्रदान किए जाते हैं। जिन परिवारों के कुल 52 अंकों में से 17 या इससे कम अंक आते हैं, उन्हें निर्धनता रेखा के नीचे वाले परिवार माना जाता है। इन प्राचलों में जोत, मकान के प्रकार, वस्त्र, खाने की सुरक्षा, स्वच्छता, उपभोक्ता वस्तुएँ, साक्षरता स्तर, बच्चों की स्थिति, ऋणग्रस्तता का प्रकार, प्रवसन के कारण इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।

5.4 निर्धनता का विस्तार एवं परिमाण

तालिका 1 : भारत में निर्धनता सम्बन्धी अनुमान

वर्ष	निर्धनता अनुपात (प्रतिशत में)			निर्धनों की संख्या (मिलियन में)		
	ग्रामीण	शहरी	मिश्रित	ग्रामीण	शहरी	मिश्रित
1973-74	56.4	49.0	54.9	261.3	60.0	321.3
1977-78	53.1	45.2	51.3	264.3	64.6	328.9
1983	45.7	40.8	44.5	252.0	70.9	322.9
1987-88	39.1	38.2	38.9	231.9	75.2	307.1
1993-94	37.3	32.4	36.0	244.0	76.3	320.3
1999-2000	27.1	23.6	26.1	193.2	67.1	260.3
2007	21.1	15.1	19.3	170.5	49.6	220.1

स्रोत : दसवीं पंचवर्षीय योजना, खण्ड 1, योजना आयोग।

उपर्युक्त तालिका में दिए गए आँकड़ों से पता चलता है कि 1993-94 ई. से पूर्व के दो दशकों में निर्धनता अनुपात में लगातार कमी के बावजूद निर्धनों की संख्या में कोई कमी उस अवधि में दर्ज नहीं की गई। क्षेत्रीय दृष्टि से भारत में शहरों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता का प्रकोप अधिक बना हुआ है। उड़ीसा एवं उत्तर प्रदेश निर्धनता के मामले में अग्रणी राज्य है। योजना आयोग के ताजा आँकड़ों के अनुसार 1999-2000 ई. में देश में निर्धनों की सर्वाधिक जनसंख्या उत्तर प्रदेश (5.3 करोड़) में थी किन्तु कुल जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में सर्वाधिक 47.14 प्रतिशत जनसंख्या उड़ीसा में निर्धनता रेखा के नीचे थी। निर्धनता अनुपात के मामले में दूसरा व तीसरा स्थान क्रमश: बिहार (42.60) तथा मध्य प्रदेश (37.43) का था।

1999-2000 ई. तक जहाँ तमिलनाडु तथा पश्चिम बंगाल ने अपने निर्धनता अनुपात को कम करके लगभग आधा कर लिया है, वहीं उड़ीसा तथा बिहार क्रमश: 47 तथा 43 प्रतिशत के निर्धनता अनुपात के साथ अभी भी दो निर्धनतम राज्य बने हुए हैं। अन्य राज्यों में जम्मू व कश्मीर, हरियाणा, गुजरात, पंजाब, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक भी निर्धनता के स्तर को कम करने में काफी सफल रहे हैं, इसका प्रमुख कारण पिछले कुछ वर्षों के दौरान अतिरिक्त रोजगार सृजन करना, उत्पादक परिसम्पत्तियों का निर्माण करना, तकनीकी और उद्यम सम्बन्धी दक्षता तैयार करना और निर्धनों के आय स्तर को ऊँचा उठाने के लिए निर्धनता-रोधी कार्यक्रमों को मजबूत बनाना है।

बोध प्रश्न

1. निर्धनता की अवधारणा समझाइये।

....

....

....

2. निर्धनता के माप को बताइये।

....

....

....

5.5 निर्धनता के कारण

NOTES

आज निर्धनता भारत की एक प्रमुख सामाजिक समस्या है। यह विकसित एवं विकासशील, दोनों प्रकार के देशों में अत्यधिक चिन्ता का विषय बनी हुई है। भारत की समस्याओं में निर्धनता सबसे गम्भीर समस्या इसलिए है क्योंकि इससे निर्धनों में सामाजिक निराशा जन्म लेती है, उनमें अलगाव की प्रवृत्तियाँ विकसित होने लगती हैं तथा अन्ततः इससे समाज में प्रायः उथल-पुथल का खतरा पैदा होने की सम्भावना बढ़ जाती है, इसलिए 'गरीबी हटाओ' आज सरकार का प्रमुख उद्देश्य बन गया है। भारत के करोड़ों लोगों के पास खाने के लिए रोटी, पहनने के लिए वस्त्र तथा रहने के लिए मकान नहीं हैं। दरिद्र लोगों का जीवन स्तर अति निम्न है तथा वे न्यनूतम जीवन-निर्वाह स्तर से भी नीचे रह रहे हैं। निर्धनता किसी एक विशेष कारण का परिणाम नहीं है अपितु इसके अनेक कारण हैं।

भारत में निर्धनता की प्रक्रिया को सरकार द्वारा कमजोर वर्गों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान हेतु चलाए जाने वाली योजनाओं एवं कार्यक्रमों के नकारात्मक परिणाम के रूप में देखा जाता है। इन योजनाओं एवं कार्यक्रमों का लाभ इन कमजोर वर्गों को न मिल कर पहले से ही सम्पन्न लोगों को प्राप्त हो जाता है। ग्रामीण समाज में भी छोटे कृषकों एवं भूमिहीन श्रमिकों को भूमि सुधार कार्यक्रमों का कोई लाभ प्राप्त नहीं हो पाया है। छोटे कृषक निर्धनता से विवश होकर पहले तो अपनी भूमि बेचकर भूमिहीन श्रमिक बन जाते हैं तथा जब श्रमिक के रूप में भी उन्हें अपने जीवन-यापन हेतु किसी प्रकार की आजीविका का साधन प्राप्त नहीं हो पाता तो वे निर्धनता की स्थिति में पहुँच जाते हैं।

भारत में निर्धनता में वृद्धि निम्नलिखित तथ्यों द्वारा स्पष्ट की जा सकती है–

1. भारत में उपलब्ध सम्पूर्ण सम्पदा एवं स्रोतों का पर्याप्त विकास एवं विदोहन न हो पाने के कारण भारतीयों को अत्यधिक निर्धनता का जीवन व्यतीत करना पड़ता है, इसीलिए यह कहा जाता है कि भारत में निर्धन एवं दरिद्र लोग निवास करते हैं।
2. भारत में प्रति व्यक्ति आय अन्य देशों की तुलना में कहीं कम है। यह लोगों को निर्धनता का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य करती है।
3. प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण भारतीयों का जीवन अत्यन्त निम्न स्तर का है। भारत में लगभग 35-40 प्रतिशत व्यक्ति निर्धनता रेखा से नीचे हैं। समाज का यही वह वर्ग है जिसे दरिद्र कहा जा सकता है।
4. भारत में उच्च जन्म दर पाई जाती है जो कि इसकी निर्धनता की द्योतक है।
5. भारत में प्रति व्यक्ति औसत आयु अत्यन्त कम है। अमेरिका व अन्य विकसित देशों की तुलना में भारतीय कम अवधि (लगभग 60 वर्ष औसतन) के लिए ही जीवित रहते हैं।
6. निर्धनता के कारण भारत में बेरोजगारी भी काफी मात्रा में पाई जाती है। बेरोजगारी संसाधनों का पूर्ण विदोहन न हो पाने की प्रतीक है।
7. भारत में बचत व पूँजी निर्माण का अभाव पाया जाता है। यह लक्षण एक निर्धन एवं दरिद्र देश का द्योतक है।
8. भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव है। लाखों करोड़ों व्यक्ति गन्दी बस्तियों में रहते हैं तथा चिकित्सा सुविधाओं से वंचित हैं। वे दो समय के भोजन हेतु ही इतना संघर्ष करते हैं कि बीमारी की स्थिति में डॉक्टर की फीस देने तथा दवाइयाँ खरीदने हेतु उनके पास पैसे ही नहीं होते।
9. भारत में विदेशी ऋण का भार बढ़ता जा रहा है, इस दृष्टि से प्रत्येक भारतीय कर्जदार है। यह भी निर्धनता एवं दरिद्रता की ही निशानी है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत में निर्धनता में वृद्धि हो रही है, इसके निम्नलिखित प्रमुख कारण माने जाते हैं–

5.5.1 वैयक्तिक कारण

कई बार मानसिक, शारीरिक व चारित्रिक दोष व्यक्तिगत निर्धनता का कारण बन जाते हैं। निर्धनता के प्रमुख वैयक्तिक कारण निम्न प्रकार हैं–

NOTES

1. मानसिक दोष–यदि व्यक्ति का मस्तिष्क रोगग्रस्त है अर्थात् व्यक्ति पागल या बुद्धिहीन है, तो वह किसी कार्य को करने में असमर्थ रहेगा। अत: उसके पास जीविकोपार्जन का कोई साधन नहीं होगा। मानसिक रूप से दोषी व्यक्ति साधनों का सदुपयोग भी नहीं कर सकते हैं। अत: इससे निर्धनता बढ़ती है।

2. शारीरिक दोष और बीमारियाँ–शारीरिक दोष व बीमारी दोनों दशाएँ भी व्यक्ति को निर्धन बनाने में सहायक सिद्ध होती हैं। यदि कोई व्यक्ति जन्म से अन्धा, लंगड़ा या अन्य किसी शारीरिक दोष से पूर्ण है या किसी दुर्घटनावश उसका शरीर दोषी हो जाता है, तो ऐसी अवस्था में उसे जीविकोपार्जन करने में बड़ी परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

3. आलस्य–जो व्यक्ति आलस्यपूर्ण जीवन बिताते हैं, वे प्राय: निर्धन होते हैं। वे कार्य करना ही नहीं चाहते। भारतीय समाज में इसे भी निर्धनता का एक वैयक्तिक कारण बताया गया है।

5.5.2 भौगोलिक कारण

कुछ भौगोलिक कारण भी व्यक्तियों को निर्धन एवं दरिद्र बना देते हैं। ऐसे कुछ प्रमुख भौगोलिक कारण निम्न प्रकार हैं–

1. प्राकृतिक साधनों में कमी–कुछ स्थानों पर भूमि ऊपजाऊ न होकर ऊसर होती है। वहाँ खनिज पदार्थ भी उपलब्ध नहीं होते। कुछ स्थानों पर कोयले व लोहे के उत्पादन के साधनों की कमी होती है। ऐसे स्थानों पर रहने वाले व्यक्ति प्राय: निर्धन होते हैं। उदाहरणार्थ, पहाड़ी प्रदेशों की भूमि कंकरीली व पथरीली होती है, वहाँ की जमीन इस योग्य नहीं होती कि वहाँ पर खेती की जा सके। बड़ी कठिनाई से थोड़ी सी भूमि को समतल बनाकर वहाँ अनाज की पैदावार की जाती है। अत: अन्न की पैदावार बहुत कम होती है, इसलिए वहाँ व्यक्ति काफी निर्धन होते हैं।

2. प्रतिकूल जलवायु और मौसम– जलवायु व मौसम की प्रतिकूलता भी दरिद्रता पर गहरा प्रभाव डालती है। उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों पर जलवायु सदैव ठण्डी रहती है, इसी प्रकर से एस्कीमों प्रदेश व हिमालय पर्वत के शिखरों पर सदैव बर्फ पड़ती है। सम्पूर्ण प्रदेश व पर्वत मालाएँ सफेद रुई के सदृश बर्फ से आच्छादित रहते हैं। राजस्थान भी इसी श्रेणी में आता है जहाँ रेगिस्तान होने के कारण खेती नहीं हो पाती और इससे लोगों में निर्धनता बढ़ती है।

3. हानिकारक कीड़े– गेहूँ, गन्ना, धान इत्यादि फसलों को नष्ट करने वाले बहुत से कीड़े होते हैं। ये सम्पूर्ण फसल में लग कर फसल खराब कर देते हैं। व्यापारियों द्वारा एकत्रित अनाज को भी यह कीड़े नष्ट कर देते हैं, इस प्रकार, सम्पूर्ण जनता निर्धन एवं दरिद्र बनी रहती है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि हमारे देश की फसलों का 20 प्रतिशत से अधिक भाग कीड़े खा जाते हैं या उसे आंशिक रूप में नष्ट कर देते है।

4. प्राकृतिक विपत्तियाँ–कभी-कभी प्रकृति सम्पूर्ण पैदावार को अपने प्रकोप का भोजन बना लेती है। अचानक ही भूचाल, तूफान, ज्वालामुखी का विस्फोट, सूखा पड़ना या वर्षा का अधिक होना सारे क्षेत्र में खलबली मचा देता है। ये सभी प्राकृतिक विपत्तियाँ पल भर में खेतों, फसलों तथा अन्य एकत्रित पदार्थों का विनाश कर देती हैं, इस प्रकार, प्राकृतिक विपत्तियाँ भी निर्धनता को स्थापित करने में सहायता देती हैं।

5.5.3 आर्थिक कारण

वर्तमान समय में दरिद्रता को आर्थिक नीतियों के नकारात्मक परिणाम के रूप में देखा जाता है, इसलिए इसे प्रमुख आर्थिक समस्याओं की देन माना जाता है। निम्न आर्थिक कारणों के फलस्वरूप निर्धनता एवं दरिद्रता बढ़ती है–

1. अपर्याप्त उत्पादन–यदि देश में अपर्याप्त उत्पादन है, तो वहाँ के श्रमिकों को नौकरियों के भी अवसर प्राप्त नहीं होते। राष्ट्रीय आय भी कम रहेगी और प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय भी कम होगी। हमारे देश की बिगड़ती आर्थिक दशा एवं महँगाई अपर्याप्त उत्पादन का अभिशाप है। जब समाज में उत्पादन कम होता है तो चीजों की कमी हो जाती है, इसके फलस्वरूप महँगाई बढ़ने लगती है और धीरे-धीरे अनेक समस्याएँ पैदा हो जाती हैं जो निर्धनता को बढ़ावा देती हैं।

2. कृषि का पिछड़ापन–हमारा देश निर्धन देशों की श्रेणी में आता है। यहाँ पर पुराने ढंग से कृषि की जाती है। व्यक्तियों के अशिक्षित होने के कारणवश उन्हें नवीन वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग करना नहीं आता। हमारे देश की तीन-चौथाई जनसंख्या कृषि में लगी हुई है। फिर भी कई बार विदेशों से अन्न मँगाना पड़ता है। अमेरिका में केवल सात प्रतिशत जनसंख्या कृषि में लगी हुई है और वे लोग अन्य देशों को अन्न भेजते हैं।

3. कृषि पर अत्यधिक निर्भरता–हमारे देश में तीन-चौथाई जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है। ग्रामवासी जीविकोपार्जन के लिए कृषि पर निर्भर हैं। एक परिवार के पास थोड़ी जमीन होती है। ग्रामों में संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रचलन होता है। सभी व्यक्ति मिलकर रहते हैं, इस थोड़ी सी जमीन में सभी का पालन-पोषण कठिनता से हो पाता है और कृषि पर निर्भरता के कारण व्यक्ति गरीब रहते हैं। निर्धनता के कारण वे जमीन भी बेच देते हैं तथा उनके पास गुजारा करने हेतु कोई आय का स्रोत शेष नहीं बचता है। ऐसी स्थिति में उनमें निर्धनता की वृद्धि होती है। हमारे देश की कृषि पर आधारित जनता में अर्द्ध-बेरोजगारी अधिक पायी जाती है, जो कि निर्धनता को बढ़ावा दे रही है।

4. उद्योग-धन्धों का अभाव–हमारे देश में उद्योग-धन्धों का समुचित एवं सन्तुलित विकास नहीं हो सका है। अब भी लगभग 15-20 प्रतिशत जनता ही उद्योग-धन्धों के ऊपर अवलम्बित है। उद्योग-धन्धों के अभाव के कारण भी चारों ओर गरीबी का साम्राज्य दृष्टिगत होता है। जो श्रमिक उद्योगों में काम करते हैं उनका भी इतना अधिक शोषण किया जाता है कि वे उत्पादन की प्रक्रिया के प्रति उदासीन हो जाते हैं। उनकी दैनिक आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पातीं। मार्क्सवादी विद्वानों के अनुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पूँजीपतियों को अधिक अमीर तथा श्रमिकों को अन्ततः निर्धन ही बनाती है।

5. धन का असमान वितरण–भारतवर्ष में निर्धनता का एक प्रमुख कारण देश में धन का असमान वितरण भी कहा जा सकता है। देश की अधिकतर सम्पत्ति कुछ हाथों में ही निहित है, इस कारण हमारे देश में पूँजीपति श्रमिक वर्ग का अधिक शोषण करते हैं, इससे राष्ट्र का सम्पूर्ण धन सभी व्यक्तियों में समान वितरित न होकर असमान रूप से वितरित होता है।

6. आर्थिक मन्दी–आर्थिक मन्दी के फलस्वरूप भी समाज में निर्धनता व्याप्त हो जाती है। पूँजीपति कारखानों में खूब धन लगाकर उत्पादन में वृद्धि कर लेते हैं। ग्राहकों की माँग न होने के कारण माल बहुत कम बिकता है, इस प्रकार से माँग व पूर्ति में असामंजस्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उत्पादन बढ़ता जाता है, माँग कम होती जाती है। माल की बिक्री के लिए मिल-मालिकों को सस्ते दामों पर विक्रय करना पड़ता है, इससे बाजार में वस्तुओं के दाम गिर जाते है, इसलिए मिल-मालिकों को मिल व कारखाने बन्द कर देने पड़ते हैं, इससे कारखानों में काम करने वाले हजारों श्रमिक बेकार हो जाते हैं, इस बेकारी की अवस्था में उनका निर्धन एवं दरिद्र होना स्वाभाविक है।

5.5.4 सामाजिक कारण

भारत में निर्धनता के लिए सामाजिक कारण अधिक उत्तरदायी कहे जा सकते हैं, इसीलिए कुछ लोगों का कहना है कि दरिद्रता का मूल कारण समाज में ही विद्यमान है, इसके प्रमुख सामाजिक कारण निम्नांकित हैं–

1. दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली–हमारे देश में शिक्षा प्रणाली भी बड़ी दूषित है। एक इन्जीनियर अपने हाथ से काम करना पसन्द नहीं करता। हमारे देश की व्यावसायिक शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। हमारे देश में लगभग 500 इण्डस्ट्रियल ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट (आई. टी. आई.) हैं जिनसे प्रशिक्षण प्राप्त लगभग पचास लाख नवयुवक

इस समय बेकार हैं। एक हाई स्कूल व्यक्ति भी अपना कार्य न करने के बजाय नौकरी की सोचता है। इन सभी कारणों ने भी निर्धनता को बढ़ावा दिया है।

2. सामाजिक कुप्रथाएँ–सामाजिक कुप्रथाएँ भी समाज में निर्धनता उत्पन्न करती हैं। भारतवर्ष में अनेक ऐसी कुप्रथाएँ है; जैसे–दहेज, बाल विवाह, परदा, जाति व्यवस्था आदि। इन्होंने भारतीय समुदाय को अनेक प्रकार से हानि पहुँचाई है और निर्धनता बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

3. धर्म– धर्म भी कभी-कभी समाज पर बुरे प्रभाव डालता है। भारतवासी धर्म के आधार पर ही अन्धविश्वासी बने हुए है। कुछ लोग हर बात का सम्बन्ध भाग्य से जोड़ते है। अशिक्षित लोग धार्मिक संस्कारों पर कर्ज लेकर हजारों रुपये व्यय करते है। निर्धन व्यक्ति अपनी निर्धनता को भगवान का दिया हुआ अभिशाप मानता है जिसे दूर करना कठिन है, इसलिए वह ज्यादा कठिन प्रयास भी नहीं करता है।

4. संयुक्त परिवार प्रणाली–ग्रामीण भारत में निर्धनता बढ़ाने के लिए संयुक्त परिवार प्रणाली भी उत्तरदायी कही जा सकती है। संयुक्त परिवार प्रणाली व्यक्ति में आलस्य उत्पन्न कर देती है। यह व्यक्ति को घर से बाहर जाने का अवसर प्रदान नहीं करती, इससे बाल विवाहों को भी बढ़ावा मिलता है। इन सब कारणों से निर्धनता बढ़ती चली जाती है।

5. जाति व्यवस्था–जाति व्यवस्था के देश पर अनेक दूषित परिणाम पड़े है। निर्धनता इसका प्रमुख परिणाम है, इस व्यवस्था ने सदियों तक व्यक्ति को ऊँचा उठने का अवसर नहीं दिया है। निम्न जातियों में सदस्यों को ऊँचे व्यवसाय चुनने का अवसर परम्परागत रूप से नहीं था। यह प्रणाली सदैव ही व्यक्ति के मार्ग में रोड़ा बनी रही है। आज भी निम्न जातियों के उत्थान हेतु जो विकास कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं उनका लाभ इन्हें नहीं मिल पा रहा है। कुछ निहित स्वार्थों वाले सम्पन्न लोग ही इन कार्यक्रमों का लाभ उठाकर अधिक अमीर बनते जा रहे हैं। जाति के आधार पर शोषण आज भी ग्रामीण समाज में विद्यमान है।

5.5.5 जनसंख्यात्मक कारण

किसी देश की निर्धनता एवं दरिद्रता के जनसंख्यात्मक कारण भी बड़े महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। वास्तव में, आधुनिक युग में बेकारी व दरिद्रता के लिए जनसंख्या को एक मूल कारण कहा जा सकता है। देश एवं समाज का उत्थान इस बात पर अधिक निर्भर करता है कि वहाँ की जन्म दर और मृत्यु दर की क्या मात्रा है। हमारे देश में पिछले वर्षों में जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई है। ऐसा कहा जाता है कि भारत में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति है, इसका मूल कारण अधिक जन्म दर है। किसी देश की बढ़ती जनसंख्या के बड़े दूषित परिणाम निकलते है। अति जनसंख्या की स्थिति में बेरोजगारी, खाद्य सामग्री की कमी, श्रमिकों की अधिक संख्या आदि हो जाती है, इससे निर्धनता बढ़ने लगती है। हमारे देश की जनंसख्या में जिस तीव्र गति से वृद्धि हो रही है उसी मात्रा में देश का आर्थिक विकास नहीं हो पा रहा है। देश में जितने अधिक रोजगार की व्यवस्था की जाती है उससे अधिक मात्रा में व्यक्ति श्रमिक क्षेत्र में प्रवेश कर जाते हैं, फलस्वरूप देश में बेरोजगारी की समस्या निरन्तर बढ़ती जा रही है जो कि निर्धनता को बढ़ावा दे रही है।

5.6 निर्धनता की समस्याएँ

निर्धनता एक अभिशाप है, इसे सभी बुराइयों की जड़ कहा जाता है। यदि व्यक्ति को भर पेट खाना ही न मिले तो वह अनेक प्रकार के अनैतिक कार्य करने लगता है, इसीलिए निर्धनता अनेक समस्याओं की जननी है, इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली समस्याओं को इसके सामाजिक दुष्परिणाम भी कहा जाता है। निर्धनता की प्रमुख समस्याएँ निम्न प्रकार है–

1. अपराध एवं बाल अपराध–निर्धनता को अपराध तथा बाल अपराध का प्रमुख कारण माना जाता है। निर्धनता के कारण व्यक्ति अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं कर पाता है, इस प्रकार, वह कई बार अपराधी व बाल अपराधी बन जाता है। अधिकांश बाल अपराधी भी निर्धन एवं भग्न परिवारों से ही आते

है। ऐसा माना जाता है कि निर्धनता सामाजिक तनाव में वृद्धि कर व्यक्ति एंव किशोरों को गैर-कानूनी कार्य करने पर विवश कर देती है।

2. पारिवारिक विघटन–निर्धनता पारिवारिक विघटन की समस्या को भी जन्म देती है। निर्धन लोगों का वैवाहिक जीवन अत्यन्त तनावपूर्ण रहता है। कई बार तो विवाह-विच्छेद तक की नौबत आ जाती है। एक तो निर्धनता ऊपर से बेरोजगारी, व्यक्ति को चिड़चिड़ा बना देती है, इससे पारिवारिक विघटन को प्रोत्साहन मिलता है। पारिवारिक कलह व अशान्ति के कारण कई बार परिवार अनैतिकता का केन्द्र भी बन जाता है। परिवार के सदस्यों में पारस्परिक स्नेह समाप्त हो जाता है तथा वे अपने-अपने स्वार्थ पूरा करने हेतु प्रयासरत रहते हैं। विवाह-विच्छेद पारिवारिक विघटन का ही परिणाम माना जाता है।

3. आत्महत्या–निर्धनता आत्महत्या का भी एक कारण है। कई बार निर्धन व्यक्ति इतना निराश हो जाता है कि आत्महत्या तक कर बैठता है। निराशा, अपमान, आवश्यकताओं, की पूर्ति न हो पाना इत्यादि ऐसी मनोवृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं। निर्धन किसानों द्वारा अथवा ऋणग्रस्त व्यक्तियों द्वारा आत्महत्या की खबरें दैनिक समाचार-पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं।

4. भिक्षावृत्ति–निर्धनता भिक्षावृत्ति की समस्या को भी जन्म देता है, इसीलिए निर्धनता को भिक्षावृत्ति का प्रमुख कारण माना जाता है। अपने तथा अपनी पत्नी व बच्चों को भूखा मरते देख व्यक्ति भीख माँगने में किसी भी प्रकार की लज्जा महसूस नहीं करता है। अनेक निर्धन परिवारों के बच्चे भिक्षा माँगने के लिए बाध्य हो जाते हैं। ऐसा भी माना जाता है कि जो व्यक्ति एक बार भिक्षा माँगने लगता है, वह भविष्य में कोई दूसरा काम करने योग्य नहीं रह पाता। भिक्षावृत्ति उसके व्यक्तित्व को पूरी तरह से विघटित कर देती है।

5. वेश्यावृत्ति–निर्धनता की एक अन्य समस्या चारित्रिक पतन है। निर्धनता के कारण अनेक स्त्रियाँ अनैतिक व्यापार द्वारा पैसा कमाना शुरू कर देती हैं। वास्तव में, निर्धनता एक ऐसा अभिशाप है जो हजारों लाखों स्त्रियों को इस पतन की ओर ले जाता है। बहुत से लोग स्त्रियों की निर्धनता का लाभ उठाकर उन्हें तरह-तरह के प्रलोभन देते हैं तथा अन्ततः अनैतिक कार्यों में लगा देते हैं।

6. वैयक्तिक विघटन–निर्धनता के कारण शारीरिक दृष्टि से व्यक्ति टूट जाता है। उसका मानसिक सन्तुलन बिगड़ने लगता है। उसका चारित्रिक पतन भी हो जाता है तथा वह अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों का शिकार हो जाता है। मद्यपान, जुआ खेलना, वेश्यावृत्ति आदि ऐसे ही दुर्व्यवसन माने जाते हैं।

इस प्रकार, निर्धनता को सभी बुराइयों की जड़ कहा जाना ठीक ही है, इससे वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक विघटन को प्रोत्साहन मिलता है। वस्तुतः अनेक समाजशास्त्रियों का मानना है कि निर्धनता एक ऐसी संस्कृति विकसित कर देती है जिसे 'निर्धनता की संस्कृति' कहा जाता है। निर्धनता की संस्कृति में व्यक्ति केवल वर्तमान के बारे में सोचता है, वह भाग्यवादी हो जाता है, उसमें हीनता की भावना प्रबल हो जाती है तथा बच्चों को भी इन दशाओं में रहने का प्रशिक्षण दिया जाने लगता है। ऐसे लोग सामाजिक एवं राजनीतिक क्रियाओं से अपने आपको अलग रखते हैं। यह संस्कृति निर्धनता की समस्या को स्थायी रूप दे देती है।

बोध प्रश्न

1. निर्धनता के कारण बताइये।

....

....

....

2. निर्धनता को समस्याओं का वर्णन कीजिए।

....

....

5.7 निर्धनता निवारण की योजनाएँ

1960-61 ई. से देश के नेताओं और नियोजकों को इस बात का एहसास हो गया था कि निर्धनता के उन्मूलन के लिए विशिष्ट प्रयास करने होंगे, इसलिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना से इस दिशा में कुछ विशिष्ट कार्यक्रमों को रखा जाता रहा है। प्रसिद्ध विद्वान् आदिसेशिया के अनुसार इस समय दरिद्रता से मुक्ति के लिए कई विशिष्ट प्रोग्राम चल रहे हैं; जैसे– राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम, ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री और बच्चों के उत्थान के कार्यक्रम, सूखा पीड़ित क्षेत्र कार्यक्रम, मरुभूमि विकास कार्यक्रम, समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण युवाओं के स्वरोजगार के लिए प्रशिक्षण की योजना, अशिक्षित बेकारों के लिए स्वरोजगार की योजना एवं भूमि सुधार के कार्यक्रम आदि। इनके अतिरिक्त, बीस सूत्री कार्यक्रम, अन्त्योदय योजना, काम के बदले अनाज आदि कार्यक्रम भी चल रहे हैं।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) में निर्धनता-उन्मूलन सम्बन्धी नई नीति घोषित की गई है। प्रथम, गरीबी रेखा की वार्षिक आय पुन: परिभाषित की गई है। किसी परिवार की वार्षिक आय 6,400 रुपये से कम होने पर उसे गरीबी रेखा से नीचे माना गया है, परन्तु सहायता के लिए योग्य परिवारों के चयन में उन परिवारों को वरीयता मिली जिनकी वार्षिक आय 4,800 रुपये से कम है। द्वितीय, लाभार्थियों के चयन में ग्राम सभा और जन प्रतिनिधियों को सम्मिलित कर कार्यपालिका को जन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अधिक उत्तरदायी बनाया गया है। तृतीय, कार्यक्रम के कार्यान्वयन में सहायता देने के लिए गाँव और ब्लाक स्तर पर परामर्शदात्री समितियाँ गठित की गई हैं। चौथे, स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका की सराहना की गई है और कार्यान्वयन स्तर पर उनकी अधिकाधिक सहायता एवं सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। पाँचवें, उन महिलाओं को भी वरीयता दी गई जो केवल गृहस्थी के काम में लगी हैं ताकि वे घरेलू रोजगार द्वारा परिवार की आय वृद्धि में सहायता दे सकें। अन्तिम, इस सम्पूर्ण कार्यक्रम का दूसरे क्षेत्रीय कार्यक्रमों से इस प्रकार तालमेल बैठाया गया है कि हथकरघा, रेशम उद्योग, सामाजिक वानिकी, पशुधन विकास तथा अन्य कृषि पर आधारित कार्यक्रमों से भी इन लोगों को अधिकाधिक लाभ मिल सके। राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा आठवीं पंचवर्षीय योजना में 7,98,000 करोड़ रुपये के परिव्यय से दरिद्रता उन्मूलन व बेकारी दूर करने के लक्ष्यों के साथ 5.6 प्रतिशत की वार्षिक विकास दर का लक्ष्य निर्धारित किया गया था जिसे प्राप्त करने में आंशिक सफलता ही मिल पाई। नवीं योजना में भी दरिद्रता उन्मूलन हेतु प्रयास जारी हैं।

आठवीं (1992-97) एवं नौवीं (1997-2002) योजना में भी निर्धनता उन्मूलन हेतु अनेक उपायों को अपनाया गया है। इन उपायों द्वारा अतिरिक्त रोजगार सृजन करने, उत्पादक परिसम्पत्तियों का निर्माण करने, तकनीकी और उद्यम सम्बन्धी दक्षता तैयार करने और निर्धनों के आय स्तर को ऊँचा उठाने के लिए निर्धनता-रोधी कार्यक्रमों को मजबूत बनाया गया है। योजनागत प्रावधान के अन्तर्गत 2001-02 ई. के 9,765 करोड़ रुपये (बजट अनुमान) की तुलना में 2002-03 ई. (बजट अनुमान) के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय को ग्रामीण विकास, पेयजल, ग्रामीण रोजगार तथा निर्धनता उन्मूलन आदि कार्यक्रमों के लिए 11,170 करोड़ रुपये का परिव्यय उपलब्ध कराया गया है, इसमें प्रधानमन्त्री ग्राम सड़क योजना शामिल नहीं है जिसके लिए 2001-02 ई. में तथा 2002-03 ई. में 2500 करोड़ रुपये अलग से प्रदान किए गए हैं। दसवीं (2002-2007) पंचवर्षीय योजनाओं में भी निर्धनता को कम करने हेतु काफी प्रयास किए गए तथा ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) में भी इस ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

आज भारत में निर्धनता उन्मूलन और रोजगार सृजन सम्बन्धी अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों में प्रमुख इस प्रकार हैं–

1. **स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना**–यह योजना 1999 ई. में प्रारम्भ की गई, इसका उद्देश्य लघु उद्यमों को बढ़ावा देना और सहायता-प्राप्त निर्धन परिवारों को सामाजिक पुनर्गठन, उनके प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण तथा बैंक ऋण एवं सरकारी सब्सिडी के मिश्रण के माध्यम से आयसर्जक परिसम्पत्तियों के प्रावधान की प्रक्रिया के जरिए उन्हें स्व-सहायता समूहों में संगठित करके गरीबी रेखा से ऊपर लाना है।

2. **सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना**–यह योजना सितम्बर, 2001 ई. में शुरू की गई थी, इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा, स्थायी सामुदायिक, सामाजिक और आर्थिक परिसम्पत्तियों का सृजन और आधारभूत ढाँचे का विकास करने के साथ-साथ अतिरिक्त मजदूरी मुहैया कराना है। 65

3. प्रधानमन्त्री ग्रामोदय योजना–इस योजना की शुरूआत 2000-01 ई. में सभी राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में की गई थी ताकि ग्राम स्तर पर स्थायी मानव विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके, इस योजना के अन्तर्गत चुनिंदा बुनियादी न्यूनतम सेवाओं के लिए राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता प्रदान करने पर विचार किया गया है ताकि सरकार के कतिपय प्राथमिकता वाले क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित किया जा सके।

4. प्रधानमन्त्री ग्रामोदय योजना (ग्रामीण आवास)–इस योजना का उद्देश्य ग्राम स्तर पर स्थायी पर्यावास विकास को पूरा करना है। 2001-02 ई. में इस योजना के ग्रामीण आश्रय स्थल घटक के लिए केन्द्रीय आवंटन 40685 करोड़ रुपये था जिसमें से 29151 करोड़ रुपये वित्त मंत्रालय द्वारा जारी कर दिए गए हैं।

5. प्रधानमन्त्री ग्रामोदय योजना (ग्रामीण पेयजल परियोजना)–इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कुल आवंटन का कम-से-कम 25 प्रतिशत भाग सम्बन्धित राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा मरुभूमि विकास कार्यक्रम/सूखा सम्भावित क्षेत्र कार्यक्रम के अन्तर्गत ऐसे क्षेत्रों के अन्तर्गत जल संरक्षण, जल प्रबन्धन जल भराई तथा पेयजल संसाधनों को कायम रखने के लिए परियोजनाओं/ योजनाओं के सम्बन्ध में उपयोग में लाया जाना है।

6. अन्त्योदय अन्न योजना–यह योजना प्रधानमन्त्री द्वारा 25 दिसम्बर, 2001 को शुरू की गई थी, इस योजना के तहत लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत शामिल किए गए गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) परिवारों में से 1 करोड़ निर्धनतम परिवारों की पहचान की गई है। प्रत्येक पात्र परिवार को 2 कि० ग्रा. गेहूँ और 3 रुपये प्रति कि0 ग्रा. चावल के अत्यधिक बड़ी सब्सिडी प्राप्त दर से 25 कि0 ग्रा. खाद्यान्न मुहैया कराया गया।

7. अन्नपूर्णा–यह योजना 100 प्रतिशत केन्द्रीय प्रायोजित योजना के रूप में पहली अप्रैल, 2000 ई. से प्रभावी हुई, इस योजना का उद्देश्य उन वरिष्ठ नागरिकों जो राष्ट्रीय पेंशन स्कीम के अन्तर्गत पेंशन प्राप्त करने पात्र है लेकिन जिन्हें पेंशन मिल नहीं रही है, की आवश्यकता को पूरा करने के लिए खाद्य सुरक्षा प्रदान करना है।

8. इन्दिरा आवास योजना–इन्दिरा आवास योजना का लक्ष्य अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, मुक्त हुए बँधुआ मजदूरों के गरीब परिवारों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले गैर-अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लोगों को भी मुफ्त आवास मुहैया कराना है।

9. जय प्रकाश रोजगार गारण्टी योजना–इस योजना का उद्देश्य देश के सर्वाधिक विपदाग्रस्त जिलों में बेरोजगारों को रोजगार गारण्टी प्रदान करना है, इस योजना को शुरू करने के लिए प्रचालन सम्बन्धी तौर-तरीके तय करने की प्रक्रिया चल रही है।

भारत सरकार द्वारा निर्धनता उन्मूलन हेतु निर्धन लोगों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा सस्ता अनाज उपलब्ध कराने, बैंकों द्वारा निर्धनों को ऋण हेतु अधिक सुविधाएँ उपलब्ध कराने, कृषि प्रविधियों में सुधार तथा किसानों को उनकी फसलों का सही मुआवजा दिलवाने, शिक्षा एवं परिवार नियोजन को प्रोत्साहन देने के प्रयास किए जा रहे है ताकि निर्धनता, अशिक्षा एवं कुपोषण को कम किया जा सके। इन सब उपायों के आशानुकूल परिणाम सामने नहीं आ पा रहे हैं। निर्धनता उन्मूलन हेतु उपर्युक्त योजनाओं के अतिरिक्त निर्धन महिलाओं एवं बच्चों हेतु मध्याह्न भोजन योजना, किशोरियों के लिए पोषाहार कार्यक्रम, अन्त्योदय अन्न योजना तथा गेहूँ आधारित पोषाहार कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं।

उपर्युक्त कार्यक्रमों के द्वारा निर्धन जनसंख्या की सामाजिक-आर्थिक स्थिति ऊँची करने में कुछ सफलता तो मिली है, परन्तु वह सन्तोषजनक कदापि नहीं कही जा सकती। निर्धनों एवं दरिद्रों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। अनेक विद्वानों का आरोप है कि इन कार्यक्रमों का लाभ भी अन्ततः समृद्ध वर्गों तक ही पहुँचा है, इसके लिए विकासतन्त्र में व्याप्त भ्रष्टाचार उत्तरदायी है। माइकल कालेस्की ने भारत की दशा पर टिप्पणी करते हुए सही कहा है, "भारत के साथ कठिनाई यह है कि यहाँ शोषक बहुत कम है और शोषित बहुत ज्यादा है।" इन कार्यक्रमों में विशेषतः निम्नांकित दोष हैं–

1. ये कार्यक्रम पूँजीवादी सिद्धान्तों पर आधारित है। ये उत्पादकता बढ़ाने के सिद्धान्त पर आधारित है। परन्तु उत्पादकता सही अर्थों में तब तक नहीं बढ़ सकती जब तक कि उत्पादक परिसम्पत्तियों, जैसें– भूमि या पूँजी, का पुनर्वितरण न हो।

2. ये कार्यक्रम आज भी इस प्रकार से बनाए गए हैं मानो कि गरीबों को दान दिया जा रहा है। यह ख्याल नहीं रखा जाता कि जिनके लिए ये कार्यक्रम बने हैं वे इतने गरीब हैं कि उन्हें दिये जाने वाला धन गैर-उत्पादक कामों पर भी खर्च हो सकता है। यह धन इतना पर्याप्त नहीं है कि एक बार गरीबी रेखा से निकलने के बाद परिवार स्वयं को उस रेखा से ऊपर बनाए रख सके।
3. निर्धनता एक बहु-आयामी विषय है। उसे आवास, सफाई, स्वास्थ्य, पोषण आदि से अलग नहीं किया जा सकता। परन्तु इन कार्यक्रमों में इस प्रकार के समन्वय का ध्यान नहीं रखा गया है। दरिद्रता के कुचक्र को तोड़ने के लिए यह आवश्यक है।
4. इन कार्यक्रमों में रोजगार के लिए प्रशिक्षण इस प्रकार का हो कि बनी हुई वस्तुओं का अधिकांश भाग ग्रामीण क्षेत्रों में बेचा जा सके। अब तक प्रशिक्षण शहरी पक्षपात से भरा है जो बिक्री की समस्या पैदा करता है।
5. ये कार्यक्रम निर्धनों एवं दरिद्रों में मनोवृत्तियों के बदलाव पर जोर नहीं देते। जब तक लोगों में स्वयं को ऊँचा उठाने की चाह नहीं आएगी, तब तक वे राज्य की बैसाखियों के सहारे कब तक खड़े किये जा सकेंगे।

विभिन्न विद्वानों, जैसे वाकील, लोकनाथन इत्यादि ने भारत में निर्धनता को दूर करने के कई उपाय बताए हैं। इनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं–

1. सबसे सरल उपाय व्यक्तियों में वैज्ञानिक भावना एवं जागरूकता लाना है ताकि वे यह एहसास कर सकें कि गरीबी भगवान का दिया हुआ अभिशाप नहीं है, इसे पारिवारिक बजट बनाकर तथा अन्य कारणों से दूर किया जा सकता है।
2. शिक्षा प्रणाली को अधिक उपयुक्त बनाकर इसे रोजगार की सुविधाओं से जोड़ा जाना चाहिए।
3. सम्पत्ति के उचित विभाजन, धन के विकेन्द्रीकरण, सुअवसरों में समानता लाकर दरिद्रता काफी सीमा तक दूर हो सकती है।
4. उत्पादन में वृद्धि से भी निर्धनता पर नियन्त्रण रखा जा सकता है। उत्पादन में वृद्धि से अधिकाधिक व्यक्तियों को रोजगार मिल सकता है।
5. लघु उद्योग तथा कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन देकर ग्रामीण बेरोजगारों को इसमें लगाया जा सकता है और निर्धनता को कम किया जा सकता है।
6. वर्तमान पिछड़े हुए अल्पविकसित क्षेत्रों में आर्थिक तथा सामाजिक विकास द्वारा उनका उचित विकास किया जा सकता है। वहाँ के लोगों को रोजगार की सुविधाएँ उपलब्ध करायी जा सकती हैं।
7. औद्योगीकरण तथा कृषि का विकास योजनाबद्ध रूप से किया जाना चाहिए ताकि आर्थिक समानताएँ असीम मात्रा तक न बढ़ती जाएँ।
8. विभिन्न स्तरों पर निर्णय लेने का कार्य तथा इन्हें कार्यान्वित करने का कार्य तेज किया जाना चाहिए ताकि विकास के लाभ लोगों को पहुँच सकें।
9. सामाजिक कुरीतियों (जैसे दहेज प्रथा इत्यादि) पर रोक लगाकर भी निर्धनता को रोका जा सकता है।
10. सिंचाई के अधिक से अधिक साधन उपलब्ध करके गाँवों में कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है, इससे कृषकों की वर्षा पर निर्भरता कम होगी और उत्पादन में वृद्धि से दरिद्रता दूर हो सकती है।
11. बेरोजगारी बीमा योजना शुरू की जानी चाहिए ताकि बेरोजगारों को बेरोजगारी भत्ता दिया जा सके।
12. परिवार नियोजन को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि जनसंख्या को नियन्त्रित किया जा सके।

अन्त में, हमारा सुझाव है कि निर्धनता की समस्या के समाधान हेतु इस पर चार रूपों में आक्रमण करना होगा–

1. देश में उत्पादक परिसम्पत्तियों के पुनर्वितरण की योजना बनाई जाए, ताकि निर्धन व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से उत्पादक क्षेत्रों में आ जाएँ।

2. निर्धन एवं दरिद्र व्यक्तियों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं एवं वस्तुओं की माँग के लिए उचित बाजार का निर्माण किया जाए।
3. विकास योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी तन्त्र के उन छिद्रों को बन्द किया जाए जिनसे दरिद्रता उन्मूलन पर खर्च किया जाने वाला धन अनुचित रूप से छन कर अन्य लोगों की जेबों में चला जाता है।
4. निर्धनों एवं दरिद्रों को एक शक्तिशाली दबाव समूह के रूप में विकसित और संगठित किया जाए ताकि वे अपने अधिकार न केवल समझ सकें बल्कि मनवा भी सकें, इस कार्य में राजनीतिक दल और ऐच्छिक संस्थाएँ सहयोग दे सकती हैं।

5.8 शब्दावली

निर्धनता –निर्धनता वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति साधनों के अभाव के परिणामस्वरूप अपना तथा अपने आश्रितों का स्वास्थ्य एवं शारीरिक कुशलता बनाए रखने में असमर्थ होता है।

दरिद्रता –दरिद्रता निर्धनता का वह विशिष्ट रूप है जिसमें निर्धन व्यक्ति की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है।

निर्धनता रेखा–निर्धनता रेखा किसी भी सरकार द्वारा निर्धारित मापदण्ड है जो निर्धनों को गैर-निर्धन व्यक्तियों से अलग करता है।

चरम निर्धनता– चरम निर्धनता से अभिप्राय किसी व्यक्ति द्वारा अपने परिवार की आधारभूत आवश्यकताएँ पूरी करने में असमर्थता है।

तुलनात्मक निर्धनता–तुलनात्मक अथवा सापेक्ष निर्धनता से अभिप्राय किसी स्थान या समय विशेष में जीवन-स्तर के मानकों से है। विभिन्न समाजों में जीवन-यापन के मानक एक-दूसरे से भिन्न होते हैं।

5.9 सारांश

इस इकाई में हमने निर्धनता की अवधारणा, कारण, समस्याएँ, माप, परिणाम, निवारण की योजनाओं के बारे में बताया है। ग्रामीण भारत में असमानता, निर्धनता, दरिद्रता बढ़ी है। दरिद्रता का सम्बन्ध निरपेक्ष निर्धनता से ही है। हमने समाज में राष्ट्रीय स्तर पर इन सबका अनुमान लगाया जाना चाहिए नयी योजना में उन्मूलन हेतु प्रयास जारी है।

5.10 अभ्यास प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. निर्धनता क्या है? भारत में निर्धनता के विस्तार की व्याख्या कीजिए।
2. निर्धनता को परिभाषित कीजिए तथा इसके माप बताइए।
3. निर्धनता किसे कहते हैं? इसके प्रमुख कारण बताइए।
4. निर्धनता की परिभाषा दीजिए तथा भारत में इसके निवारण हेतु किए जा रहे प्रयासों की विवेचना कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. निर्धनता का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके दुष्परिणाम बताइए।
2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

   (अ) निर्धनता की अवधारणा (ब) निर्धनता की समस्याएँ

   (स) निर्धनता के माप (द) भारत में निर्धनता के कारण।

NOTES

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निर्धनता की समस्याएँ कितनी हैं–

(अ) छः (ब) सात (स) आठ (द) दस

उत्तर 1. (अ)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Gillin, J. L. and Gillin, J. P., **Cultural Sociology,** New York : The Macmillan Company, 1948.

Goddard, J. G., **Poverty : Its Genesis and Exodus,** London : Swan Sonnenschein, 1892.

Sen, Amartya, **Poverty and Famines : An Essay on Entitlement and Deprivation,** Oxford : Oxford University Press, 1982.

W. W. Weaver, **Social Problems,** New York : William Sloane, 1952.

●●●

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

अध्याय–6 बेरोजगारी (UNEMPLOYMENT)

NOTES

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 बेरोजगारी का अर्थ एवं परिभाषाएँ
6.3 बेरोजगारी के प्रकार
6.4 बेरोजगारी के कारण
6.5 बेरोजगारी के परिणाम
6.6 भारत में बेरोजगारी के लक्षण
6.7 बेरोजगारी नियन्त्रण हेतु अपनाए गए उपाय
6.8 बेरोजगारी का उपचार
6.9 शब्दावली
6.10 सारांश
6.11 अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

बेरोजगारी आज विकासशील भारत में ही नहीं अपितु अमेरिका तथा इंग्लैंड जैसे विकसित देशों में भी चिन्ता का एक गम्भीर विषय बनी हुई है। बेरोजगारी अशिक्षित तथा शिक्षित दोनों वर्गों में पाई जाती है। शिक्षित युवकों में यह समस्या अधिक विचार-विमर्श का विषय बनी हुई है। बेरोजगारी की समस्या वैयक्तिक जीवन के साथ-साथ पारिवारिक व सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करती है। यह अनेक अन्य समस्याओं (यथा आत्महत्या, अपराध, वेश्यावृत्ति आदि) को प्रोत्साहन देती है, इससे समाज की प्रगति में गतिरोध पैदा होते हैं। अनेक प्रकार के आन्दोलन भी इसी के परिणामस्वरूप होते हैं, इस इकाई का उद्देश्य बेरोजगारी के अर्थ, प्रकार, कारण, परिणाम, भारत में बेरोजगारी के लक्षण, भारत में बेरोजगारी नियन्त्रण हेतु अपनाए गए उपाय तथा बेरोजगारी के उपचार को समझाने का प्रयास किया गया है।

6.1 प्रस्तावना

भारत में पाई जाने वाली समस्याओं में बेरोजगारी भी एक प्रमुख समस्या मानी जाती है। परम्परागत भारतीय समाज में सेवाओं के विनिमय की व्यवस्था (जजमानी व्यवस्था) पाई जाती थी जिसके अन्तर्गत प्रत्येक पीढ़ी वही कार्य करने लगती थी जिसे पूर्वज करते आए थे। बेरोजगारी का प्रारम्भ अंग्रेजी शासनकाल में अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के साथ हुआ। औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण लघु एवं कुटीर उद्योग नष्ट होने लगे तथा लोग रोजगार की तलाश में नगरों की ओर प्रवसन करने लगे। साथ ही, कृषि में यान्त्रिक उपकरणों के प्रयोग के कारण कृषि पर आधारित अनेक श्रमिकों के लिए रोजगार के अवसर कम हो गए। ऐसे लोग भी गाँव छोड़कर नगरों की ओर प्रवसन करने लगे। नगरों में भी रोजगार के अवसर जनसंख्या के अनुपात में उपलब्ध नहीं होते हैं, इसलिए प्रत्येक प्रवासी व्यक्ति के लिए नगरों में रोजगार मिल पाना सम्भव नहीं है। साथ ही, हमारी शिक्षा पद्धति भी इतनी दोषपूर्ण है कि पढ़-लिखकर भी नौकरी न मिलने की स्थिति में व्यक्ति कोई कार्य नहीं कर सकता है, इससे ऐसे व्यक्तियों की संख्या बढ़ने लगती है जो किसी कार्य करने हेतु आवश्यक योग्यता रखते हैं तथा कार्य के इच्छुक भी हैं,

परन्तु उन्हें जीविका का कोई साधन उपलब्ध नहीं हो पाता। योग्य एवं इच्छुक होने के बावजूद व्यक्ति को अपनी न्यूनतम कार्यकुशलता बनाए रखने हेतु किसी रोजगार का न मिल पाना ही बेरोजगारी कहलाता है। बेरोजगारी व्यक्ति में मानसिक तनाव पैदा कर देती है, उसका नैतिक पतन होने लगता है तथा वह समाज-विरोधी अथवा कानून-विरोधी व्यवहार करने लगता है, इससे सामान्य निर्धनता में वृद्धि होती है तथा कई बार तो बेरोजगारों में इतना असन्तोष फैल जाता है कि वे विद्यमान सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन तक करने हेतु विवश हो जाते हैं, इसलिए बेरोजगारी की समस्या को समझना तथा शीघ्रातिशीघ्र इसको हल करना नितान्त आवश्यक है।

6.2 बेरोजगारी का अर्थ एवं परिभाषाएँ

बेरोजगारी शब्द रोजगार का विपरीत शब्द है। वे सभी व्यक्ति जो किन्हीं कार्यों अथवा व्यवसाय में लगे होते हैं और जिससे उन्हें अर्थ सम्बन्धी सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं उन्हें रोजगार में लगे हुए व्यक्ति कहते हैं। परन्तु बहुत से व्यक्ति ऐसे होते हैं जो स्वस्थ होते हैं कार्य करने की इच्छा भी रखते हैं, परन्तु उन्हें काम नहीं मिलता। ऐसे सभी व्यक्ति बेरोजगार या बेकार कहलाते हैं। बहुत से ऐसे व्यक्ति होते हैं जो स्वस्थ होते हैं, परन्तु कार्य करने की इच्छा नहीं रखते। वे आलस्य में ही पड़े रहना चाहते हैं। ऐसे व्यक्तियों को बेकार नहीं कहा जाता है। अतः साधारण अर्थों में रोजगार का अभाव ही बेरोजगारी है। फेयरचाइल्ड (Fairchild) के अनुसार, "बेरोजगारी मजदूरी करने वाले सामान्य वर्ग के एक सदस्य का सामान्य समय में सामान्य वेतन पर और सामान्य काम करने वाली दशाओं में, वेतन मिलने वाले काम से अनिच्छापूर्वक या जबरदस्ती अलग कर देना है।" कार्ल प्रिब्राम (Karl Pribram) के अनुसार, "बेरोजगारी श्रम बाजार की वह दशा है जिसमें श्रम-शक्ति की पूर्ति उपलब्ध माँगों से अधिक है।" इसी भाँति, डी'मैलो (D'Mello) के अनुसार बेकार व्यक्ति उसे कहा जाता है, "जो अपनी इच्छा होते हुए भी पारिश्रमिक कार्य करने की स्थिति में नहीं है।"

बेरोजगारी के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि एक व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से काम करने योग्य है, वह काम चाहता है, परन्तु उसे काम करने का अवसर नहीं मिलता, तो वह व्यक्ति बेरोजगार कहलाएगा। बेरोजगार केवल उन्हीं व्यक्तियों को कहा जाता है जो इच्छा होते हुए भी कार्य से वंचित रहते हैं अर्थात् वेतन या मजदूरी के प्रचलित स्तर पर काम करने में असमर्थ होते हैं। यह आर्थिक निष्क्रियता की वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति की योग्यता, इच्छा तथा प्रयत्न के बावजूद उसे रोजगार नहीं मिल पाता, इसीलिए अनेक विद्वानों ने बेरोजगारी को उन व्यक्तियों की निष्क्रियता के रूप में परिभाषित किया है जो कार्य करने के योग्य एवं इच्छुक हैं।

बोध प्रश्न

1. बेरोजगारी के अर्थ से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

2. बेरोजगारी के उद्देश्य बताइये।

....

....

....

....

6.3 बेरोजगारी के प्रकार

हमारे देश में बेरोजगारी एक अत्यधिक जटिल समस्या है, इसके अनेक स्वरूप या प्रकार हैं। बेरोजगारी को निम्नलिखित प्रकारों में बाँटा जा सकता है–

6.3.1 कृषि बेरोजगारी

भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा इसकी कुल जनसंख्या की लगभग दो-तिहाई जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। कृषि पूरे साल रोजगार नहीं देती। साथ ही, तकनीकी में विकास के कारण मजदूरों का स्थान मशीनें लेती जा रही हैं, इसलिए भारत में कृषि बेकारों की संख्या में भी निरन्तर वृद्धि होती जा रही है, इसके प्रमुख प्रकार अग्रलिखित हैं–

NOTES

1. प्रच्छन्न बेरोजगारी–ग्रामीण जनसंख्या का एक-चौथाई अनुपात इस समस्या से पीड़ित है। प्रच्छन्न रूप से बेकार वह व्यक्ति है जो ऊपर से काम पर लगा हुआ दिखाई देता है, परन्तु अगर वह काम न भी करे तो कुल उत्पादन में कोई अन्तर नहीं होता, इसका कारण यह है कि उसका उत्पादन में अपना योगदान शून्य के बराबर है। उदाहरणार्थ– एक परिवार के सभी सदस्य एक खेत पर निर्भर रहते हैं। सभी थोड़ा बहुत काम करते हैं। परन्तु अगर सदस्यों के व्यक्तिगत योग को देखा जाए तो हो सकता है कि कुछ लोगों का योगदान शून्य के बराबर ही हो। अगर एक-दो व्यक्ति कोई दूसरा व्यवसाय अपना लें तो भी कुल उत्पादन में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।

2. मौसमी बेरोजगारी–कृषि एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें श्रमिकों की आवश्यकता पूरे साल एक जैसी नहीं रहती। फसल के बुआई तथा कटाई के समय अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। अन्य महीनों में कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती, इससे मौसमी बेरोजगारी बढ़ती है क्योंकि बुआई-कटाई का मौसम न होने के कारण अधिकतर कृषि-मजदूर बेकार हो जाते हैं।

3. सामान्य बेरोजगारी–कृषि के यन्त्रीकरण से कृषि श्रमिकों की संख्या में कमी होती जा रही है, इसलिए भूमिहीन व्यक्तियों की संख्या बेकारों में बढ़ती जा रही है। जनसंख्या में वृद्धि तथा कृषि के यन्त्रीकरण से सामान्य बेरोजगारी अधिक हो गई है।

6.3.2 गैर-कृषि बेरोजगारी

गैर-कृषि बेरोजगारी अधिकतर औद्योगिक केन्द्रों तथा नगरों में पाई जाती है। यह निम्नलिखित प्रकार की है–

1. चक्रीय बेरोजगारी–उद्योगों के असफल होने पर अथवा किसी उद्योग के ह्रास से उत्पन्न बेरोजगारी चक्रीय बेरोजगारी कहलाती है। उद्योगों में उतार-चढ़ाव के फलस्वरूप यह बेरोजगारी अधिकतर विकसित देशों में पाई जाती है। उद्योगों या व्यापार में असफलता के कारण बन्द हो जाने, मशीनीकरण के कारण, उद्योगों के ह्रास होने से तथा उद्योगों की अवनति के कारण इस प्रकार की बेरोजगारी बढ़ती है। भारत में इस तरह की बेरोजगारी अधिक गम्भीर नहीं है।

2. स्थायी बेरोजगारी–हमारे देश में औद्योगीकरण तो हो रहा है पर बढ़ती हुई जनसंख्या को सामने रखते हुए औद्योगिक विकास की गति काफी धीमी है, इसके अतिरिक्त, बेकार ग्रामीण जनता भी नौकरी की तलाश में नगरों की तरफ आती जा रही है। औद्योगिक संस्थानों में कम स्थान होने के कारण बहुत से लोग नौकरी से वंचित रहते हैं, इससे स्थायी बेरोजगारी अधिक होती जा रही है।

3. मौसमी बेरोजगारी–कई उद्योग मौसमी होते है जैसे बर्फ के कारखाने। सर्दियों में बर्फ के कारखाने बन्द हो जाते हैं। वर्षा के समय कोयले की खानें प्राय: बन्द हो जाती हैं, इससे जो बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है इसे ही मौसमी बेरोजगारी की संज्ञा दी गई है।

4. शिक्षित तथा यांत्रिक बेरोजगारी–उच्च शिक्षा के विकास से शिक्षित व्यक्तियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। तकनीकी शिक्षा प्राप्त किए व्यक्तियों (जैसे इंजीनियर) की संख्या भी बढ़ती जा रही है। एक ऐसा शिक्षित वर्ग बनता जा रहा है जो कार्यक्षमता रखता है परन्तु कोई उपयुक्त कार्य नहीं मिल पाता। शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी आज भारत में ही नहीं अपितु अन्य सभी देशों में चिन्ता का प्रमुख विषय बनी हुई है, इसमें हम अर्द्धबेरोजगारी को भी सम्मिलित कर सकते हैं, इस प्रकार की बेरोजगारी में व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार कार्य नहीं मिल पाता। उदाहरणार्थ, अगर कोई व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त है और उसमें पूरी क्षमता है, मगर परिस्थितिवश वह एक चपरासी की नौकरी कर रहा है तो इसे हम अर्द्धबेरोजगारी कहेंगे।

भारत में पिछले कुछ दशकों में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में अत्यन्त वृद्धि हुई है। यह सरकार के लिए एक चिन्ता का विषय बनी हुई है, इसका प्रमुख कारण दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली तथा देश का तीव्रता से आर्थिक विकास न होना बताया जाता है। तकनीकी शिक्षा का अभाव, स्नातकों एवं परास्नातकों की भरमार तथा शारीरिक श्रम के प्रति उदासीनता भी शिक्षित बेरोजगारी के प्रमुख कारण हैं। वास्तव में, किताबी शिक्षा व्यक्ति को किसी प्रकार का अपना उद्योग स्थापित करने अथवा कोई व्यवसाय खोलने में सहायता नहीं देती।

शिक्षितों की बेरोजगारी को दूर करने का एकमात्र उपाय शिक्षा की दोषपूर्ण प्रणाली को समाप्त करना है। नवयुवकों व युवतियों को किताबी व साहित्यिक शिक्षा के अतिरिक्त उद्योग-धन्धों से सम्बन्धित शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए, इससे वे दूसरों पर अवलम्बित न रहकर अपने पैरों पर खड़े होंगे। उनके मस्तिष्क में इस प्रकार की अवधारणाएँ विकसित करनी चाहिए ताकि शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् व्यक्ति अपने स्वतन्त्र व्यवसाय को करने के योग्य बन सकें। हर कार्य को करने के लिए अन्य की आवश्यकता अनुभव न करके व्यक्ति को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने योग्य बनाना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। व्यावसायिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए। ग्रामीण नवयुवकों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जो ग्राम उत्थान के लिए लाभदायक सिद्ध हो सके। उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवकों व युवतियों को स्वयं अपने उद्योग स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। आज हमारे देश में एक बड़ी विचित्र बात यह है कि ग्रामों में रिक्त स्थान पड़े रहते हैं क्योंकि नगरों से बेकार व्यक्ति इन स्थानों पर जाना पसन्द नहीं करते। ग्रामीण शिक्षितों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए कि वे अपने ग्रामों में खेती में सहायता कर सकें।

शिक्षितों की बेरोजगारी को दूर करने के कुछ प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं–

(i) बेकार शिक्षितों को उद्योग-धन्धे स्थापित करने के लिए ऋण दिए जाने चाहिए।

(ii) बुनियादी शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिए।

(iii) स्नातकों में श्रम की भावना बढ़ाई जानी चाहिए।

(iv) देश का तीव्रता से आर्थिक विकास किया जाना चाहिए ताकि रोजगार के अवसरों में वृद्धि हो सके।

(v) उच्च शिक्षा को सीमित किया जाना चाहिए।

5. संरचनात्मक बेरोजगारी– कई उद्योग जो पहले अधिक महत्वपूर्ण होते हैं कुछ समय के बाद उनकी महत्ता कम हो जाती है तथा दूसरे उद्योगों की महत्ता अधिक हो जाती है। उदाहरण के लिए, सूती कपड़े के उद्योगों में मन्दी आई है तथा कृत्रिम रेशा उद्योगों का विकास हुआ है। सूती कपड़ा मिल में लगे हुए व्यक्ति जरूरी नहीं हैं कि कृत्रिम रेशा उद्योगों में ले लिए जाएँ क्योंकि इसमें कोई समरूपता नहीं है, इस तरह की बेरोजगारी को संरचनात्मक बेरोजगारी कहते हैं। यह भी भारत में अधिक नहीं है।

6.4 बेरोजगारी के कारण

भारत में बेरोजगारी के प्रमुख कारण निम्नांकित हैं–

1. जनसंख्या में तीव्रता से वृद्धि–भारतवर्ष में जन्म दर बहुत अधिक है। यदि उत्पादन के साधनों, उद्योग-धन्धों में जनसंख्या में वृद्धि समान गति से हो, तब ऐसी दशा में बेरोजगारी नहीं फैलती, परन्तु ऐसा नहीं होता। भारत में जनसंख्या की वृद्धि ही बेरोजगारी का प्रमुख कारण है। हमारे देश की जनसंख्या 1921 में 25 करोड़ थी, 1931 में 28 करोड़, 1941 में 32 करोड़, 1951 में 36 करोड़, 1961 में 44 करोड़, 1971 में 55 करोड़, 1981 में 68 करोड़, 1991 में 84.4 करोड़ तथा 2001 में 102.87 करोड़ थी। 1981-91 में जनसंख्या में 23.50 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि 1991- 2001 के दशक में यह वृद्धि 21.54 रही। यदि देश की जनसंख्या इसी गति से बढ़ती रही, तो ऐसा अनुमान है कि अगले 20 वर्षों में देश की जनसंख्या 1.5 अरब से भी ऊपर हो जाएगी। तब इससे बेरोजगारी ही नहीं वरन् भोजन, आवास तथा अनेक अन्य समस्याएँ भी उत्पन्न हो जाएँगी, इसीलिए यह माना जाता है कि भारत में बेरोजगारी एवं निर्धनता पर नियन्त्रण हेतु जनसंख्या पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है।

2. कुटीर उद्योगों का विनाश–वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ देश में गरीबी और बेरोजगारी बढ़ी है, इसका प्रमुख कारण यह है कि सभी वस्तुएँ मशीनों द्वारा अच्छी व सस्ती (कम दामों पर) तैयार की जाने लगीं हैं। लोग भी मशीनीकृत वस्तुओं को अधिक पसन्द करने लगे हैं। अत: कुटीर उद्योगों का विनाश हो गया है। पहले जो काम दस व्यक्ति करते थे, मशीनों के आविष्कार से एक व्यक्ति उस कार्य को करने के लिए पर्याप्त होने लगा है। भारत में घरेलू उद्योग-धन्धों से ग्रामीण लोगों को बहुत आर्थिक सहायता मिलती थी परन्तु इनके ह्रास के कारण बेरोजगारी बढ़ी है। यह समस्या आज के वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के युग में मुँह फाड़कर हमारे समक्ष उपस्थित है। पूँजी एवं तकनीकी कुशलता के अभाव में कुटीर उद्योग न तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से प्रतियोगिता कर सकते हैं और न ही उनके सामने टिक पाते हैं।

3. उद्योगों की सन्तोषजनक उन्नति न होना–भारत में उद्योग-धन्धों में काफी तीव्र गति से उन्नति हो रही है। परन्तु, फिर भी, जनसंख्या की अपेक्षा उद्योग-धन्धों की उन्नति लगभग आधी ही है, इस प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि उद्योग-धन्धों की उन्नति सन्तुष्टि प्रदान करने वाली नहीं है, इसके असमान विकास के कारण आधी जनसंख्या बेकार हो जाती है।

4. पुरातन कृषि व्यवस्था–भारत की अधिकतर जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है। ग्रामवासी जीविकोपार्जन के लिए कृषि पर आश्रित होते हैं। यद्यपि भारतवर्ष की जनसंख्या 1901 में 24 करोड़ से बढ़कर सन् 2001 में 102.87 करोड़ से अधिक हो गई, किन्तु उसी अनुपात में कृषि सम्बन्धी भूमि में वृद्धि नहीं हुई है। अत: हम देखते हैं कि भूमि आकार में तो सीमित है, लेकिन व्यक्तियों की संख्या असीमित होती जा रही है, इस प्रकार से ग्रामों में बेरोजगारी बढ़ रही है। हमारे देश की कृषि भी मौसमी है। कृषक साल में तीन या चार माह तक बेकार रहते हैं। देश की अधिकतर कृषि वर्षा पर आधारित है, यदि वर्षा कम या अधिक हो जाती है, तो कृषक बेकार हो जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योग-धन्धे, पशु-पालन आदि का भी अभाव है और कृषक लोग अपने अतिरिक्त समय का ठीक उपयोग नहीं कर पाते हैं, इस प्रकार, कृषि से सम्बन्धित व्यक्ति बेकार रहते हैं। वैश्विक उदारीकरण के परिणामस्वरूप अनेक कृषि उत्पाद भी बाहरी देशों से कम दाम पर उपलब्ध होने लगते हैं।

5. दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली–शिक्षा की दोषपूर्ण प्रणाली के कारण हमारे देश में बहुत से शिक्षित व्यक्ति बेकार हैं। आजकल केवल साहित्य से सम्बन्धित व किताबी शिक्षा ही जाती है, इसके परिणामस्वरूप शिक्षा पूरी करने के बाद व्यक्ति को विषय के सम्बन्ध में केवल सैद्धान्तिक ज्ञान मात्र होता है। उन्हें किसी प्रकार के उद्योगों से सम्बन्धित शिक्षा नहीं दी जाती। यही कारण है कि वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी बहुत ही साधारण उद्योगों व व्यवसायों से सम्बन्धित बातों से अनभिज्ञ रहते हैं, इसी कारणवश उन्हें किसी भी प्रकार का कार्य नहीं मिल पाता और यदि मिल भी जाता है, तो वह उस कार्य को सुचारू रूप से सम्भालने व कार्यान्वित करने में असमर्थ होते हैं। साथ ही, शिक्षित व्यक्ति शारीरिक श्रम करने में भी लज्जा महसूस करते हैं। यही कारण है कि बहुत से व्यक्ति शिक्षित होकर भी बेरोजगारी में जीवन-यापन करते हैं। सरकारी नीति एवं त्रुटिपूर्ण अनुमानों के फलस्वरूप आज इंजीनियरों में भी बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। भारत में शिक्षित बेरोजगारी केवल दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली के कारण ही नहीं है। यह अनेक अन्य कारणों से भी है। इनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं–

(i) तकनीकी शिक्षा का अभाव– आज अधिकतर शिक्षा ऐसी दी जाती है जो केवल सैद्धान्तिक ज्ञान तक ही सीमित है, इसका जीवन में अधिक लाभ नहीं है। बी. ए., एम. ए., करने के बाद लड़के को यह भी पता नहीं होता कि उसे अब क्या करना है। तकनीकी शिक्षा के पूर्ण अभाव के कारण वह अपना कोई छोटा-मोटा काम भी नहीं कर सकता।

(ii) स्नातकों की भरमार–भारतीय विश्वविद्यालयों में स्नातकों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। नौकरी में इन सभी व्यक्तियों को नहीं लगाया जा सकता है, इसका कारण यह है कि नौकरी की सम्भावनाएँ इतनी तेजी से नहीं बढ़ रही है जितनी तेजी से स्नातकों एवं स्नातकोत्तर छात्र-छात्राओं की संख्य बढ़ रही है, इसलिए शिक्षित बेरोजगारी प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है।

(iii) शारीरिक श्रम के प्रति उदासीनता–शिक्षा के समय शारीरिक विकास तथा श्रम की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है, इसके कारण शिक्षा के बाद भी लड़के शारीरिक श्रम के प्रति उदासीन रहते हैं। पढ़े-लिखे व्यक्ति न ही खेती करना चाहते हैं और न ही कोई अन्य कठिन परिश्रम, इससे भी बेरोजगारी बढ़ती है। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में शिक्षा के दौरान शिक्षार्थियों को कोई व्यावसायिक प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। यह भी शारीरिक श्रम के प्रति उदासीनता का प्रमुख कारण है।

NOTES

6. श्रम शक्ति में धीमी गति से वृद्धि–बेरोजगारी का एक कारण श्रम शक्ति का धीमी गति से विकास है। हमारे देश में जनसंख्या लगभग 2.2 प्रतिशत की दर से बढ़ती जा रही है, जबकि श्रम शक्ति में वृद्धि की दर 1.9 प्रतिशत है, इस धीमी गति के कारण भारतवर्ष में स्थिति प्रति वर्ष बिगड़ रही है। भारतीय अर्थव्यवस्था में श्रम शक्ति की वार्षिक वृद्धि का करीब 11 प्रतिशत संगठित क्षेत्र खपा लेता है। बाकी 89 प्रतिशत श्रम शक्ति असंगठित क्षेत्र में लग जाती है। भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। वास्तव में, ग्रामीण क्षेत्रों में नगरीय क्षेत्रों की तुलना में बेरोजगारी की समस्या अधिक उग्र एवं भयावह है। ग्रामीण बेरोजगारी के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं–

1. देश में कृषि का वर्षा पर आधारित रहना,
2. देश में संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रचलन, बाल विवाह एवं अधिक सन्तान के कारण जनसंख्या में तीव्र वृद्धि,
3. कृषि के लिए धन के अपर्याप्त साधन,
4. निम्न जातियों का शोषण,
5. ग्रामों में शिक्षा का अभाव,
6. कुटीर उद्योग-धन्धों का ह्रास एवं सहायक उद्योगों का अभाव,
7. कृषि में आधुनिकतम यन्त्रों का प्रयोग,
8. यातायात के साधनों का अभाव,
9. अज्ञानता, अनभिज्ञता एवं अन्धविश्वासों का प्रचलन, तथा
10. व्यावसायिक प्रशिक्षण का अभाव।

बोध प्रश्न

1. बेरोजगारी के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

   ....

   ....

   ....

2. बेरोजगारी के कारण बताइये।

   ....

   ....

   ....

6.5 बेरोजगारी के परिणाम

निर्धनता तथा बेरोजगारी दोनों सापेक्षिक शब्द हैं। जहाँ निर्धनता होगी वहाँ बेरोजगारी अवश्य ही पाई जाएगी। यदि देश में बेरोजगारी अधिक है, तो निश्चित ही वह देश निर्धन भी होगा। इनके परिणामों का अनुमान लगाना एक कठिन कार्य है। मुख्य रूप से निर्धनता तथा बेरोजगारी के निम्नलिखित सामाजिक परिणाम कहे जा सकते हैं–

1. सामाजिक विघटन–सामाजिक विघटन के अनेक कारण हैं। सामाजिक समस्याओं को सामाजिक विघटन का मुख्य कारण बताया गया है। बेरोजगारी समाज के अन्दर अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न कर देती है जो समाज की प्रगति में बाधक बन जाती है। निर्धनता के कारण समाज में बेरोजगारी फैल जाती है। अत: बेरोजगारी सामाजिक विघटन का एक बड़ा कारण है, इस सम्बन्ध में ऑगबर्न तथा निमकॉफ ने लिखा है कि बेरोजगारी आधुनिक युग की अत्यधिक सामाजिक गम्भीर दशा है, यह सामाजिक विघटन की साथी है।

2. पारिवारिक विघटन–बेरोजगारी पारिवारिक विघटन का आर्थिक कारण कही जाती है। बेरोजगारी निर्धनता से जुड़ी हुई है। इनके कारण पारिवारिक विघटन को प्रोत्साहन मिलता है। इनसे पति-पत्नी व माता-पिता और बच्चों के सम्बन्ध प्रभावित होते हैं। अन्ततः व्यक्ति अपने को हर प्रकार से सामान्य रखने में विफल हो जाता है। सारा पारिवारिक वातावरण कलह एवं क्रोधपूर्ण बन जाता है। बच्चों की उचित देख-रेख एवं पत्नी की इच्छाओं की पूर्ति ठीक प्रकार से नहीं हो पाती। बच्चों को उचित शिक्षा भी नहीं मिल पाती। व्यक्तिवाद की धारणा जाग्रत हो जाती है और इससे पारिवारिक विघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

3. व्यक्तिगत विघटन–बेरोजगारी के कारण व्यक्ति में हीनता की भावना आ जाती है। धन के अभाव के कारण उसका सामाजिक स्तर नीचा हो जाता है। व्यक्ति का दृष्टिकोण निराशावादी हो जाता है। वह अपने को समाज से अलग समझ बैठता है। वह समाज की मान्यताओं एवं रीति-रिवाजों की परवाह नहीं करता। वह अकेला एवं असहाय सा महसूस करने लगता है, इस प्रकार, उसमें व्यक्तिवाद एवं अलगाव (Alienation) की धारणा जाग्रत हो जाती है। बेरोजगारी के परिणामस्वरूप होने वाले सामाजिक, पारिवारिक तथा व्यक्तिगत विघटन के निम्नलिखित प्रतिफल होते हैं–

(i) आत्महत्या–सामाजिक, पारिवारिक तथा व्यक्तिगत विघटन के कारण व्यक्ति जीवन से निराश हो जाता है। वह कई बार तो आत्महत्या तक कर लेता है,

(ii) मद्यपान को बढ़ावा–व्यक्तिगत विघटन का दूसरा रूप मद्यपान है। जब समाज में बेरोजगारी तथा निर्धनता अधिक बढ़ती है तो इसके फलस्वरूप सामाजिक, पारिवारिक एवं व्यक्तिगत विघटन उत्पन्न हो जाता है। विघटित व्यक्ति निराशा को दूर करने के लिए शराब पीने लगता है, तथा

(iii) वेश्यावृत्ति– अनेक विद्वानों ने आर्थिक दशा (क्योंकि बेरोजगारी तथा निर्धनता आर्थिक दशा के पहलू हैं) को वेश्यावृत्ति का कारण बताते हुए लिखा है कि वेश्याओं की कुछ संख्या इस दूषित व्यवहार को इस कारण अपनाती हैं कि वह निर्धन एवं बेकार होती है। मद्रास विजिलेन्स एसोसिएशन के अनुसार, "वेश्यावृत्ति का व्यवसाय अधिकांश रूप से जीविकोपार्जन के लिए किया जाता है।" भूख को भी वेश्यावृत्ति का आधार माना है।

4. अपराध–बेरोजगारी अपराध को भी बढ़ावा देती है। बेरोजगारी के कारण व्यक्ति अपनी तथा अपने परिवार की इच्छाओं को वैज्ञानिक रूप से पूरा करने में विफल हो जाता है। वह अवैधानिक ढंगों से अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने का प्रयास करता है। वह अपने बच्चों की भी उचित प्रकार से देखरेख नहीं कर पाता। व्यक्ति का व्यक्तिगत विघटन होने लगता है, इस कारण भी उसको वैधानिकता तथा अवैधानिकता का ज्ञान नहीं रह पाता और वह अपराधी बन बैठता है।

5. बाल अपराध– बेरोजगारी बाल अपराध को भी बढ़ाती है। बेरोजगारी के कारण बच्चों को उचित शिक्षा नहीं मिल पाती। पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए थोड़ी आयु में ही उन्हें छोटी-छोटी नौकरियों पर भेज दिया जाता है। बच्चे गन्दी आदतों के शिकार बन बैठते हैं। आर्थिक हीनता के कारण माता-पिता बच्चों की उचित ढंग से देख-रेख नहीं कर पाते। बच्चा जब अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति घर में नहीं कर पाता तो अवैधानिक रूप से उनकी पूर्ति करना चाहता है और बाल अपराधी बन बैठता है। निर्धनता तथा बेरोजगारी के कारण लोगों को गन्दी बस्तियों में रहना पड़ता है। वहाँ के बुरे वातावरण के कारण बच्चा बाल अपराधी बन बैठता है।

6. आर्थिक दुष्परिणाम– बेरोजगारी व्यक्ति को ही प्रभावित नहीं करती वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र को प्रभावित करती है, इसे राष्ट्रीय बरबादी की सूचक माना गया है। बेरोजगारी के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय (National income) गिर जाती है, इससे औद्योगिक अशान्ति, शोषण, अपराध, चोरी, डकैती तथा गरीबी बढ़ जाती है।

7. राजनीतिक दुष्परिणाम– बेरोजगारी का राजनीतिक परिणाम भी बड़ा भयंकर होता है। अधिक बेरोजगारी बढ़ने पर समाज में अशान्ति मच जाती है। सरकार के स्थायित्व को खतरा बना रहता है। बेरोजगारी राज्य के राजनीतिक ताने बाने को तोड़ देती है। आज जो विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता दिखाई देती है, वह भी बेरोजगारी की ही देन है। अधिकांश छात्र यह सोचते हैं कि पढ़ने के बाद उन्हें कौन-सी नौकरी मिलनी है।

उपर्युक्त विवेचन से बेरोजगारी की समस्या की गम्भीरता का पता चलता है, इस दिशा में किए जाने वाले प्रयासों में तीव्रता लाने की आवश्यकता है तथा विभिन्न उपायों को क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। सन्दर्भ में रमेश लक्ष्मण का कथन उचित ही है कि, "सब कहने और करने के उपरान्त भी बेरोजगारी की समस्या

को हल करने की सरकार की नैतिक व राजनीतिक जिम्मेदारी है, इस मोर्चे पर सरकार की असफलता देश को लम्बाई व चौड़ाई से चीरती हुई व्यापक अशांति की ओर ले जा सकती है।'

6.6 भारत में बेरोजगारी के लक्षण

NOTES

भारत में विकास नियोजन का प्रमुख लक्ष्य रोजगार अवसरों में वृद्धि करना है, इसके सकारात्मक परिणाम भी सामने आए हैं तथा पिछले कुछ वर्षों में रोजगार अवसरों में वृद्धि हुई है, इसके बावजूद जनसंख्या तथा श्रम शक्ति में तीव्र वृद्धि के परिणामस्वरूप बेरोजगारी बढ़ी है। पंचवर्षीय योजनाओं में आर्थिक वृद्धि तथा रोजगार उपलब्धता को एक-दूसरे के सहायक न कि विरोधी माना जाता है, इसीलिए रोजगार अवसरों में वृद्धि को आर्थिक वृद्धि के साथ जोड़ा गया है। साथ ही, बहुत बड़ी संख्या में रोजगार में लगे लोगों की निम्न उत्पादकता एवं निम्न आय भी एक समस्या है। बहुत से निर्धन ऐसे हैं जो निम्न उत्पादकता एवं आय वाले रोजगारों में लगे हुए हैं, इसलिए भारत में बेरोजगारी का एक प्रमुख लक्षण ऐसे लोगों की उत्पादकता एवं आय में वृद्धि करना भी है।

तीव्र गति से परिवर्तित होती तकनीकी के परिणामस्वरूप दक्ष श्रम शक्ति की आवश्यकता होती है, इस आवश्यकता की पूर्ति उन लोगों से नहीं की जा सकती जो तकनीकी रूप से दक्ष नहीं हैं, इसलिए भारत में बेरोजगारी का एक प्रमुख लक्षण अशिक्षित एवं तकनीकी रूप से पिछड़े हुए लोगों को श्रम शक्ति में सम्मिलित करने हेतु उपायों को खोजना भी है। साथ ही, यह ध्यान देने की भी आवश्यकता है कि अनेक ऋण एवं श्रम नीतियाँ अनिवार्य रूप से रोजगार विकसित करने वाली नहीं हैं। असंगठित क्षेत्र में अधिकांश श्रमिकों का रोजगार सुरक्षित नहीं है तथा उन्हें सामाजिक सुरक्षा के प्रावधानों का लाभ भी नहीं मिल पा रहा है।

भारत में बेरोजगारी के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं—

1. भारत में रोजगार में केवल 2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि होती है जो बढ़ती हुई जनसंख्या की रोजगार आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है, इससे बेरोजगारी बढ़ती है।

2. भारत में रोजगार अवसरों में वृद्धि नगरीय क्षेत्रों में अधिक होती है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में कम, इसी के परिणामस्वरूप ग्रामीण बेरोजगारी में कमी नहीं होती है। परन्तु यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि नगरों में बेरोजगारी गाँवों की तुलना में अधिक है।

3. कुछ क्षेत्रों में पुरुषों एवं महिलाओं हेतु रोजगार अवसरों में तो एक समान वृद्धि होती है, परन्तु अधिकतर रोजगारों में वृद्धि महिलाओं की तुलना में पुरुषों में अधिक होती है जिसके परिणामस्वरूप महिलाएँ रोजगार में पीछे रह जाती हैं, इसीलिए महिलाओं में बेरोजगारी की दर पुरुषों की तुलना में अधिक होती है।

4. कृषि क्षेत्र में 3 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि ग्रामवासियों को रोजगार उपलब्ध कराने हेतु अपर्याप्त मानी जाती है।

5. संगठित क्षेत्र में रोजगार अवसरों की वृद्धि अधिकतर सार्वजनिक क्षेत्र तक ही सीमित है तथा उसी अनुपात में निजी क्षेत्र में वृद्धि न होना बेरोजगारी का एक कारण है। विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार अवसरों की असमान वृद्धि रोजगार संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी है। कृषि एवं सहायक व्यवसायों में रोजगार में लगे व्यक्तियों की संख्या कम होती जा रही है।

6. आकस्मिक श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हो रही है, जबकि स्व-रोजगार में लगे लोगों की संख्या कम होती जा रही है। यह भी विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के असमान अवसरों का परिणाम है।

7. गैर-कृषि रोजगार से सम्बन्धित असंगठित क्षेत्र का विस्तार हो रहा है।

8. भारत में बेरोजगारी का एक प्रमुख लक्षण दिखाई न दिए जाने वाले उन रोजगार में लगे लोगों का भी है जो रोजगार में लगे होने के बाद भी पर्याप्त आय प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। यदि उनका रोजगार छिन भी जाए तो भी उन्हें कोई विशेष अन्तर नहीं होता। ऐसे व्यक्ति अत्यन्त निम्न उत्पादन एवं आय वाले रोजगार में लगे हुए होते हैं। ऐसे लोगों की समस्या अत्यन्त गम्भीर मानी जाती है। चूँकि ऐसे व्यक्तियों की गणना बेरोजगारों में नहीं होती, अत: बेरोजगारी का विस्तार कम दिखाई देता है।

9. भारत में अपर्याप्त रोजगार में लगे हुए लोगों में महिलाओं की संख्या पुरुषों की तुलना में अधिक है।

10. भारत में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या काफी अधिक है। ऐसा अनुमान है कि सामान्य बेरोजगारी का दर तो 3.77 प्रतिशत है, जबकि शिक्षित बेरोजगारी का 12 प्रतिशत। जैसे-जैसे शिक्षा के स्तर में वृद्धि होती जाती है, बेरोजगारी का दर भी बढ़ता जाता है।

11. भारत के विभिन्न राज्यों में बेरोजगारी की दर में भिन्नता पाई जाती है। यह दर 1.51 प्रतिशत से लेकर 17.07 प्रतिशत के बीच है। सम्पूर्ण भारत में बेरोजगारी की सामान्य दर 3.77 प्रतिशत है। जिन राज्यों में सामान्य दर से बेरोजगारी अधिक पाई जाती है उनमें पश्चिम बंगाल (6.06 प्रतिशत), हरियाणा (5.86 प्रतिशत), असम (5.62 प्रतिशत), तमिलनाडु (5.25 प्रतिशत), उड़ीसा (4.66 प्रतिशत), पंजाब (4.06 प्रतिशत) तथा आन्ध्र प्रदेश (3.90 प्रतिशत) प्रमुख हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान जैसे निर्धन राज्यों में बेरोजगारी का प्रतिशत अधिक है।

NOTES

6.7 बेरोजगारी नियन्त्रण हेतु अपनाए गए उपाय

भारत में केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों ने बेरोजगारी दूर करने के लिए अनेक प्रयास किए हैं। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत इस समस्या की ओर काफी ध्यान दिया गया है। सरकार द्वारा किए गए कुछ प्रमुख प्रयास इस प्रकार हैं–

1. प्रथम पंचवर्षीय योजना में बेरोजगारी के प्रश्न पर गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया गया। वस्तुत: उस समय देश के सामने और बहुत सी समस्याएँ थीं। किन्तु सन् 1953 के प्रारम्भ से ही यह समस्या अधिक स्पष्ट एवं गम्भीर रूप से उभरने लगी। अत: योजना आयोग ने देश में रोजगार के साधन बढ़ाने के लिए प्रथम योजना के आधार में वृद्धि की, इस हेतु 309 करोड़ रुपया अतिरिक्त व्यय करने की व्यवस्था की गई। सन् 1956 के अन्त में रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए एक 11 सूत्री कार्यक्रम घोषित किया गया। प्रथम योजना काल में लगभग 54 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त हुआ, फिर भी इस योजना के अन्त में, भारत में बेकारों की संख्या का अनुमान 53 लाख लगाया गया, जिसमें ये 25 लाख नगरों में तथा 28 लाख ग्रामों में थे।

2. दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 80 लाख व्यक्तियों को गैर-सरकारी क्षेत्र में तथा 16 लाख को कृषि क्षेत्र में अतिरिक्त रोजगार दिलाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। किन्तु इस योजना काल में केवल 80 लाख व्यक्तियों को ही रोजगार दिलाया जा सका। 65 लाख व्यक्तियों को गैर-कृषि क्षेत्र में अतिरिक्त रोजगार मिला, इस योजना के अन्त तक 53 लाख व्यक्तियों के बेरोजगार रहने का अनुमान था। पूर्ण बेकारों के अतिरिक्त अर्द्ध बेकारों की संख्या का अनुमान 1960-61 में 180 लाख था।

3. तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सन् 1961 की जनगणना के आधार पर यह अनुमान लगाया गया था कि तीसरी योजना की अवधि में श्रमिक वर्ग में लगभग 170 लाख व्यक्तियों की वृद्धि होगी जिसमें एक-तिहाई वृद्धि शहरी क्षेत्रों में होगी, इसके विपरीत यह अनुमान था कि इस योजना अवधि में 140 लाख व्यक्तियों को रोजगार दिलाया जाएगा। 35 लाख व्यक्तियों को कृषि क्षेत्र में तथा 105 लाख व्यक्तियों को गैर-कृषि क्षेत्र में रोजगार दिलाने की व्यवस्था की गई थी।

4. चौथी पंचवर्षीय योजना मे ऐसा अनुमान लगाया गया था कि 230 लाख श्रमिक और बढ़ जाएँगे। केन्द्रीय सरकार ने 50 करोड़ रुपये की एक योजना प्रारम्भ की थी। यह योजना 337 जिलों में लागू की गई और प्रत्येक जिले में 1000 व्यक्तियों को रोजगार मिला।

5. पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन देकर तथा ग्रामीण क्षेत्रों में नए लघु एवं कुटीर उद्योग खोलकर बेरोजगारी दूर करने का प्रयास किया गया। शिक्षित बेकारों को भी अपना व्यवसाय शुरू करने के लिए सरकारी कर्ज देकर प्रोत्साहन दिया गया।

6. 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम' को छठी पंचवर्षीय योजना का समन्वित भाग बनाया गया, इस योजना के अन्त तक प्रत्येक विकास खण्ड में अनेक परिवारों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाया गया, इसके साथ ही 'केश प्रोग्राम', अन्य व्यक्तियों को रोजगार दिलवाने तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों के उत्थान के लिए भी अनेक कदम उठाए गए।

7. सातवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम पर विशेष महत्व दिया गया तथा 2,487.47 करोड़ रुपये इस पर खर्च किए गए, इस योजना में विकास, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय के साथ-साथ खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि, रोजगार के अवसरों को बढ़ाने तथा निर्धनता रेखा से लोगों को ऊपर उठाने पर विशेष जोर दिया गया है।
8. आठवीं पंचवर्षीय योजना में पर्याप्त रोजगार के अवसर बढ़ाने को प्राथमिकता दी गई, इसके साथ ही जनसंख्या वृद्धि को रोकने हेतु किए जाने वाले कार्यक्रमों को भी प्रभावशाली बनाया गया।
9. नवीं पंचवर्षीय योजना में इस बात को स्वीकार किया गया कि यद्यपि आठवीं योजना में अर्थव्यवस्था काफी मजबूत रही फिर भी इसके लाभ समाज के कमजोर वर्गों तक नहीं पहुँच पाए, इसलिए इस योजना में कृषि एवं ग्रामीण आय में वृद्धि, सीमान्त कृषकों, भूमिहीन श्रमिकों तथा निर्धनता रेखा से नीचे रहने वालों के उत्थान हेतु अनेक उपाय किए गए।
10. दसवीं पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व की सबसे अधिक गति से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था बनाना था जिसमें 10 प्रतिशत वृद्धि दर का लक्ष्य रखा गया, इस योजना अवधि में रोजगार अवसरों में वृद्धि हेतु निजी क्षेत्र के विस्तार पर भी काफी बल दिया गया। निर्धनता को 5 प्रतिशत कम करने का लक्ष्य रखा गया तथा साक्षरता दर का लक्ष्य 75 प्रतिशत निर्धारित किया गया।
11. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में 7 करोड़ लोगों को रोजगार अवसर उपलब्ध कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया, इस योजना अवधि में सभी को नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के अतिरिक्त 3 वर्ष तक के बच्चों में मृत्यु-दर एवं कुपोषण कम करने पर भी बल दिया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त, सरकार ने बेरोजगारी को दूर करने के लिए निम्नलिखित कदम भी उठाए हैं—

1. सन् 1975 से लागू 20 सूत्री कार्यक्रम में 1980, 1982 तथा 1984 में संशोधन करके इसे निर्धनता उन्मूलन तथा बेरोजगारी-उन्मूलन के लिए अधिक प्रभावशाली बनाया है।
2. सन् 1980 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए।
3. सन् 1983-84 में ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। विकलांगों तथा शिक्षित बेकारों के लिए अनेक योजनाएँ बनाई गईं।
4. अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लोगों को आरक्षण सुविधाएँ देकर रोजगार के अवसर प्रदान किए गए।
5. सन् 1983 में स्वरोजगार योजना प्रारम्भ की गई। काम के बदले अनाज देने की योजना भी बनाई गई।
6. सातवीं, आठवीं, नौवी तथा दसवीं योजनाओं में रोजगार के अवसरों में वृद्धि की ओर विशेष ध्यान दिया गया। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में 7 करोड़ लोगों को रोजगार अवसर उपलब्ध कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

इस प्रकार, सरकार ने अनेक प्रयास किए हैं परन्तु सफलता अधिक नहीं मिली है, इस समस्या का हल केवल संगठित क्षेत्र की ओर ध्यान देने से नहीं हो सकता। अत: असंगठित क्षेत्र का विकास किया जाना चाहिए और कुछ ठोस उपाय (जैसे छोटे-छोटे फार्मों की संख्या में वृद्धि, छोटी जोतों को लाभकारी बनाने और ग्रामीण समाज में रोजगार के अवसर बढ़ाने) करने की आवश्यकता है। साथ ही, यह सतत प्रयास किया जाना आवश्यक है कि स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, जय प्रकाश रोजगार गारण्टी योजना का लाभ उन लोगों तक पहुँच सके जिन्हें रोजगार की आवश्यकता है तथा जो निर्धनता रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं।

बोध प्रश्न

1. भारत में बेरोजगारी के लक्षण बताइये।

....

....

....

2. बेरोजगारी नियंत्रण हेतु अपनाए गए उपाय बताइये।

....

....

....

....

6.8 बेरोजगारी का उपचार

बेरोजगारी भारत में आज एक अत्यधिक गम्भीर समस्या मानी जाती है, इसीलिए सरकार इसके निराकरण के लिए अनेक कदम उठा रही है। आज भारत में यदि सामाजिक विघटन के कारणों का विश्लेषण किया जाए, तो पता चलता है कि बढ़ती हुई बेरोजगारी भी विघटन का एक प्रमुख कारण है। आये दिन बेकार व्यक्ति आत्महत्या करते है। व्यक्तिगत विघटन ही नहीं वरन् विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता, समाज में बढ़ते हुए अपराध भी बेरोजगारी के परिणाम कहे जा सकते हैं। यदि समाज को इन दुष्परिणामों से बचाना है तो समाज से बेरोजगारी दूर करना अनिवार्य है, इस बढ़ती हुई समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया है। यदि पिछले छह आम चुनावों के सभी पार्टियों के घोषणा-पत्रों पर दृष्टि डाली जाए तो सभी दल इस समस्या के समाधान पर जोर देते रहे हैं। परन्तु अभी इस दिशा में आशातीत सफलता नहीं मिल पाई है। बेरोजगारी को दूर करने के कुछ प्रमुख उपाय निम्नांकित हैं—

1. **जनसंख्या पर नियन्त्रण**—जनसंख्या पर नियन्त्रण द्वारा बेरोजगारी को कम किया जा सकता है। भारत में जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत अधिक है, इसी कारण यहाँ बेरोजगारी और निर्धनता जैसी समस्याएँ पाई जाती हैं। अत: लोगों को जनसंख्या को सीमित करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। यद्यपि सरकार ने परिवार कल्याण हेतु अनेक कार्यक्रम प्रारम्भ किए हैं, तथापि इन उपायों से जनसंख्या में वृद्धि कम नहीं हो रही है, इस दिशा में अधिक सार्थक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

2. **कृषि क्षेत्र में सुधार**—कृषि क्षेत्र में सुधार करके भी बेरोजगारी को कम किया जा सकता है। सिंचाई साधनों में सुधार, कृषि के यन्त्रीकरण, बंजर भूमि को उपजाऊ बनाकर, कृषकों को पर्याप्त सहायता व प्रशिक्षण देकर तथा कृषकों को सहायक उद्योग-धन्धों (जैसे मछली पालन, पशुपालन, मुर्गी पालन आदि) में प्रोत्साहन देकर कृषि के क्षेत्र में बेरोजगारी को कम किया जा सकता है।

3. **नियोजित औद्योगीकरण**— औद्योगिक विकास को नियोजित कर तथा पिछड़े क्षेत्रों में कारखाने खोलकर बेरोजगारी दूर की जा सकती है। ग्रामीण कुटीर एवं लघु उद्योगों को भी प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है, इससे ग्रामीणों को गाँवों में ही रोजगार प्राप्त हो सकेंगे। बेरोजगार लोगों को बैंकों द्वारा रोजगार के लिए अधिक सुविधाएँ दी जानी चाहिए। साथ ही, यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उनको दिया जाने वाला ऋण किसी सार्थक रोजगार में ही लग सके।

4. **शिक्षा व्यवस्था में सुधार**— आज भी हम अंग्रेजों द्वारा दी गई शिक्षा पद्धति का अनुसरण करते आ रहे है। यह पद्धति ऐसी है जिसमें शिक्षार्थी को किसी प्रकार के रोजगार का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। सम्पूर्ण शिक्षा किताबी शिक्षा तक ही सीमित रहती है। शिक्षा पूरी करने पर उसके पास डिग्रियाँ तो होती हैं परन्तु किसी भी कार्य को करने का प्रशिक्षण नहीं। अत: शिक्षा को व्यावसायिक बनाकर शिक्षित बेरोजगारी को कम किया जा सकता है। शिक्षा पद्धति व्यावहारिक होनी चाहिए ताकि शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् विद्यार्थी अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करने योग्य बन सकें। बेरोजगार शिक्षितों को अपने लघु उद्योग स्थापित करने हेतु पर्याप्त सुविधाएँ दी जानी चाहिए।

5. **रोजगार कार्यालयों को प्रभावकारी बनाकर**—नए रोजगार खोलकर तथा रोजगार कार्यालयों को अधिक प्रभावशाली बनाया जाए। छात्रों को इन्हीं कार्यालयों द्वारा रोजगार का ज्ञान दिया जाना चाहिए। जनसंचार में हुई क्रान्ति का लाभ भी रोजगार के अवसरों की उपलब्धता की जानकारी देने हेतु उठाया जाना चाहिए।

6. **सामाजिक बुराइयों की समाप्ति**—रूढ़िवादी एवं दहेज प्रथा जैसी बुराइयों को दूर करके भी बेरोजगारी को थोड़ा बहुत कम किया जा सकता है। वास्तव में, भारतीय सामाजिक संरचना को उन सब दोषों से मुक्त किया

जाना चाहिए जो निर्धनता व बेरोजगारी को प्रोत्साहन देते हैं।

7. सरकारी योजनाओं को प्रभावकारी बनाकर–सरकार ने बेरोजगारी व निर्धनता की रोकथाम के लिए जो योजनाएँ बनाई हैं उन्हें अधिक प्रभावकारी बनाए जाने की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उनका लाभ उन्हीं लोगों को पहुँच सके जिनके लिए ये योजनाएँ बनाई जाती हैं।

8. रोजगार अवसरों में वृद्धि–रोजगार अवसरों में वृद्धि की जानी चाहिए। कुटीर उद्योगों का विकास करके तथा पिछड़े क्षेत्रों में नवीन उद्योगों की स्थापना द्वारा ऐसा किया जा सकता है।

उपर्युक्त उपायों के अतिरिक्त श्रमिकों को पर्याप्त वेतन का प्रबन्ध करके, विकलांगों के पुनर्वास की योजनाएँ बनाकर, सामाजिक सुरक्षा के कार्यक्रमों को प्रभावकारी बनाकर, उत्पादन में वृद्धि करके, तकनीकी शिक्षा को बढ़ावा देकर, सामाजिक सेवाओं का विस्तार करके आदि विविध उपायों द्वारा भी बेरोजगारी को कम किया जा सकता है।

6.9 शब्दावली

बेरोजगारी–बेरोजगारी से अभिप्राय उस दशा से है जिसमें व्यक्ति योग्यता एवं इच्छा के बावजूद समुचित पारिश्रमिक कार्य को पाने से वंचित रहता है।

चक्रीय बेरोजगारी–उद्योगों के असफल होने पर अथवा किसी उद्योग के ह्रास से उत्पन्न बेरोजगारी चक्रीय बेरोजगारी कहलाती है।

वैयक्तिक विघटन –व्यक्ति का सामाजिक नियमों तथा सम्पूर्ण समाज के साथ तादात्मीकरण न होना वैयक्तिक विघटन कहलाता है।

पारिवारिक विघटन–परिवार के सदस्यों को एक-दूसरे से बाँधने वाले बन्धनों की शिथिलता, असामंजस्य अथवा पृथक्करण पारिवारिक विघटन कहलाता है।

सामाजिक विघटन–समूह के सदस्यों के सम्बन्धों का टूट जाना अथवा भंग हो जाना अथवा विभिन्न समूहों एवं संस्थाओं के बीच असन्तुलन एवं संघर्ष उत्पन्न हो जाना सामाजिक विघटन कहलाता है।

6.10 सारांश

इस इकाई में हमने बेरोजगारी का अर्थ, प्रकार, कारण एवं परिणाम का अध्ययन किया है। बेरोजगारी नियंत्रण हेतु अपनाए गए सुझावों के बारे में बताया है। बेरोजगारी की समस्या को समझना एवं शीघ्रतिशीघ्र इसका हल करना नितान्त आवश्यक है।

6.11 अभ्यास प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. बेरोजगारी किसे कहते हैं? इसके प्रमुख स्वरूपों की विवेचना कीजिए।
2. बेरोजगारी को परिभाषित कीजिए तथा इसके प्रमुख कारण बताइए।
3. बेरोजगारी क्या है? भारत में बेरोजगारी के लक्षण बताइए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. बेरोजगारी से आप क्या समझते हैं? इसके दुष्परिणामों की विवेचना कीजिए।
2. बेरोजगारी का अर्थ बताते हुए इस समस्या के समाधान हेतु सुझाव दीजिए।
3. निम्नलिखित पर सँक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

    (अ) शिक्षित बेरोजगारी

(ब) कृषि बेरोजगारी

(स) बेरोजगारी पर नियन्त्रण

(द) बेरोजगारी एवं पंचवर्षीय योजनाएँ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. बेरोजगारी के उपचार कितने है–

(अ) आठ (ब) नो (स) दस (द) ग्यारह

उत्तर 1. (अ)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Fairchild, H. P. (ed.), **Dictionary of Sociology,** London : Vision, 1958.

Pribram, Karl, **Encyclopaedia of the Social Sciences,** Vol. XV, Genesis Publishing Pvt Ltd., 1957.

D'Mello, R. G., **Seminar,** No. 120, 1978, p. 24.

Ogburn, W. F. and M. F. Nimkof, **A Handbook of Sociology,** New York : Houghton, 1964.

Ramesh Lakshman "Joblessness : Its Many Faces" in **Indian Express,** 22-8 : 1978.

●●●

NOTES

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

अध्याय–7 मद्यपान (ALCOHOLISM)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 मद्यपान की अवधारणा
7.3 मद्यपान का परिमाण
7.4 मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया
7.5 मद्य दुरुपयोग के कारण
7.6 मद्यपान की समस्याएँ
7.7 मद्यसारिकों का उपचार एवं नियन्त्रण
7.8 शब्दावली
7.9 सारांश
7.10 अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

मदिरा का अत्यधिक सेवन मद्यपान कहलाता है। ऐसा अनुमान है कि भारत में 21 प्रतिशत वयस्क पुरुष मद्यपान करते हैं। अरुणाचल प्रदेश जैसे राज्यों में यह प्रतिशत 75 तक है। यद्यपि सम्पूर्ण भारत में महिलाओं में मद्यपान की दर पुरुषों की तुलना में कम है, तथापि उत्तर-पूर्वी राज्यों में महिलाओं में मद्यपान की दर भी अत्यधिक है। आदिवासियों तथा ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों के निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले लोगों में मद्यपान अधिक है। वैयक्तिक स्तर पर मद्यपान से शारीरिक क्षमता कम होती है तथा अनेक प्रकार की मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। परिवार के स्तर पर मद्यपान पारिवारिक विघटन को प्रोत्साहन देता है तथा महिलाओं पर अत्याचार में वृद्धि करता है। सामुदायिक स्तर पर भी मद्यपान की काफी सामाजिक एवं आर्थिक कीमत चुकानी पड़ती है। दुर्घटनाएँ एवं मृत्यु, मानव शक्ति अपव्यय, अपराध में वृद्धि तथा सामाजिक सुरक्षा, उपचार एवं पुनर्वास के लिए अधिक धन का व्यय ऐसे दुष्परिणाम है जो मद्यपान के कारण पनपते हैं, इसीलिए समाजशास्त्र में सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में मद्यपान को सम्मिलित किया जाता है, इस इकाई का उद्देश्य मद्यपान के विभिन्न पहलुओं की विवेचना करना है।

7.1 प्रस्तावना

मद्यपान (अतिमद्यपता) एवं मादक द्रव्य व्यसन ऐसी सामाजिक समस्याएँ हैं जो आज सभी देशों में चिन्ता का विषय बनी हुई है क्योंकि इनसे तीनों ही प्रकार के विघटनों— वैयक्तिक विघटन, पारिवारिक विघटन तथा सामाजिक विघटन को प्रोत्साहन मिलता है। इन्हें मुख्य रूप से वैयक्तिक विघटन के रूप में देखा गया है। भारत में मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन का प्रयोग इतना अधिक बढ़ गया है कि यह खतरा पैदा हो गया है कि आने वाले कुछ वर्षों में भारत इन पदार्थों का सेवन करने वाला सबसे पहला और बड़ा देश बन जाएगा। एक अनुमान के अनुसार केवल दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता तथा चेन्नई में जहरीली दवाओं की लाखों रुपये की खुदरा बिक्री रोज होती है। अकेले मुम्बई में एक लाख से अधिक नसेड़ी हैं और देश में हर वर्ष 50 हजार की दर से नसेड़ियों की वृद्धि हो रही है, इससे भारत में मद्यपान की समस्या की गम्भीरता का पता चलता है।

मद्यपान कोई नई बात नहीं है क्योंकि इसका प्रचलन आदिकाल से ही संसार के प्रत्येक देश में विविध रूपों में होता आया है। मद्यपान यद्यपि करता तो एक व्यक्ति है परन्तु इसे सामाजिक समस्या इसलिए कहा जाता है क्योंकि इससे वैयक्तिक विघटन के अतिरिक्त पारिवारिक विघटन एवं सामाजिक विघटन भी होते हैं। मद्यपान एक सामाजिक समस्या तब समझी जाती है, जबकि अत्यधिक मदिरा का उपयोग करके व्यक्ति व्यभिचारी या अपराधी कार्यों को करने लगता है। इतना ही नहीं, तलाक, पलायन, आत्महत्या, अपराध, कलह, भ्रष्टाचार, दुर्घटना व नैतिक पतन जैसी अनेक समस्याएँ इसके साथ जुड़ी हुई हैं, इसलिए इस समस्या का समाजशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन विशेष महत्व रखता है। अत्यधिक अथवा आदतन मद्यपान का व्यक्ति के मूल्यों, मनोवृत्तियों, स्वास्थ्य तथा जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया जाता है क्योंकि मद्यपान करने वाला व्यक्ति परिवार तथा समुदाय का भी सदस्य होता है, इसलिए इससे समाज की यह महत्वपूर्ण इकाइयाँ भी प्रभावित होती हैं। संसार में लाखों पुरुष तथा स्त्रियाँ आज ऐसी स्थिति में पहुँच चुके है जहाँ मद्यपान उनकी एक मूल आवश्यकता बन गया है।

7.2 मद्यपान की अवधारणा

आज समाज में मद्यपान ही एक समस्या नहीं है अपितु अन्य नशीले द्रव्यों (जैसे अफीम, गांजा, चरस, कोकीन, भांग, एल. एस. डी. अन्य नशा उत्पन्न करने वाली दवाएँ व जड़ी बूटियाँ इत्यादि) का प्रयोग इतनी अधिक मात्रा में होने लगा है कि प्रत्येक समाज में मादक द्रव्य व्यसन एक चिन्ता का विषय बना हुआ है। अमेरिका, यूरोप तथा एशिया के अनेक देश इससे प्रभावित हैं। प्रायः ऐसा देखा गया है कि अगर एक बार इस प्रकार के मादक द्रव्य व्यसन की व्यक्ति को आदत पड़ जाती है तो इसे छोड़ना बहुत कठिन होता है। मादक द्रव्य व्यसन व्यक्ति की वह स्थिति है जिसमें वह किसी औषधि का इतना अधिक सेवन करने लगता है कि वह सामान्य अवस्था में रहने के लिए भी उस पर आश्रित हो जाता है। अगर औषधि उसे नहीं मिलती तो वह बीमार सा अनुभव करता है। यह एक प्रकार से मादक द्रव्यों (नशीली दवाओं) के अत्यधिक सेवन की स्थिति है।

इलियट एवं मैरिल (Elliott and Merrill) ने उचित ही लिखा है कि मद्यपान का भी सामाजिक वितरण होता है। जटिल समाजों में विभिन्न समूहों को जिस प्रकार शिक्षा, व्यवसाय, धर्म, राष्ट्रीयता, प्रजाति इत्यादि कारकों द्वारा एक-दूसरे से अलग किया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार इन समूहों में मद्यपान का उपयोग एक समान रूप से नहीं होता। वैयक्तिक असुरक्षा, जोकि एक समूह में पाई जाती है, जरूरी नहीं है कि वह किसी अन्य समूह में भी पाई जाए, इसीलिए ग्रामीण तथा नगरीय समुदायों तथा उन समुदायों के विभिन्न समूहों में इसका उपयोग एक समान नहीं होता है। कुछ समाजों में कम तेज मद्यपान का उपयोग किया जाता है।

7.2.1 मद्यपान का अर्थ एवं परिभाषाएँ

सरल शब्दों में मद्यपान का अर्थ मदिरा (शराब) का सेवन करना है। जो व्यक्ति मदिरा का सेवन करता है उसे मद्यसेवी कहते हैं। फेयरचाइल्ड (Fairchild) ने मदिरा सेवन की असामान्य तथा बुरी आदत को मद्यपान कहा है। इलियट एवं मैरिल जैसे अनेक विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि अधिक मात्रा में मदिरा का सेवन ही मद्यपान कहलाता है। कभी-कभी अथवा बहुत कम मात्रा में शराब पीना मद्यपान नहीं है। साथ ही, ऐसे विद्वानों ने मद्यपान को मदिरा सेवन की वह आदत बताया है जो मद्यसेवी की कमजोरी बन जाती है। वह मदिरा पर इतना अधिक आश्रित हो जाता है कि बिना उसके सेवन से उसे बेचैनी होने लगती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन निपुण समिति (World Health Organization Expert Committee) ने मद्यपान को इन शब्दों में परिभाषित किया है, "मद्यपान नशे की वह दशा है जो किसी मादक पदार्थ के निरन्तर सेवन से पैदा होती है; जो कुछ देर तक या सदैव ही व्यक्ति को इस तरह नशे में चूर रखती है जो समाज और व्यक्ति दोनों के लिए हानिकारक होती है।" इस संगठन के अनुसार मद्यसेवी से अभिप्राय अधिक नशा करने वाले उस व्यक्ति से है जिसकी मदिरा पर इतनी अधिक निर्भरता बढ़ जाती है कि इसके कारण व्यक्ति का मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है।

सन् 1964 में योजना आयोग द्वारा नियुक्त मद्यनिषेध पर स्टडी टीम की रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, इस स्टडी टीम के अध्यक्ष पंजाब उच्च न्यायालय के निवर्तमान न्यायाधीश श्री टेकचन्द थे। यह रिपोर्ट मद्यपान एवं मद्यनिषेध पर एक शास्त्रीय शोध ग्रन्थ माना जाता है, इस रिपोर्ट में मद्यपान की परिभाषा इन शब्दों में की गई थी, "मद्यपान से आशय एक बीमारी, आदत या व्यसन से है जो व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक व्यवस्था के टूटने से पैदा होता है। यह विघटन दीर्घकाल तक लगातार और आदतन मद्यपान के परिणामस्वरूप होता है।" इसी भाँति, मार्क कैलर (Mark Keller) के अनुसार, "मद्यपान एक ऐसा दीर्घकालिक व्यवहार-सम्बन्धी विकार है जिसमें व्यक्ति इतनी अधिक मात्रा में मदिरा-सेवन करने लगता है कि उसकी मदिरा पीने की आदत उसके स्वास्थ्य तथा सामाजिक व आर्थिक कार्यों में हस्तक्षेप करने लगती है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मद्यपान मदिरा सेवन की वह स्थिति है जो मद्यसेवी की आदत बन जाती है तथा जो उसके स्वास्थ्य और मानसिक जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। यह मदिरा के किसी भी रूप में निरन्तर उपयोग से उत्पन्न पाक्षिक या शाश्वत नशे की स्थिति है जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अहितकर होती है। मद्यपान में मदिरा के साथ-साथ उन पदार्थों का सेवन भी सम्मिलित है जो व्यक्ति में मादकता उत्पन्न करते हैं, इसीलिए किसी भी ऐसे पदार्थ का सेवन जो नशा पैदा करता है विस्तृत रूप से मद्यपान कहलाता है।

वस्तुत: मद्यपान से आशय व्यक्ति की उस व्याधिकीय दशा से है जो उसके द्वारा नशीले पेयों के लगातार एवं अत्यधिक सेवन से उत्पन्न होती है, इस दशा में व्यक्ति मद्यपान की आदत का शिकार हो जाता है। वह मद्यपान के लिए स्वयं को बाध्य समझता है। एक मानसिक रोगी की भाँति, दिन-प्रतिदिन विकृतियों की ओर बढ़ता हुआ भी तथा मदिरा की चाह को छोड़ना चाहते हुए भी वह इसे नहीं छोड़ सकता। मद्यपान अत्यधिक मदिरा व्यसन की स्थिति है जिसमें व्यक्ति मानसिक विकृति का शिकार होने के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से भी दरिद्र हो जाता है, सामाजिक प्रतिष्ठा खो बैठता है तथा नैतिक ह्रास के कारण एक प्रकार से विवेकशून्य हो जाता है। अत: मद्यपान उन लोगों की समस्या नहीं है जो कभी-कभी खुशी या गम के अवसर पर थोड़ी-सी मदिरा पी लेते हैं और बातचीत व हँसी-मजाक करके खाना खाकर सो जाते है। ऐसे लोगों के लिए मदिरा शारीरिक या मानसिक कमजोरी नहीं होती है।

उपर्युक्त विवेचन से मद्यपान की निम्नांकित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं–

1. मद्यपान अधिक मात्रा में मदिरा-सेवन की आदत है।
2. मद्यपान की आदत में व्यक्ति मदिरापान करने के लिए अपनी विवशता प्रकट करता है।
3. मद्यपान व्यक्ति के लिए जीवन की वह स्थिति है जिससे मदिरा उसके जीवन के लिए एक समस्या बन जाती है और वह उसे आसानी से छोड़ नहीं पाता है।
4. यह आदत कभी-कभी अथवा अधिकांशत: मदिरा-सेवन करने वाले व्यक्ति के व्यवहार और कार्यक्षमता में गम्भीर दोष उत्पन्न कर देती है।
5. मद्यपान की स्थिति में व्यक्ति शारीरिक व संवेगात्मक नुकसान उठाता है।
6. मद्यपान एक मानसिक व शारीरिक बीमारी है जो अनेक प्रकार के रोगों और व्यवहार विवादों को जन्म देती है।

टेकचन्द स्टडी टीम ने मदिरासेवियों (मद्यसारिकों) की निम्न छह श्रेणियाँ बताई हैं–

1. कभी-कभी पीने वाले,
2. संयत पीने वाले (एक सप्ताह में तीन बार),
3. अभ्यस्त, सामाजिक अथवा भोजन के साथ पीने वाले (हफ्ते में तीन बार से ज्यादा लेने वाले),
4. अधिक (Heavy) पीने वाले (वे लोग जो इतना पीते हैं कि घर, समाज या व्यापार में भी कठिनाई में पड़ जाते है परन्तु वे इसे स्वेच्छा से छोड़ सकते है),

5. व्यसनी पीने वाले (वे जो अपने आप मदिरा सेवन नहीं छोड़ सकते और जिन्हें उपचार की जरूरत है), तथा

6. चिर-कालिक पीने वाले (वे लोग जो तन और मन से गिरावट की स्थिति में हैं)।

NOTES

7.2.2 मद्यपान बनाम मादक द्रव्य व्यसन

मद्यपान मदिरा का अधिक सेवन है, तो मादक द्रव्य व्यसन उन नशीली औषधियों का प्रयोग है जिन पर व्यक्ति इतना अधिक आश्रित हो जाता है कि ऐसा करना न केवल उसकी आदत बन जाती है, अपितु उसके जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित भी करती है, इसीलिए मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन का परिणाम यद्यपि एक-जैसा होता है, तथापि दोनों में अन्तर भी है। मद्यपान आदिकाल से चली आ रही एक सार्वभौमिक समस्या है, जबकि मादक द्रव्य व्यसन औषधि विज्ञान में हुई प्रगति के परिणामस्वरूप विकसित एक आधुनिक समस्या है। चिकित्सा पद्धति के अतिरिक्त किसी भी मात्रा में शक्ति, आवृत्ति या प्रकार से किसी दवा का सेवन, जो शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को क्षति पहुँचाए, मादक द्रव्य व्यसन कहलाता है। अन्य शब्दों में, यह नशीली दवाओं का दुरुपयोग है।

मद्यपान सामान्यतया सायंकाल एवं रात्रिकाल में अधिक किया जाता है, जबकि मादक द्रव्य व्यसन का कोई समय नहीं है। मादक द्रव्यों का प्रयोग अधिकांश व्यसनी दिन के समय में ही करते हैं, इसलिए उनमें अनेक ऐसे लक्षण पैदा हो जाते हैं जोकि मद्यपान के परिणामस्वरूप विकसित नहीं होते। इन लक्षणों में खेलकूद और दिनचर्या में अरुचि, भूख व वजन में कमी, लड़खड़ाते कदम, बेढंगी हरकतें, आँखों में लालिमा, सूजन व धुँधलापन, जुबान का लड़खड़ाना, उनींदापन या अनिन्द्रा, सुस्ती और अकर्मण्यता का होना, तीव्र उद्विग्नता, घबराहट, शरीर पसीने से तरबतर हो जाना, स्मरण शक्ति और एकाग्रता की क्षीणता, अकेलेपन की चाह खासकर शौचालय में अधिक समय बिताना, तथा घर से सामान/पैसा गायब हो जाना प्रमुख हैं, इसके अतिरिक्त, शरीर पर अनेक टीकों के ताजे निशान व कपड़ों पर खून के धब्बे, घर में सुइयों व अजीबो-गरीब पैकटों का पाया जाना भी मादक द्रव्य व्यसन के लक्षण हैं। मद्यपान में इस प्रकार की कोई वस्तु नहीं पाई जाती है।

मद्यपान का प्रचलन बड़ों की तुलना में बच्चों में कम पाया जाता है, जबकि मादक द्रव्य व्यसन की आदत अधिकतर 16 से 35 वर्ष की आयु वाले लोगों में अधिक पाई जाती है। निम्न आय वर्ग में मादक द्रव्यों के व्यसनी अधिक होते हैं, इस प्रकार के ज्यादातर व्यसनी बेरोजगार, श्रमिक, परिवहन मजदूर या विद्यार्थी होते हैं।

मदिरा सामान्यतया शराब की दुकानों अथवा ठेकों में उपलब्ध होती है। ये दुकानों एवं ठेके सरकार द्वारा अनुमोदित होते हैं, इसके विपरीत, मादक द्रव्य मुख्य रूप से फेरीवाले, दुकानदार और पानवाले गैरकानूनी रूप से बेचते हैं। पान वाली दुकानों में तथा अंग्रेजी दवाएँ बेचने वाली दुकानों में ऐसे मादक द्रव्य सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं।

मादक द्रव्य व्यसन का इतिहास काफी प्राचीन है तथा यूरोप, एशिया व सुदूरवर्ती पूर्वी और पश्चिमी देशों में इसका प्रयोग किसी ने किसी रूप में अवश्य होता रहा है। उदाहरणार्थ, भारत में मादक द्रव्यों का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आया है। हिन्दू ग्रन्थों में 'सोमरस' नामक मादक द्रव्य तथा भांग का उल्लेख मिलता है। भांग को शिवजी का प्रिय पेय समझा गया है तथा शिवरात्रि वाले दिन अधिकतर लोग भांग पीते हैं, इस प्रकार, कई मादक द्रव्यों के प्रयोग को भारत में कुछ सीमा तक धार्मिक स्वीकृति भी मिली हुई है। होली के त्योहार पर भांग का प्रयोग बहुधा होता है। साधु-सन्त तथा महात्मा लोग गांजा, चरस तथा कोकीन का बहुधा प्रयोग करते हैं। भारत में अफीम का उपयोग भी अधिक हो गया है तथा कुछ लोग नींद के लिए इसे दवा के रूप में प्रयोग करते हैं। केवल भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में अफीम, गांजे और चरस का प्रयोग काफी बढ़ गया है।

मादक द्रव्यों को उत्तेजक (कोकीन, डक्सीड्रीन, मेथेड्रीन आदि), निश्चेतक अफीम, गांजा, चरस आदि तथा मायिक या भ्रान्तिजनक (एल. एस. डी. आदि) में विभाजित किया जा सकता है। उत्तेजक द्रव्य खाने से नींद नहीं आती है और ऐसा लगता है की शरीर की ऊर्जा शक्ति बढ़ गई है; निश्चेतक द्रव्य खाने से उनींदापन

महसूस होता है, चित्त प्रसन्न लगता है तथा उदासी की भावनाएँ दूर हो जाती है तथा मायिक द्रव्यों के प्रयोग से व्यक्ति दिन को सपने देखने लगता है तथा उसका सम्बन्ध वास्तविकता से टूट जाता है।

मद्यपान और मादक द्रव्य व्यसन दोनों वैयक्तिक विघटन के प्रमुख रूप माने जाते हैं। मद्यपान एक ऐसा दीर्घकालिक व्यवहार-सम्बन्धी विकार है जिसमें व्यक्ति इतनी अधिक मात्रा में मदिरा-सेवन करने लगता है कि उसकी मदिरा पीने की आदत उसके स्वास्थ्य तथा सामाजिक व आर्थिक कार्यों में हस्तक्षेप करने लगती है। मादक द्रव्य व्यसन व्यक्ति की वह स्थिति है जिसमें वह किसी नशीली औषधि का इतना अधिक सेवन करने लगता है कि वह सामान्य अवस्था में रहने के लिए भी उस पर आश्रित हो जाता है। अगर वह औषधि उसे नहीं मिलती तो वह बीमार सा अनुभव करता है। यह एक प्रकार से मादक द्रव्यों (नशीली दवाओं) के अत्यधिक सेवन की स्थिति है। दोनों के कारणों एवं परिणामों में इतनी अधिक समानता है कि इस दृष्टि से भी इन दोनों में अन्तर करना एक कठिन कार्य है।

बोध प्रश्न

1. मद्यपान की अवधारणा से आप क्या समझते हैं।

....

....

....

....

2. मद्यपान बनाम मादक द्रव्य व्यसन को बताइये।

....

....

....

....

7.3 मद्यपान का परिमाण

मद्यपान भारत में एक समस्या है क्योंकि इसका दुरुपयोग सम्बन्धित व्यक्ति, उसके परिवार एवं समुदाय के लिए अनेक प्रकार की समस्याएँ विकसित कर देता है। महात्मा गांधी ने इस सन्दर्भ में कहा था कि, "मद्यपान को मैं चोरी और यहाँ तक कि वेश्यावृत्ति से भी अधिक बुरा मानता हूँ क्योंकि यह दोनों ही बुराइयाँ मद्यपान से पैदा होती हैं।" इसीलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में मद्यनिषेध पर काफी जोर दिया गया। मदिरा के उत्पादन से सरकार को इतना अधिक आबकारी कर प्राप्त होता है कि इसे बन्द करना अत्यधिक कठिन है, इसके उत्पादन में होने वाली वृद्धि का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1970 ई. में भारत में शराब का उत्पादन केवल 60 लाख लीटर था जो 1992-1993 ई. तक बढ़कर 887.2 मिलियन लीटर, 1999-2000 ई. में 1,654 मिलियन लीटर तथा 2007-2008 ई. में बढ़कर 2,300 मिलियन लीटर हो गया। दक्षिण-पूर्व एशिया में कुल शराब के उत्पादन में 65 प्रतिशत हिस्सा भारत का है। इतना ही नहीं, वैश्विक उदारीकरण के इस युग में विदेशी मदिरा भी-काफी मात्रा में भारत में उपलब्ध है।

नशीले पदार्थों के शिकार केवल युवक ही नहीं हैं अपितु अब 12 से 14 वर्ष तक के बच्चे भी इसमें शामिल हो गए हैं। सन् 1986 में भारतीय चिकित्सालय अनुसन्धान परिषद् द्वारा किए गए सर्वेक्षण से हमें यह पता चलता है कि अब प्रतिभाशाली तथा अच्छे छात्र सामान्य तथा मन्द बुद्धि छात्रों की अपेक्षा इन पदार्थों का अधिक सेवन करते हैं। नशीले पदार्थों का सर्वाधिक सेवन परीक्षाओं के समय ही पाया गया है। अधिकतर छात्र इन पदार्थों का सेवन थकान दूर करने या तनाव कम करने के लिए करते हैं। कुछ छात्र यह सोचकर नशीले पदार्थों का प्रयोग करते है कि इन्हें लेने से याददाश्त तेज हो जाती है। सर्वेक्षण के अनुसार बड़े शहरों में या विद्यालयों

में तथा विश्वविद्यालय में 25 प्रतिशत छात्र नशीले पदार्थों का सेवन करते पाए गए। यह लत सर्वाधिक 35 प्रतिशत दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों में पाई गई। यह प्रतिशत उन शिक्षण संस्थाओं में और अधिक है जहाँ शिक्षा का स्तर अपेक्षाकृत अच्छा है तथा जहाँ छात्रों को काफी अधिक छूट मिली हुई है। स्कूलों में नशीले पदार्थों का सेवन भी चिन्ता का विषय बनता जा रहा है। यह बात पब्लिक स्कूलों के छात्रों में अधिक पाई जाती है।

NOTES

दिल्ली विश्वविद्यालय के समाज कार्य विभाग के प्रोफेसर पी. एन. गोविल के अनुसार, नशे की लत बढ़ने का एक प्रमुख कारण शिक्षकों तथा छात्रों के बीच परम्परागत घनिष्ठ तथा वैयक्तिक सम्बन्धों का अभाव है। उनके अनुसार समाज का तेजी से बदलता परिवेश भी इसके लिए बहुत हद तक जिम्मेदार है। आजकल तो आप अगर समाज में अपनी इज्जत कराना चाहते हैं तो आपको शराब और सिगरेट तो पीनी ही होगी। साथ ही, उनका कहना है कि मादक औषधियाँ आसानी से मिल जाती हैं। अधिकारियों की मिलीभगत तथा उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण ही ऐसा हो पाया है।

ऐसा अनुमान किया गया है कि मुम्बई नगर में 1 लाख 50 हजार व्यवित हेरोइन सेवन के आदी हैं। दिल्ली में इनकी संख्या 1 लाख और कोलकाता में 70 हजार है। एक संगोष्ठी में विशेषज्ञों ने यह विचार व्यक्त किया कि भारत में यदि यही प्रवृत्ति रही तो 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहाँ दो करोड़ व्यक्ति इस हेरोइन के शिकार हो जाएँगे, इसलिए इस मादक द्रव्य को सफेद प्लेग (White plague) भी कहा गया है।

दिल्ली में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार हाई स्कूल के दो छात्रों में से एक और कॉलेज के तीन छात्रों में से एक विद्यार्थी मादक द्रव्यों के सेवन का आदी हो चुका है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यदि देखें तो मुम्बई में एक अस्पताल द्वारा किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि जिन व्यसनियों को उपचार के लिए लाया गया उन चार में से एक श्रमिक वर्ग का था। दिल्ली में 5,834 मादक द्रव्य वेचने वाले और सेवन करने वाले पकड़े गए जिनमें से 5,506 निम्न वर्ग, झुग्गी-झोपड़ियों से सम्बन्धित थे। एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी श्री गौतम कौल के अनुसार, पंजाब पुलिस में कम से कम पच्चीस प्रतिशत लोग मादक द्रव्यों के सेवन के आदी हैं। दिल्ली के आटो-रिक्शा चालकों में 70—80 प्रतिशत मादक द्रव्यों का प्रयोग करते हैं। पिछले चार वर्षों से सम्बन्धित विभागों द्वारा पकड़े गए माल की मात्रा और उसके मूल्य के अनुमान से पता चलता है कि भारत मादक द्रव्य के व्यापार का महत्वपूर्ण मार्ग बन गया है। ऐसे द्रव्य भारत होते हुए यूरोप, अमेरिका व अन्य देशों को भेजे जाते हैं। सी. बी. ममोरिया (C. B. Mamoria) के अनुसार भारत की लगभग 12 प्रतिशत जनसंख्या इससे प्रभावित है परन्तु आजकल यह प्रतिशत कहीं अधिक हो गया है क्योंकि शिक्षण वर्ग में विशेषकर छात्रों तथा छात्राओं में इसका प्रयोग बहुत अधिक बढ़ गया है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार मद्यपान से पूरे विश्व में प्रतिवर्ष 2.5 मिलियन लोगों की मृत्यु होती है। यह मृत्यु के कारणों में आठवाँ सबसे कारण है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार भारत में मद्यपान अभी भी अन्य देशों की तुलना में काफी कम है। सरकारी अनुमान के अनुसार भारत में 21 प्रतिशत वयस्क पुरुष तथा 2 प्रतिशत वयस्क स्त्रियाँ ही मद्यसारिक हैं। भारत में लगभग 14 मिलियन ऐसे मद्यसारिक हैं जिन्हें अब सहायता की आवश्यकता है। गैर-सरकारी संगठनों द्वारा मद्यपान के परिमाण के बारे में लगाए गए अनुमान कहीं अधिक है। ऐसा माना जाता है कि भारत में 7.5 करोड़ लोग मद्यसारिक हैं। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण संगठन द्वारा 2005-06 में संकलित आँकड़ों, जोकि सितम्बर 2007 में प्रकाशित हुए, से पता चलता है कि 32 प्रतिशत वर्तमान मद्यसारिकों में 4 से 13 प्रतिशत रोजाना पीने वाले हैं। यह प्रतिशत ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या के लिए लगभग एक-जैसा (क्रमशः 32 प्रतिशत एवं 31 प्रतिशत) है।

ऐसा अनुमान है कि पिछले पाँच वर्षों में भारत में मदिरा सेवन में 171 प्रतिशत वृद्धि हुई है। पंजाब, आन्ध्र प्रदेश, गोवा तथा उत्तर-पूर्वी राज्यों में मद्यपान अधिक होता है। असम, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, उत्तर-पूर्व, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा तथा आन्ध्र प्रदेश में महिलाओं में मद्यपान पुरुषों की तुलना में अधिक है, इस प्रकार, भारत में मद्यपान के प्रतिमानों एवं प्रवृत्तियों में तेजी से परिवर्तन हुआ है। मद्यसारिक बनने की आयु पहले की तुलना में कम हो गई है। भारत में अब 15 वर्ष तक की आयु के लड़कों में मद्यपान की आदत पड़ने लगती है। 1990 के दशक में हुए अध्ययनों में यह आयु 28 वर्ष थी। कम उम्र में पीने वाले 47-50 प्रतिशत लड़के अपने जीवन की किसी-न-किसी अवस्था में मद्यपान के आदी हो जाते है। 21 वर्ष से कम आयु में मद्यसारिक

बनने वालो की संख्या 15 वर्ष में 2 प्रतिशत से बढ़कर 14 प्रतिशत हो गई है। केरल जैसे राज्य में मद्यपान प्रारम्भ करने की आयु दो दशकों में 19 वर्ष से घटकर 13 वर्ष हो गई है।

7.4 मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया

NOTES

व्यक्ति के मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया को निम्नलिखित चार सोपानों में विभाजित किया जा सकता है–

1. मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया के प्रथम सोपान में मद्यपान वास्तविकता से बचने का मनोवैज्ञानिक प्रयास माना जाता है। व्यक्ति सोचता है कि मदिरा सेवन से उसका मूड ठीक हो जाएगा, इस अवस्था में मदिरा सेवन सामाजिक न होकर अवरोधनों (Inhibitions) एवं समस्याओं से बचने का एक साधन बन जाता है, इसी अवस्था में धीरे-धीरे अधिक मदिरा सेवन की आदत विकसित होने लगती है।

2. मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया के दूसरे सोपान में मद्यपान की आवश्यकता अधिक प्रबल हो जाती है। जो व्यक्ति किसी समस्या के तनाव से बचने के लिए मद्यपान करते हैं, वे इस अवस्था में दिन को भी पीना शुरू कर देते हैं। जैसे-जैसे मद्यपान की सहनशीलता बढ़ने लगती है, वैसे-वैसे व्यक्ति मनोवैज्ञानिक तनाव के कारण ही मदिरा का सेवन नहीं करता अपितु वह मदिरा पर आश्रित भी हो जाता है। यद्यपि इस सोपान में 'नियन्त्रण का लोप' (Loss of control) नियमित रूप में नहीं होता, तथापि नातेदार, परिजन, पड़ोसी, मित्र तथा सहकर्मी इस बात का अहसास करने लगते हैं कि उसने पी रखी है तथा सम्भवत: इसीलिए उसका अपने शरीर पर पूरा नियन्त्रण नहीं है। मद्यसारिक मद्यपान के बारे में अधिक उत्सुक रहता है तथा यदि वह इसे छोड़ना भी चाहे तो उसके लिए ऐसा सम्भव नहीं हो पाता। दूसरे सोपान में मदिरापान के शारीरिक लक्षण भी दिखाई देने लगते हैं। इन लक्षणों मे धुँधला दिखना, अस्पष्ट बोली, आँखें लाल होना, चेहरा पीला होना, आँखों के नीचे काले घेरे होना, सिर में भारीपन, अनिद्रा आदि प्रमुख हैं। मद्यसारिक अपनी समस्याओं का कारण मद्यपान न मानकर इसका दोष दूसरों को देने लगता है।

3. मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया के तीसरे सोपान में मद्यसारिक का अपने शरीर पर 'नियन्त्रण का लोप' अधिक स्पष्ट एवं दिखाई देने वाला लक्षण बन जाता है। यह वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति एक बार पीना प्रारम्भ कर दे तो उसे लगता है कि उसे और पीना चाहिए। अन्य शब्दों में इस सोपान में मद्यसारिक का मद्यपान पर नियन्त्रण नहीं रहता। मद्यसारिक अधिक गम्भीर समस्याओं का शिकार हो जाता है जिससे उसके अन्य लोगों से सम्बन्ध तक बिगड़ने लगते हैं। वह आर्थिक एवं वैधानिक समस्याओं का शिकार भी हो सकता है, इस सोपान में मद्यसारिक अपने मित्रों एवं परिजनों से बचने का प्रयास करता है तथा उन क्रियाओं से दूर रहने का प्रयास करता है जो उसके लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण रही हैं, इस सोपान में मद्यसारिक खाने, पानी, अपने स्वास्थ्य, आवास तथा व्यक्तिगत अन्तर्क्रिया जैसी आवश्यकताओं की उपेक्षा करने लगता है। वह पेशेवर स्वास्थ्य सहायता लेने का भी आधा-अधूरा प्रयास करता है।

4. मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया के चौथे सोपान में मद्यसारिक का अपने शरीर पर 'नियन्त्रण का लोप' चिरकालिक बन जाता है। उसके लिए कार्यस्थल एवं अन्य परिस्थितियों में अपने को संयमित रख पाना कठिन हो जाता है, इस सोपान में उसके हाथ एवं सम्पूर्ण शरीर काँपने लगता है। यह कँपकँपी मद्यसारिक में स्नायविक गड़बड़ (Nervous disorder) की द्योतक है। यह वह सोपान है जिसमें मद्यपान से व्यक्ति की मृत्यु भी हो सकती है।

7.5 मद्य दुरुपयोग के कारण

छोटी सी आयु से ही मादक द्रव्यों के सेवन के कारणों का जिक्र किया जाना बहुत आवश्यक है, इसके लिए निम्नलिखित प्रमुख कारण उत्तरदायी हैं–

1. वैयक्तिक कारण–अधिकतर व्यक्ति व्यक्तिगत कारणों जैसे बुरी संगत में रहकर मनोरंजन के लिए, व्यावसायिक मनोरंजन के लिए, शारीरिक थकान को कम करने के लिए, असफल प्रेमी होने के कारण, कुरूप होने

के कारण अथवा नीरस तथा निराशाओं से घिरे होने के कारण ही मद्यपान शुरू करते हैं। एक बार व्यक्ति इन कारणों से शराबी हो जाए तो बाद में उसके लिए शराब छोड़ना बड़ा कठिन हो जाता है।

NOTES

2. पारिवारिक कारण–मद्यपान में पारिवारिक स्थिति भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि अगर यह पहले से ठीक नहीं है तो बच्चों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, अगर मातापिता दोनों अथवा एक मद्यपान करते हैं और अनैतिक कार्यों में लगे हुए हैं, तो बच्चे अनैतिकता से कैसे बच सकते हैं। पारिवारिक जीवन से दु:खी व्यक्ति अथवा सौतेले माता-पिता द्वारा सताए व्यक्तियों में मद्यपान की प्रवृत्ति अधिक देखने को मिली है। साथ ही, प्राय: यह देखा गया है कि जिन परिवारों में कई पीढ़ियों से मदिरा-सेवन होता है, उनमें बच्चे भी इसे पैतृकतावश अपना लेते हैं।

3. आर्थिक कारण– आर्थिक दृष्टि से असन्तुष्ट व्यक्तियों में शराब सेवन अधिक पाया जाता है। गरीब तथा निम्न वर्ग के व्यक्ति शराब सेवन करते है। व्यवसाय में निराशा, असुरक्षा अथवा इसके फेल हो जाने पर अथवा कठिन व्यवसाय में लगे हुए होने के कारण (जैसे सैनिक जीवन) मद्यपान की आदत पड़ सकती है। ट्रक ड्राइवरों में शराब सेवन अधिक देखा गया है।

4. सामाजिक एवं धार्मिक कारण–हमारी अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रथाएँ भी मद्यपान को प्रोत्साहन देती हैं। उदाहरणार्थ, अनेक सामाजिक व धार्मिक उत्सवों (जैसे दीवाली, दशहरा, होली इत्यादि) तथा अन्य अवसरों (जैसे लड़के का जन्म, विवाह इत्यादि) के समय अधिकतर शराब का सेवन होता है तथा इन समयों पर इसे बुरा भी नहीं माना जाता। जहाँ पर मद्यपान निराशाओं तथा विफलताओं के समय छुटकारा दिलाने में सहायता देता है, वहीं पर खुशी के समय मद्यपान एक मान्य सी बात हो गई है।

5. सामाजिक अपर्याप्तता–कई व्यक्ति समाज में सत्यता व कठिनाइयों का सामना करने में असमर्थ होते है और अपने आपको सामाजिक अपर्याप्तता (Social inadequacy) की स्थिति में पाते हैं, इस अनुभूति के कारण वे मद्यपान करने लगते है। डॉ. जेनेट के अनुसार मित्रों और प्रेमियों के बीच झगड़ा, पति-पत्नी के सम्बन्धों में विश्वास की समाप्ति, प्रेम में असफलता आदि अपर्याप्तता की स्थिति को विकसित करते हैं।

6. यौन सुख में उत्तेजना के लिए–कुछ लोग मद्यपान यौन सुख में उत्तेजना लाने के लिए करते हैं क्योंकि इससे यौन सम्बन्धी कामना अधिक जाग्रत होती है। वेश्यागामी पुरुषों एवं अधिक कामी पुरुषों में इसका अधिक सेवन किया जाता है। भारतवर्ष में राजाओं, नवाबों व जमींदारों का इतिहास अगर देखा जाए तो काम उत्तेजना हेतु मदिरा सेवन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। अब्राहम ने मद्यपान एवं यौन प्रवृत्ति में प्रत्यक्ष सम्बन्ध बताया है।

7. मनोवैज्ञानिक कारण–कुछ मनोवैज्ञानिक कारण भी मद्यपान को प्रोत्साहन देते है। उदाहरणार्थ, चिन्ता से मुक्ति की भावना मद्यपान को प्रोत्साहन देती है क्योंकि कुछ लोगों का विचार है कि मद्यपान द्वारा व्यक्ति अपनी निराशाओं, चिन्ताओं व गम को भूल जाता है। परन्तु आज यह एक भ्रामिक तथ्य माना जाता है क्योंकि मद्यपान से चिन्ता बढ़ सकती है। एल. पी. क्लार्क के अनुसार मस्तिष्क की विकृति का विकल्प शराबीपन है। आन्तरिक अपराधी भावना से बचाव अथवा असुरक्षा की भावना आदि के विचार भी मद्यपान को प्रोत्साहन देते हैं।

8. दूषित पर्यावरण– गन्दी (मलिन) बस्तियों जैसे दूषित पर्यावरण तथा स्वास्थ्यपूर्ण मनोरंजन के साधनों का अभाव भी कई बार मद्यपान को प्रोत्साहन देता है। अगर व्यक्ति के चारों तरफ का पर्यावरण दूषित है तो वह उसकी बुराइयों से ज्यादा देर तक बचा हुआ नहीं रह सकता है।

9. सुविधा से प्राप्य–शराब उन चीजों से बनती है जो आसानी से मिल जाती है, इसलिए यह हर जगह सरलता से मिल जाती है। यह भी इसके प्रसार का एक कारण है।

10. निहित स्वार्थों द्वारा प्रयास–मद्य के विक्रय में अनेक कानूनी और गैर-कानूनी संगठन लगे हुए हैं क्योंकि इसमें लाभ का हिस्सा ज्यादा है। उनके प्रयासों द्वारा भी मद्यपान का प्रसार होता है। जहाँ पहले इक्का-दुक्का शराब की दुकानें दिखाई देती थीं अब खुद राज्य ने जगह-बेजगह ठेकों पर शराब की दुकानें खुलवा दी हैं।

NOTES

बोध प्रश्न

1. मद्यसारिक बनाने की प्रक्रिया समझाइये।

....

....

....

....

2. मद्य दुरुपयोग के कारण बताइये।

....

....

....

....

7.6 मद्यपान की समस्याएँ

मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन का व्यक्ति, समाज तथा परिवार पर काफी गम्भीर प्रभाव पड़ता है, इससे वैयक्तिक, पारिवारिक व सामाजिक विघटन होता है और नाना प्रकार के अपराधों में वृद्धि हो जाती है। ममोरिया तथा अन्य विद्वानों ने मद्यपान (जोकि मादक द्रव्य व्यसन के लिए भी लागू होते हैं) के अनेक प्रभावों का वर्णन किया है जिनसे आर्थिक, सामाजिक जीवन प्रभावित होता है। ये हैं—

1. इससे अपराध, नियम अवहेलना तथा भ्रष्टाचार बढ़ता है,
2. इससे व्यक्तियों का स्वास्थ्य प्रभावित होता है,
3. इससे मानव मस्तिष्क प्रभावित होता है। जब तक मद्यपान अथवा मादक द्रव्य का प्रभाव रहता है मस्तिष्क ठीक तरह से काम नही करता,
4. शिक्षा का नुकसान होता है,
5. श्रमिक की क्षमता कम हो जाती है तथा इससे उत्पादन में नुकसान होता है,
6. यह पारिवारिक खुशी की समाप्ति का मूल कारण है,
7. वृद्धावस्था में इससे असहनीय स्थिति पैदा हो जाती है,
8. आश्रितों तथा अन्त में सम्पूर्ण समाज को क्षति होती है,
9. व्यसनी के शारीरिक क्षमता पर कुप्रभाव, विशेषत: यौन शक्ति का ह्रास होता है तथा
10. मादक द्रव्यों का छह महीनों तक निरन्तर उपयोग व्यक्ति के मिजाज को चिड़चिड़ा बना देता है तथा वह शारीरिक रूप से जटिल कार्य करने के लिए सक्षम नहीं रहता।

इस भाँति, मादक द्रव्यों का सेवन अर्थव्यवस्था, कानून व्यवस्था, समाज एवं व्यक्ति के लिए इतना घातक है कि आज यह विश्व के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती बन गया है।

मद्यपान अनेक प्रकार की अन्य समस्याओं को भी जन्म देता है, जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं—

1. मद्यपान तथा वैयक्तिक विघटन–इलियट तथा मैरिल का कहना है कि मद्यपान वैयक्तिक विघटन का सूचक भी है तथा कारण भी। सूचक इसलिए है कि मद्यपान से पहले उसने वैयक्तिक निराशाओं का सामना किया है। अगर मद्यपान न हो, तो हो सकता है वैयक्तिक निराशाएँ तथा असुरक्षा कोई दूसरा रूप धारण कर लें। मादक द्रव्य व्यसन वास्तविकता भुलाने का दूसरा तरीका हो सकता है। मद्यपान से व्यक्ति अपने पैसे का दुरुपयोग

करता है, पत्नी व बच्चों का ख्याल नहीं रखता, पत्नी को पीटता है तथा अन्य स्त्रियों के साथ अनैतिक सम्बन्ध रखता है। ये सब वैयक्तिक विघटन के ही चिह्न हैं। मद्यपान करने वाला व्यक्ति प्राथमिक समूहों के प्रभाव से दूर होता चला जाता है। निवास स्थान तथा व्यवसाय में गतिशीलता, स्कूल अथवा कॉलेज शिक्षा को पूरा न करना, मनोरंजन के अन्य साधनों पर कम आश्रित होना, विवाह न करना अथवा पृथक्करण या तलाक होना इस बात की निशानी है कि मद्यपान करने वाले व्यक्ति पर प्राथमिक समूहों का प्रभाव बहुत कम होता है। शराब क्योंकि व्यक्तिगत परेशानियों को दूर करने का स्थायी साधन नहीं है, इसलिए शराब पीने से कुछ निकलने के बजाय उसका अपना विघटन शुरू हो जाता है। उसका अपना चरित्र तथा नैतिक पहलू कमजोर हो जाता है तथा अन्त में वह मानसिक रोगी बन जाता है।

2. मद्यपान तथा पारिवारिक विघटन–मद्यपान पारिवारिक विघटन का भी एक प्रमुख कारण है। पारिवारिक व्यक्ति के लिए शराब पीना कभी अच्छा नहीं हो सकता क्योंकि इससे पत्नी व बच्चों के प्रति त्याग कम हो जाता है। शराबी अपना समय, पैसा तथा शक्ति शराब में ही नष्ट कर देता है तथा परिवार के लिए उसके पास कुछ बचता ही नहीं। पहले तो अधिक मद्यपान करने वाला व्यक्ति विवाह ही नहीं करता (क्योंकि बोतल पत्नी का ही स्थानापन्न या विकल्प है) और अगर करता भी है तो मद्यपान से पति तथा पत्नी के सामाजिक कार्य बिगड़ने लगते हैं। दोनों के सम्बन्धों में तनाव बना रहता है। पत्नी से छुटकारे का एक ही तरीका रहता है तलाक क्योंकि बच्चों की देख-रेख भी बिलकुल नहीं हो पाती, इस प्रकार, मद्यपान केवल वैयक्तिक विघटन तक ही सीमित नहीं है अपितु परिवार भी इससे बुरी तरह से प्रभावित होता है।

3. मद्यपान तथा आर्थिक विघटन– यद्यपि कुछ व्यक्ति पैसा अधिक होने के कारण मद्यपान करते हैं, परन्तु अधिकतर शराबी अपने आर्थिक जीवन से असन्तुष्ट होने के कारण शराब का सेवन करने लगते हैं। जो थोड़ा बहुत पैसा वे कमाते हैं वह शराब में नष्ट हो जाता है और परिवार की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पाती। शराबी घर का सामान, गहने इत्यादि गिरवी रखकर भी शराब पीने से नहीं चूकते, इस प्रकार, मद्यपान परिवार के आर्थिक जीवन को बिलकुल खोखला कर देता है।

4. मद्यपान तथा सामाजिक विघटन–मद्यपान व्यक्ति के बाद परिवार और फिर परिवार के बाद सामाजिक विघटन करता है क्योंकि मद्यपान करने वाला व्यक्ति अपनी सामाजिक भूमिकाओं का निर्वाह ठीक प्रकार से नहीं कर सकता है, इससे अनेक अन्य बुराइयों (यथा अपराध, जुआ, वेश्यावृत्ति आदि) को भी प्रोत्साहन मिलता है जो सामाजिक विघटन की प्रक्रिया को और तेज कर देती हैं।

5. मद्यपान, अनैतिकता तथा अपराध–शराबी व्यक्तियों का नैतिक पहलू काफी कमजोर हो जाता है और उनका मानसिक सन्तुलन भी ठीक नहीं रहता है। बस उसे दो ही बातों की आवश्यकता रहती है पैसा तथा शराब। पैसा अगर नहीं होगा तो शराबी का ध्यान गलत कार्यों की तरफ आकर्षित होता है और वह आत्महत्या, डकैती, बलात्कार इत्यादि अपराधों को करने लगता है। एक बार अपराधी जीवन में फँस जाने के बाद वह उससे कभी निकल नहीं सकता, इस प्रकार, जहाँ पर मद्यपान अनैतिकता को प्रोत्साहन देता है वहीं पर इससे अपराधी प्रवृत्तियों को भी बढ़ावा मिलता है।

6. मद्यपान तथा शारीरिक पतन– मद्यपान से शरीर और मस्तिष्क में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अत्यधिक मद्यपान से शरीर कमजोर हो जाता है। इलियट तथा मैरिल के अनुसार, "मदिरा एक नियन्त्रक के रूप में कार्य करती है जिसके फलस्वरूप यह उसकी प्रतिक्रियाओं की गति को धीमा करती है, निर्णय की योग्यता को कम करती है और सीखे हुए व्यवहार पर उसका नियन्त्रण कम होने लगता है।"

टेकचन्द अध्ययन दल ने उचित ही टिप्पणी की है कि मदिरा-सेवन, वास्तव में, समस्याओं को जन्म देने वाला है जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं– पारिवारिक समस्याएँ, धार्मिक समस्याएँ, उपचारात्मक समस्याएँ, औद्योगिक समस्याएँ, आर्थिक समस्याएँ, भ्रष्टाचार की समस्याएँ, कानून को लागू करने की समस्याएँ तथा यातायात की समस्याएँ। वास्तव में, संयत मद्यपान भी दो रूपों में समस्यामूलक है– एक, यह आदमी में आदत निर्माण करने की प्रवृत्ति रखता है जो धीरे-धीरे सन्तुष्ट न हो सकने वाली भूख बन जाती है, और दूसरे, संयत पीने वाला एक झूठी सुरक्षा की भावना महसूस करता है। वह इस भ्रामक आत्मविश्वास में रहता है कि उसकी क्षमताओं पर इसका कोई असर नहीं हो रहा। अधिकतर दुर्घटनाएँ उन व्यक्तियों द्वारा की जाती है जो मदिरा के प्रभाव में तो होते हैं पर जिन्हें नशे की हालत में नहीं कहा जा सकता।

NOTES

7.7 मद्यसारिकों का उपचार एवं नियन्त्रण

मद्यपान के दुष्परिणामों को ध्यान में रखते हुए समाज सुधारक शताब्दियों से इसके निषेध का प्रयत्न करते आ रहे हैं तथा इसके लिए अनेक प्रकार के धार्मिक एवं राजकीय निषेध लगाए जा रहे हैं। नशानिषेध या मद्यनिषेध का अर्थ ऐसी नीति या कानून है जिसके अन्तर्गत नशे के लिए मदिरा के सेवन पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है तथा केवल औषधि के रूप में उसके अत्यन्त सीमित सेवन की अनुमति दी जाती है। भारतीय संविधान के राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्तों (Directive Principles of State Policy) के अन्तर्गत राज्य को मद्यनिषेध की नीति अपनाने का निर्देश दिया गया है। अगर हम भारत में मादक पदार्थों के सेवन के इतिहास को देखें, तो यद्यपि उनका उल्लेख आदिकाल से मिलता है, फिर भी इन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। अंग्रेजों ने आबकारी कर लगाकर मद्य को आय का एक साधन बनाया और इसका प्रचार होने लगा।

मद्यनिषेध का सर्वप्रथम प्रयास गांधी जी के द्वारा स्वतन्त्रता संग्राम के समय ही 1920 से किया गया था तथा 1921 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने नशाबन्दी के लिए प्रस्ताव पारित किया, 1930 में असहयोग आन्दोलन में मद्यनिषेध भी कार्यक्रम का एक हिस्सा था तथा 1937 से 1939 में पाँच प्रदेशों में कांग्रेस सरकारों द्वारा मद्यनिषेध के लिए अधिनियम पारित किए गए। महात्मा गांधी जी का कहना था कि मद्यपान जलते हुए अग्नि कांड या तूफानी नदी की ओर लपकने से भी अधिक खतरनाक है क्योंकि शराब शरीर और आत्मा दोनों का नाश कर देती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद संविधान के 47वें अनुच्छेद के अन्तर्गत स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले मादक द्रव्यों के निषेध को लागू करने की बात कही गई है। सन् 1954 में राज्यों में इस दिशा में हुई प्रगति की समीक्षा के लिए श्रीमन्नारायण की अध्यक्षता में Prohibition Enquiry Committee की स्थापना की गई जिसने 1945 में अपनी रिपोर्ट दी, इस कमेटी ने नशाबन्दी को ज्यादा प्रभावशाली और मजबूती से लागू करने के लिए कई सुझाव दिए, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं–

1. 1 अप्रैल 1958 तक पूरे भारत में मद्यनिषेध कानून बन जाना चाहिए।
2. 1958 के अन्त तक प्रत्येक राज्य सरकार की इस नीति का समर्थन तथा कार्यान्वित करने की योजना बना लेनी चाहिए।
3. होटल, बार, मैस, क्लब, सिनेमा, पार्टी में तथा अन्य सामाजिक व धार्मिक उत्सवों पर पूर्ण नशाबन्दी होनी चाहिए।
4. सरकारी कर्मचारियों के लिए नशाबन्दी नियम बना देना चाहिए।
5. इसमें मद्यनिषेध के लिए अनेक सुझाव दिए गए जैसे कि शराब की दुकानों की संख्या में कमी की जानी चाहिए, सप्ताह में कुछ दिन शराब की दुकानें बन्द होनी चाहिए, कम शराब बेचने के लिए दी जानी चाहिए तथा दुकानें रिहायशी क्षेत्रों से दूर होनी चाहिए।
6. अफीम की सप्लाई सरकार द्वारा 1959 तक बन्द कर दी जानी चाहिए।
7. अन्य मादक द्रव्य बेचने वाली दुकानों में कमी की जानी चाहिए।
8. जनजातियों में शिक्षा द्वारा नशाबन्दी लागू की जानी चाहिए।
9. विदेशी राजदूतों में सार्वजनिक स्वागत समारोहों के समय शराब के प्रयोग को बन्द किया जाना चाहिए, तथा
10. कानून तथा प्रशासन द्वारा नशाबन्दी लागू की जानी चाहिए।

योजना आयोग ने राज्य सरकारों को मद्यनिषेध से सम्बन्धित अधिनियम बनाने की सिफारिश की तथा 1963 में मुख्यमन्त्री सम्मेलन में इसे पूरी तरह व दृढ़ता से लागू करने का निश्चय किया गया। तत्पश्चात् आन्ध्र प्रदेश के अधिकतर जिलों, चेन्नई, गुजरात तथा महाराष्ट्र में पूर्ण नशाबन्दी लागू की गई है। अन्य प्रदेशों जैसे उड़ीसा, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में आंशिक नशाबन्दी लागू की गई।

योजना आयोग ने 29 अप्रैल, 1963 को पंजाब हाईकोर्ट के न्यायाधीश श्री टेकचन्द की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल की नियुक्ति की जिसमें श्री एल. एम. श्रीकान्त तथा डॉ. ए. एम. खुसरो सदस्य थे, इस अध्ययन

दल का कार्य अवैध रूप से शराब बनाने की सीमा का पता लगाना, वर्तमान मद्यनिषेध सम्बन्धी कानूनों की समीक्षा करना, मद्यनिषेध के आर्थिक पक्षों का अध्ययन करना, मद्यनिषेध की सरकारी नीति की सफलता का आकलन करना तथा ऐसे सुझाव देना था कि जिससे यह कार्यक्रम सफल हो सके, इस अध्ययन दल की रिपोर्ट 6 मई, 1964 में प्रकाशित हुई। दल ने 30 जनवरी, 1970 तक अथवा अधिक-से-अधिक 1975 तक समस्त देश में मद्यनिषेध लागू करने की सिफारिश की, इसके लिए चार चरणों का कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया। पहले चरण में जिन राज्यों में मद्यनिषेध नहीं है वहाँ सबसे कम असर वाली शराब की खपत की अनुमति दी जाए। दूसरे चरण में देशी शराब की मदिरा-शक्ति घटाकर 10 प्रतिशत कर दी जाए। अंग्रेजी शराब में यह प्रतिशत 14.29 से अधिक न रहने दिया जाए, इसी प्रकार, उत्तरोत्तर चरणों में शराब की खपत को धीरे-धीरे कम करके 1975 तक सम्पूर्ण देश में मद्यनिषेध लागू कर दिया जाए।

टेकचन्द की अध्यक्षता वाले अध्ययन दल ने अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित सुझाव भी प्रस्तुत किए—

1. मद्यपान की जाँच हेतु नवीन उपकरणों का प्रयोग किया जाए।
2. उच्च आर्थिक स्थिति के लोगों में मद्यपान को प्रतिष्ठा का प्रतीक मानने वाली मनोवृत्ति दूर की जाए।
3. स्प्रिट आदि पीने के दुरुपयोग पर रोक लगाई जाए।
4. ताड़ी पर नियन्त्रण हेतु प्रचार किया जाए।

टेकचन्द की अध्यक्षता वाले अध्ययन दल पर राज्य सरकारों की भी राय माँगी गई थी। अधिकतर राज्यों ने यह मत प्रकट किया कि मद्यनिषेध के मामले में जल्दबाजी नहीं की जानी चाहिए तथा मद्यनिषेध के प्रत्येक पक्ष पर अधिक सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है, इस प्रकार, अधिकतर राज्यों ने 1975 तक सम्पूर्ण मद्यनिषेध की नीति को स्वीकार नहीं किया।

1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता दल की सरकार ने पहली बार पूरे देश में मद्यनिषेध की नीति लागू की तथा इसके लिए राज्यों हेतु कुछ मार्गदर्शक सिद्धान्त भी बनाए गए। जनता दल की सरकार गिर जाने के पश्चात् 1980 में कांग्रेस सरकार के गठन के पश्चात् यह निर्णय लिया गया कि मद्यनिषेध लागू करने के स्थान पर प्रचार के साधनों के द्वारा मद्यपान और मादक द्रव्यों के विरुद्ध जनमत तैयार करना अधिक लाभप्रद है, इसके परिणामस्वरूप पूर्ण मद्यनिषेध की नीति पुन: असफल हो गई। यह भी निर्णय लिया गया कि जो राज्य अपनी इच्छा से मद्यनिषेध लागू करना चाहें, उन्हें आबकारी कर से होने वाली आय का 50 प्रतिशत हिस्सा केन्द्र सरकार द्वारा अनुदान के रूप में दिया जाएगा। यह आबकारी कर राज्यों की आय का प्रमुख स्रोत है जिसके कारण राज्य पूर्ण मद्यनिषेध की नीति लागू करने में संकोच करते हैं, इसका परिणाम यह है कि सभी सरकारी प्रयत्नों के बावजूद मद्यनिषेध पूरी तरह से लागू करना अभी भी सम्भव नहीं हो सका है।

जहाँ तक मादक द्रव्यों के विरुद्ध नीति का प्रश्न है इसके लिए युद्ध स्तर पर कार्य करना होगा। भारतीय सरकार ने समस्या की गम्भीरता को समझा है और नवम्बर 1985 में नया कानून पारित करके महत्वपूर्ण कदम उठाया है। मादक द्रव्य नियन्त्रण ब्यूरो को शीर्षक एजेन्सी के रूप में स्थापित किया गया है जिसके अन्तर्गत पुलिस, कस्टम एवं वित्त के सम्बन्धित विभाग कार्य करेंगे। मादक द्रव्यों को पकड़ कर ऊँचे पारितोषिक भी घोषित किए गए हैं जो इनके व्यापार में पहली बार पकड़ा जाएगा, उसे दस से बीस वर्ष की सजा और दो लाख रुपये तक जुर्माना दण्ड के रूप में दिया जा सकता है। दूसरी बार ऐसे अपराध में लिप्त पाए जाने पर पन्द्रह से तीस वर्ष तक की सजा का प्रावधान है। रेडियो, टेलीविज़न तथा चलचित्र आदि माध्यमों पर मादक द्रव्यों के सेवन से होने वाली बुराइयों को भी प्रदर्शित किया जा रहा है ताकि लोग इस बुराई की ओर आकर्षित न हों।

मादक द्रव्य सेवन जिस आयु समूह में फैल रहा है उसकी दृष्टि से निरोधात्मक उपायों पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए जैसे माता-पिता या शिक्षकों को इस दिशा में अधिक जानकारी प्रदान की जानी चाहिए ताकि वे सचेत रहें और प्रत्येक बालक पर निगाह रख सकें। बच्चों को भी उचित ढंग से इस सम्बन्ध में ज्ञान दिया जाना चाहिए। शिक्षकों की इस मादक द्रव्य के उपयोग की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है और यह उनका नैतिक एवं सामाजिक दायित्व भी है, परन्तु निरोधात्मक कार्यक्रम के सम्बन्ध में हरबर्ट शैफर ने बहुत ही उचित लिखा है कि, "किसी भी निरोधात्मक प्रोग्राम के साथ लगी समस्याओं में से एक यह है कि लोग आमतौर से यह विश्वास नहीं करते कि अभिशाप उन्हें घेर लेगा। माता-पिता सदैव यह महसूस करते हैं कि मादक द्रव्य

व्यसन उनके बच्चे को नहीं लगेगा और यदि ऐसा हो जाता है तो वे यह नहीं समझ पाते कि ऐसा कैसे हो गया।.........निरोध का आशय है भविष्य और आशा के साथ काम किए जाना।" यह सच है कि निरोधात्मक कार्यक्रमों की उपलब्धियों को मापा जाना कठिन है, परन्तु इस पुरानी कहावत पर विश्वास रख कर इस दिशा में भरसक प्रयास करते रहना चाहिए कि उपचार से निरोध बेहतर है।

NOTES

वर्तमान में भारत सरकार का कल्याण मन्त्रालय मद्यनिषेध की नीति को प्रभावशाली बनाने हेतु मादक द्रव्यों के दुष्परिणामों के बारे में जागरुकता विकसित करने तथा जो लोग इस व्यसन के शिकार हो चुके हैं, उनका व्यसन छुड़ाने तथा उनकी देखभाल करने हेतु विशेष केन्द्रों की स्थापना करने के विशेष कार्यक्रम चला रहा है, इसके लिए गैर-सरकारी संगठनों को आर्थिक सहायता भी दी जा रही है। अत: स्पष्ट है कि मद्यपान के दुष्परिणामों को देखते हुए हमारी सरकार ने मद्यनिषेध के लिए अनेक उपाय किए हैं। यद्यपि पूर्ण मद्यनिषेध (Total prohibition) व्यावहारिक नहीं हो सकता, फिर भी इसे काफी सीमित किया जा सकता है। सार्वजनिक स्थानों पर बैठकर शराब पीना, शराब पीकर काम पर आना तथा शराब पीकर सफर करना इत्यादि कार्यों को गैर-कानूनी बनाकर मद्यपान काफी हद तक सीमित किया जा सकता है। मनोरंजन के अन्य साधनों जैसे सिनेमा, क्लबों इत्यादि का उचित विकास भी मद्यपान निषेध में सहायक रहा है। कार्यक्रम की सफलता के लिए ऐसे व्यक्तियों के उपचार की भी बृहत् व्यवस्था की जानी चाहिए। यद्यपि इस रोग का इलाज बहुत महँगा है परन्तु मानव जीवन से बढ़कर कोई कीमती नहीं है।

7.8 शब्दावली

मद्यपान – मदिरा सेवन की असामान्य तथा बुरी आदत को मद्यपान कहते हैं। यह वह स्थिति है जो मनुष्य की आत्मा, मन और शरीर को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करके पतन की ओर ले जाती है।

मादक द्रव्य व्यसन – मादक द्रव्य व्यसन देशी अथवा रासायनिक पदार्थों से बने मादक द्रव्यों का आदतन सेवन है जो व्यक्ति के जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।

7.9 सारांश

इस इकाई में हमने मद्यपान की अवधारणा, परिभाषा, प्रक्रिया, कारण एवं समस्याओं के महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा की है, इसमें हमने मद्यपान के विविध पहलुओं को समझाया है। संसार के लाखों स्त्री-पुरुष आज एक ऐसी स्थिति में पहुँच गये हैं। यहाँ मद्यपान उनकी मूल आवश्यकता बन गयी है। इनके उपचार एवं नियंत्रण के द्वारा दूर करने का प्रयास भी किया है।

7.10 अभ्यास प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. मद्यपान किसे कहते हैं? भारत में मद्यपान के विस्तार को समझाइए।
2. मद्यपान को परिभाषित कीजिए तथा इसके प्रमुख कारण बताइए।
3. मद्यपान से आप क्या समझते है? मद्यपान के दुष्परिणामों एवं समस्याओं की विवेचना कीजिए।
4. भारत में मद्यनिषेध हेतु सुझाव दीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. मद्यसारिक किसे कहते है? मद्यसारिकों का उपचार एवं नियन्त्रण हेतु सुझाव दीजिए।
2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

   (अ) मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया

   (ब) मद्यपान के दुष्परिणाम

(स) मद्यपान तथा वैयक्तिक विघटन

(द) मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन में अन्तर।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

NOTES

1. मद्य दुरुपयोग के कितने कारण हैं—

(अ) दस (ब) ग्यारह (स) बारह (द) तेरह

उत्तर 1. (अ)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Mamoria, C. B., **Social Problems and Social Disorganization in India,** Allahabad : Kitab Mahal, 1960.

Paul Martin, "Working with Hope" in **The Lion in India,** April 1986.

Nardini, Quoted by Pamela Weinberger, "A Billion Doller Binge" in **The Lion in India,** March 1987.

Herbert Schafer, Quoted by Pamela Weinberger, "A Billion Doller Binge" in **The Lion in India,** March 1987.

●●●

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

अध्याय-8 एड्स (AIDS)

इकाई की रूपरेखा

NOTES

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 एड्स की अवधारणा
8.3 एड्स का परिमाण
8.4 एड्स की महामारी का उद्भव
8.5 एड्स के विकास के सोपान
8.6 एड्स के परिणाम
8.7 एड्स से ग्रसित की देखरेख
8.8 एड्स नियन्त्रण में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका
8.9 सुरक्षात्मक कार्यक्रम
8.10 शब्दावली
8.11 सारांश
8.12 अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 उद्देश्य

किसी भी देश का विकास वहाँ के नागरिकों के जनस्वास्थ्य पर निर्भर करता है, इसी सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि स्वस्थ नागरिक ही एक स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण करते हैं। वस्तुत: स्वास्थ्य मानव का मौलिक अधिकार है। यही कारण है कि जनस्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य शिक्षा को सभी देश अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय मानते हैं। इन सबके बावजूद आज सम्पूर्ण विश्व में अनेक संक्रामक रोग जनस्वास्थ्य को चुनौती दे रहे हैं। संक्रामक रोग उन्हें कहा जाता है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से फैलते है। इनमें एच.आई.वी./ एड्स, हेपेटाइटिस, हेपेटाइटिस बी, टाइफॉइड, मलेरिया, चेचक, मीजल, हूपिंग कफ, क्षय रोग, वायरल, रेबीज इत्यादि प्रमुख हैं। भारत भी इन रोगों की चुनौतियों से अछूता नहीं है। एच.आई.वी./ एड्स नए जमाने की नई महामारी है, इसे हम आग की तरह फैल रही महामारी कह सकते हैं।

एड्स एक नया रोग है। यह रोग एच.आई.वी. विषाणु से होता है। एड्स बहुत से रोगों का समूह है जिससे शरीर की 'रोग-प्रतिरोधक' क्षमता कम होती है। यह जानलेवा रोग है जिससे बचाव अत्यन्त आवश्यक है। सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठन एच.आई.वी./ एड्स से संक्रमित व्यक्ति को अनेक प्रकार से केयर एण्ड सपोर्ट उपलब्ध करा रहे हैं। उन्हें नि:शुल्क इलाज की सुविधा भी उपलब्ध है। एच.आई.वी./ एड्स से संक्रमित व्यक्ति को सामान्य जीवन जीने का अधिकार है। एच.आई.वी./एड्स से अनेक भ्रान्तियाँ जुड़ी हुई हैं जिनका निवारण किया जाना आवश्यक है, इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों में एच.आई.वी./एड्स से सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध कराना है।

8.1 प्रस्तावना

एच.आई.वी./ एड्स जैसे संक्रमक रोग वैसे तो किसी भी आयु समूह में हो सकते हैं, तथापि किशोरावस्था को अतिसंवेदनशील अवस्था माना जाता है क्योंकि इसमें यौन सम्बन्ध स्थापित करने की प्रबल इच्छा होती है।

यदि बिना किसी निरोधक के यौन सम्बन्ध स्थापित किए जाते हैं तो एच.आई.वी./ एड्स एवं अन्य यौन संचरित रोग होने की आशंका अधिक होती है, इस अवस्था में किशोर को 'सुरक्षित यौन सम्बन्ध' का ज्ञान नहीं होता है। आयु का दबाव उन्हें इन संक्रामक रोगों हेतु अतिसंवेदनशील समूह बना देता है। यही कारण है कि एच.आई.वी./ एड्स एवं अन्य यौन संचरित रोगों हेतु किशोरों को ही 'टारगेट समूह' अधिक बनाया जाता है, इस सन्दर्भ में यह तथ्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि विश्व में एच.आई.वी./ एड्स से पीड़ित लोगों में आधों की आयु केवल 10 से 24 वर्ष है।

8.2 एड्स की अवधारणा

एड्स की अवधारणा को समझने के लिए एच.आई.वी. तथा यौन संक्रमित रोगों का ज्ञान होना अनिवार्य है। एच.आई.वी. (HIV) एक वायरस (विषाणु) है जिसका पूरा नाम 'Human Immunodeficiency Virus' अर्थात् 'मानव प्रतिरक्षा-न्यूनता विषाणु' है। यह वायरस व्यक्तियों में रोग से बचने वाली ताकत को कम कर देता है। एच.आई.वी. का शाब्दिक अर्थ निम्न प्रकार है–

एच (H) – ह्यूमन (Human)

आई (I) – इम्युनोडिफिसियंसी (Immunodeficiency)

वी (V) – वायरस (Virus)

ह्यूमन से अभिप्राय 'मानव' को प्रभावित करने वाला, इम्युनोडिफिसियंसी का अर्थ 'प्रतिरोधक शक्ति का क्षीण हो जाना' तथा वायरस का अर्थ 'विषाणु' अर्थात् रोग पैदा करने वाला परजीवी है। एच.आई.वी. मौजूद या एच.आई.वी. पॉजिटिव या एच.आई.वी. संक्रमित वे लोग हैं जिनमें एच.आई.वी. विषाणु पाया जाता है। एच.आई.वी. ऐसा वायरस या विषाणु है जो मानव शरीर में पहुँचकर प्रतिरक्षा तन्त्र की प्रमुख कोशिकाओं, जिन्हें ऊ-लिम्फोसाइट्स कहा जाता है, को नष्ट कर देता है, इससे शरीर की रोगजनक विषाणुओं से प्रतिरक्षण की क्षमता कम हो जाती है या नष्ट हो जाती है। प्रतिरक्षण क्षमता को नष्ट करने के कारण ही इस विषाणु को एच.आई.वी. (HIV) नाम दिया गया है, इस विषाणु की खोज 1979 ई. में संयुक्त राज्य अमेरिका में हुई, जब कुल 11 रोगियों में इस विषाणु के लक्षण दिखाई पड़े। लेकिन इस विषाणु को कोई नाम नहीं दिया जा सका। बाद में पेरिस (फ्रांस) के पाश्चर संस्थान के वैज्ञानिक एड्स के रोगी से विषाणु को अलग करने में सफल हो गए। उन्होंने इसे एल.ए.वी. (लिम्फो एडोनोपेथी एसोसिएटेड वायरस) नाम दिया, इसी समय अमेरिकी संस्था एन.सी.आई. के डॉ. रॉबर्ट सी गेलो ने इस विषाणु की खोज कर डाली और इसे एच.टी.एल.वी-I और II अर्थात् ह्यूमन टी-सेल, ल्यूकेमिया लिम्फोमा वायरस नाम दिया। सन् 1981 में अमेरिकी राष्ट्रपति रीगन और फ्रांस के राष्ट्रपति जेक शिराक ने इस वायरस को एच.आई.वी नाम दिया और इसे एड्स रोग का स्रोत माना गया।

एच.आई.वी. गोल आवरणयुक्त विषाणु है, इसका व्यास 90-120 मिमी होता है। यह एकरज्जुकी आर.एन.ए. (ssRNA अथवा Single stranded RNA) के आनुवंशिक पदार्थयुक्त रेट्रोवाइरस (Retrovirus) है, इसका न्यूक्लिओकैप्सिड (nucleocapsid) आइकोसाहेड्रल (Icosahedral) प्रकार का होता है। ssRNA दो समान टुकड़ों से बनता है तथा इस पर मूवर्स ट्रांसक्रिप्टेस विकर मिलता है। कैप्सिड का बाह्य आवरण कोशिका कला के समान द्विस्तरीय लिपिड से बना होता है तथा इसकी बाहरी सतह पर ग्लाइकोप्रोटीन के वृन्तयुक्त घुंडियों के रूप में अणु मिलते हैं। एड्स एक रतिजनित भयानक रोग है। एड्स अंग्रेजी का शब्द AIDS है, जिसका अंग्रेजी में पूरा नाम Acquired Immuno-deficiency Syndrome या 'उपार्जित प्रतिरक्षा-न्यूनता सिन्ड्रोम' है। AIDS को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

अक्षर	शब्द	शब्दार्थभाग
ए (A)	एक्वायर्ड (Acquired)	प्राप्त किया हुआ दूसरे शरीर से प्राप्त किया गया
आई (I)	इम्युनो (Immuno)	प्रतिरोधक तन्त्ररोगों से शरीर की रक्षा करने वाले रोग-प्रतिरोधक तन्त्र
डी (D)	डिफिसियंसी (Deficiency)	अभाव, कमी रोग-प्रतिरोधक तन्त्र का नष्ट होना

NOTES

एस (S) सिन्ड्रोम (Syndrome) लक्षणों का समूह (संलक्षण)अनेक रोगों के लक्षणों का शरीर में होना एड्स रोग एच.आई.वी. वायरस (विषाणु) से होता है। जैसे ही किसी व्यक्ति के शरीर में एच.आई.वी. प्रवेश पाता है, वह शरीर को संक्रमित करना प्रारम्भ कर देता है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि एच.आई.वी. एक वायरस है और एड्स उसका परिणाम या नतीजा है। एच.आई.वी. रोगों से लड़ने वाली शरीर की सफेद रक्त कोशिकाओं को नष्ट कर देता है, इस प्रकार एड्स उस स्थिति को कहते हैं जिसमें रोगों से लड़ने की क्षमता (रोग-प्रतिरोधक क्षमता) कम या खत्म हो जाती है तथा संक्रमित व्यक्ति को कई तरह की बीमारियाँ घेर लेती है और जानलेवा बन जाती हैं, इस तरह के भयानक रोगों के समूह में तपेदिक, टाइफॉइड तथा कुछ तरह के कैन्सर प्रमुख हैं, इसका अभिप्राय यह हुआ कि एड्स अपने में कोई रोग नहीं है अपितु यह रोगों से न बच पाने और न लड़ पाने की स्थिति है।

8.2.1 एच.आई.वी. और एड्स में अन्तर

एच.आई.वी. और एड्स दोनों एक ही नहीं हैं, वरन् दोनों में भारी अन्तर है, इस अन्तर को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. एच.आई.वी. एक विषाणु है, जबकि एड्स एक भयानक रोग है।
2. एच.आई.वी. का संक्रमण शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को नष्ट करने वाला विषाणु है। एच.आई.वी. संक्रमण कुछ ऐसा है जैसे किसी नगर की सुरक्षा करने वाले पुलिसकर्मी धीरे-धीरे कमजोर पड़ते जाएँ और खत्म होते जाएँ तथा पुलिस थाने में चोर अपना अस्त्र बना लें, इसके विपरीत, एड्स एच.आई.वी. का प्रतिफल है अर्थात् यह रोगों का एक ऐसा समूह है जिनमें तपेदिक, विभिन्न प्रकार के कैन्सर प्रमुख हैं।
3. एच.आई.वी. मानव शरीर में पाए जाने वाले टी-सैल्स (जो कि शरीर के सुरक्षा तन्त्र का महत्वपूर्ण भाग होते है) को अपना निशाना बनाता है तथा उन्हें खत्म करता जाता है। जब शरीर में बहुत कम टी-सैल्स रह जाते हैं तब उसे एड्स का केस मानते हैं।
4. एच.आई.वी. का संक्रमण ही व्यक्ति को एड्स का रोगी बनाता है। एड्स रोग की उत्पत्ति स्वत: नहीं होती है। यदि एच.आई.वी. के संक्रमण की रोकथाम कर ली जाए तो एड्स रोग से सुरक्षित रहा जा सकता है।
5. एच.आई.वी. का विषाणु तुरन्त एड्स नहीं फैलाता है। यह 7-8 वर्ष तक मानव शरीर में रह सकता है लेकिन एड्स की स्थिति पैदा नहीं करता, इसलिए कई बार एच.आई.वी. पॉजिटिव होते हुए भी व्यक्ति सेहतमन्द महसूस करता है तथा ऐसा दिखाई भी देता है। केवल रक्त की जाँच से ही पता चल सकता है कि किसी व्यक्ति को एच.आई.वी. है अथवा नहीं। 7-8 वर्ष बाद एड्स की दशा आती है जब धीरे-धीरे संक्रमित व्यक्ति में रोगों से लड़ने की क्षमता बिल्कुल समाप्त हो जाती है।

उपर्युक्त अन्तर यह स्पष्ट करते है कि एच.आई.वी. पॉजिटिव लोग एड्स की दशा वालों से अधिक खतरनाक है क्योंकि वे दिखते तो स्वस्थ हैं परन्तु उनमें एच.आई.वी. होता है और वे जाने अनजाने में इस विषाणु को असुरक्षित सैक्स या अन्य किसी माध्यम से फैला सकते है।

बोध प्रश्न

1. एड्स की अवधारणा समझाइये।

....

....

....

2. एच.आई.वी. और एड्स में अन्तर बताइये।

....

....

8.2.2 एड्स एवं यौन संक्रमित रोग

NOTES

जो रोग यौन सम्पर्क द्वारा फैलते हैं, उन्हें यौन संक्रमित रोग कहा जाता है। यौन सम्पर्क या सम्बन्ध कई प्रकार के होते हैं। लड़के-लड़की या महिला और पुरुष के बीच पाए जाने वाले यौन सम्बन्धों को विषमलैंगिकता कहते हैं। दो लड़कों/पुरुषों या दो लड़कियों/महिलाओं के बीच पाए जाने वाले यौन सम्बन्धों को समलैंगिकता कहते हैं। कुछ लोग द्विलैंगिक होते हैं अर्थात् वे पुरुषों और महिलाओं दोनों के साथ यौन सम्बन्ध रखते हैं। इन सभी प्रकार के यौन सम्बन्धों से फैलने वाले रोग यौन संक्रमित रोग कहलाते हैं। महिलाओं को बड़ी संख्या में यौन संक्रमित रोग होते हैं और उन्हें अधिकांशतया इसका पता ही नहीं होता। बहुत सी महिलाएँ पता होते हुए एवं चाहते हुए भी लोक-लज्जा के कारण अपना इलाज नहीं करवा पातीं। अधिकतर यौन संक्रमित रोगों का इलाज सरल है। यदि इनका पता जल्दी लग जाए और सही एवं नियमित इलाज हो जाए, तब इनसे कोई गम्भीर समस्या पैदा नहीं होती है। सही इलाज न कराने पर इनसे नपुंसकता या बाँझपन हो सकता है। ये जानलेवा भी हो सकते हैं। एड्स भी एक यौन संक्रमित रोग ही है जो कि सभी अन्य रोगों से भयंकर एवं लाइलाज है। यौन रोगों से एच.आई.वी. संक्रमण की सम्भावना दस गुना बढ़ जाती है।

अनेक प्रकार के फफूंद, बैक्टीरिया, वायरस, प्रोटोजोआ इत्यादि के कारण पुरुषों एवं महिलाओं के जननांगों में गुप्त रोग हो सकते हैं जिनमें सूज़ाक (Gonorhoea), सिफलिस (Syphilis), शैन्क्रॉइड (Chancroid), हरपीज (Herpes) क्लेमाइडिया (Chlamydia), हैपेटाइटिस-बी (Hepatitis-B) इत्यादि प्रमुख हैं। इन्हीं को यौन संक्रमित रोग कहा जाता है। इनके होने पर जननांगों की त्वचा छिल-फट जाती है तथा असुरक्षित यौन सम्बन्धों के द्वारा गुप्त रोग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को संक्रमित हो जाते हैं। साथ ही, गुप्त रोग के रोगाणु अजन्मे गर्भस्थ शिशुओं तथा जन्म के समय शिशुओं को उनकी माता के द्वारा भी संक्रमित हो सकते हैं। अधिकांश गुप्त रोग अर्थात् सेक्सुअली ट्रान्समिटिड इनफेक्शन (STIs) रिप्रोड्क्टिव ट्रैक इनफेक्शन (RTIs) होते हैं जो कि ऊपरी और निचले जननांगों के रोग हैं।

यौन संक्रमित रोग तथा एच.आई.वी. में सीधा सम्बन्ध है। दोनों का फैलाव कई व्यक्तियों के साथ यौन सम्बन्ध रखने तथा असुरक्षित सैक्स के माध्यम से होता है। एच.आई.वी. से होने वाला एड्स स्वयं एक यौन संक्रमित रोग है। यदि हवस के आगे या जोर जबरदस्ती करने वाले साथी के आगे बस नहीं चलता, तो कम-से-कम कण्डोम का प्रयोग कर इन दोनों को फैलने से रोका जा सकता है। एच.आई.वी., यौन संक्रमित रोग, अनचाहे प्रसव से बचने के लिए सदैव कण्डोम को पक्का साथी बना लेना चाहिए। आजकल इस दिशा में जागरुकता हेतु राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण संगठन द्वारा यह नारा दिया जा रहा है–

'अगर कोई कहे या करे सैक्स बिना कण्डोम,
तुम जोर से कहो-हरि ओम, हरि ओम।'

यौन संक्रमित रोगों के कारण जननांगों की त्वचा छिल-फट जाती है जिससे कि ऐसे व्यक्तियों में एच.आई.वी. संक्रमण की आशंका दस गुना तक अधिक बढ़ जाती है। वस्तुत: यौन संक्रमित रोगी के जननांग की फोड़े-फुन्सियों के कारण खाल कटी होती है तथा कई बार मुँह में भी छाले होते हैं। इन रास्तों से एच.आई.वी. उनके शरीर में सरलता से प्रवेश कर सकता है। दूसरी ओर एड्स ग्रसित व्यक्ति के शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता का ह्रास हो जाने के कारण उसे यौन संक्रमित रोग हो सकने की सम्भावना भी बढ़ जाती है।

एच.आई.वी. से होने वाले एड्स के उपचार की कोई प्रभावकारी दवा उपलब्ध नहीं है अर्थात् यह लाइलाज है, इसके विपरीत, यौन संक्रमित रोगों का उपचार सम्भव है। किसी भी प्रशिक्षित डॉक्टर से इलाज कराने पर यौन संक्रमित रोग ठीक हो सकते हैं, इसलिए यौन संक्रमित व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों के साथ यौन सम्पर्क में सावधानी रखनी चाहिए तथा एच.आई.वी. पीड़ित व्यक्ति को भी दूसरों के साथ यौन सम्पर्क स्थापित नहीं करना चाहिए। यदि यह जरूरी हो तो कण्डोम का प्रयोग किया जाना आवश्यक है।

8.2.3 एड्स से सम्बन्धित भ्रान्तियाँ

एच.आई.वी./एड्स के विषय में अनेक भ्रान्तियाँ समाज में व्याप्त हैं जिनके विषय में लोगों को निश्चित जानकारी दी जानी चाहिए। युवावर्ग इन भ्रान्तियों का अधिक शिकार है। एड्स से सम्बन्धित प्रमुख भ्रान्तियाँ निम्न प्रकार हैं—

1. एच.आई.वी. विषाणु वायु के साथ नहीं फैलता और न ही यह मच्छर, बैड बग, मक्खियाँ, जुएँ, पिस्सु व अन्य कीड़े-मकौड़ों एवं पक्षियों के द्वारा ही फैलता है। अतः मात्र किसी एच.आई.वी. संक्रमित व्यक्ति के गाँव या कार्यक्षेत्र में होने से एच.आई.वी./ एड्स संक्रमण का कोई ज़ोखिम नहीं होता।
2. एच.आई.वी. विषाणु शरीर या खून की बोतलों, सुइयों आदि के बाहर ज्यादा देर जिन्दा नहीं रह सकते। ये 2 से 6 मिनट में ही परलोक सिधार जाते है, इसलिए एच.आई.वी. विषाणु वायु, एकसाथ भोजन करने, कपड़ों (एक-दूसरे के वस्त्र पहनने), टॉयलेट की सीटों के माध्यम से नहीं फैलता।
3. एच.आई.वी. विषाणु स्विमिंग पूल (तरणताल में एकसाथ तैरने) या पानी से नहीं फैलता।
4. संक्रमित व्यक्ति के साथ खाना खाने, हाथ मिलाने, खेलने, गले मिलने या चूमने, सार्वजनिक शौचालय, बाथरूम आदि के उपयोग करने, कपड़े व बर्तन धोने, रोगी का परीक्षण एवं जाँच करने, रोगग्रस्त व्यक्ति की देखभाल करने, रोगी द्वारा छुई गई वस्तु प्रयोग करने, रक्तदान करने, साथ में यात्रा करने या बलगम अथवा उसके छींकने से भी यह नहीं फैलता।
5. एच.आई.वी. विषाणु चुम्बन एवं आलिंगन से भी नहीं फैलता।
6. एच.आई.वी. संक्रमित व्यक्ति भी थोड़े से नियमित उपचार तथा पौष्टिक आहार के साथ सामान्य व सकारात्मक जीवन जी सकते हैं, इसलिए यह मानना गलत है कि एच.आई.वी. ग्रसित व्यक्ति अतिशीघ्र मर जाता है।

एच.आई.वी./एड्स की रोकथाम एवं इसके बारे में प्रचलित भ्रान्तियों को दूर करने में युवावर्ग की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आज के युवाओं को निम्नलिखित सावधानियों पर विशेष ध्यान देना चाहिए–

1. नशीली या मादक औषधियाँ न लें और कभी भी दूसरे के द्वारा प्रयुक्त सुई और सिरिंज का प्रयोग न करें।
2. त्वचा को छेदने वाले उपकरणों व औजारों का दोबारा प्रयोग करने से पूर्व गर्म पानी में उबालकर शुद्ध कर लें।
3. यह जाँच कर लें कि किसी को दिए जाने वाले रक्त की एच.आई.वी. संक्रमण की वैज्ञानिक परीक्षा की जा चुकी है।
4. आपात स्थिति में व्यावसायिक या अज्ञात रक्तदाताओं से रक्त ग्रहण न करें। केवल परिवार के जानकार व्यक्तियों से ही रक्त लें।
5. यह ठीक प्रकार से देख लें कि चिकित्सालयों में प्रयोग होने वाले उपकरण तथा औजार पूरी तरह शुद्ध किए गए हों।
6. रक्त चढ़ाने से पूर्व एच.आई.वी. जाँच अवश्य करा लें।
7. नाई की दुकान पर दाढ़ी बनवाते समय नए ब्लेड का ही प्रयोग कराएँ। उस्तरे का प्रयोग तभी कराएँ जब वह गर्म पानी में उबाला हुआ हो या 'हिपेरिन' नामक द्रव से साफ किया गया हो।
8. अपने जीवन-साथी के अतिरिक्त किसी अन्य से यौन समागम कभी न करें। यदि विवशता की स्थिति में ऐसा करना पड़े तो कण्डोम का प्रयोग अवश्य करें।
9. यौनजनित रोग तपेदिक, निरन्तर ज्वर, मुँह में छाले रहने की स्थिति में तत्काल चिकित्सक से सम्पर्क करें।

10. इंजेक्शन लगाते समय डिस्पोजेबिल सिरिंज का प्रयोग करें। डिस्पोजेबिल सिरिंज के अभाव में सुई को कम-से-कम एक घण्टा गर्म पानी में उबालकर ही प्रयुक्त करें।

11. प्रतिवर्ष 1 दिसम्बर को 'विश्व एड्स दिवस' मनाया जाता है। अतः एड्स के विरोध में रैलियों तथा सभाओं का आयोजन करके सामान्य जनता को जागरूक करें।

NOTES

एड्स नियन्त्रण में नौजवानों की भूमिका इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि वे इसके बारे में फैली भ्रान्तियों को दूर करने में अन्य लोगों की सहायता कर सकते हैं। वे अशिक्षित एवं झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले लोगों में यह जागरूकता विकसित कर सकते हैं कि एच.आई.वी. विषाणु वायु के साथ नहीं फैलता और न ही यह मच्छर या कीड़े के काटने से होता है। संक्रमित व्यक्ति के साथ खाना खाने, हाथ मिलाने या बलगम अथवा उसके छींकने से भी यह नहीं फैलता। एच.आई.वी. संक्रमित व्यक्ति भी थोड़े-से नियमित उपचार तथा पौष्टिक आहार के साथ सामान्य एवं सकारात्मक जीवन जी सकते हैं। उन्हें सभी लोगों को यह भी समझाना चाहिए कि निम्न परिस्थितियों में एच.आई.वी. की जाँच अवश्य करवानी चाहिए—

1. जो व्यक्ति गुप्त रोग (गुप्तांग में घाव या स्राव) से पीड़ित है।
2. जो व्यक्ति नशीली दवाओं का सेवन सुई या सिरिंज द्वारा करता है।
3. जिस व्यक्ति का एक से अधिक के साथ यौन सम्बन्ध है।
4. जिस व्यक्ति को रोग या दुर्घटना की अवस्था में बिना जाँच किया गया रक्त चढ़ाया गया है।
5. यदि कोई व्यक्ति टी. बी. से पीड़ित है और सामान्य चिकित्सा से ठीक नहीं हो पा रहा है।
6. जिस व्यक्ति का पहले कभी असुरक्षित यौन सम्बन्ध रहा हो।

बोध प्रश्न

1. एड्स और यौन संक्रमित रोग को बताइये।

....

....

....

....

2. एड्स से सम्बन्धित भ्रान्तियों को स्पष्ट कीजिए?

....

....

....

....

8.3 एड्स का परिमाण

भारत में एच.आई.वी./ एड्स के लिए जाँच परीक्षण सन् 1985 से आरम्भ हो गया था। अप्रैल 1986 में मुम्बई की कुछ वेश्याओं में एच.आई.वी./ एड्स के लक्षण पाए गए। जून 1988 में देश-भर में 1,25,000 व्यक्तियों का परीक्षण किया गया, जिनमें मात्र 370 व्यक्ति संक्रमण से प्रभावित मिले। इनमें 100 भारतीय पुरुष और 156 स्त्रियाँ थीं, शेष विदेशी स्त्री-पुरुष थे। वर्ष 2005 तक विश्व-भर में लगभग चार करोड़ लोगों को यह रोग लग चुका है। इनमें स्त्रियों की संख्या 150 लाख तथा 15 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या 120 लाख आँकी गई है। अब तक एड्स से मरने वालों की संख्या 1 करोड़ 40 लाख तक पहुँच गयी है।

31 जुलाई, 2005 तक राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण संगठन द्वारा भारत के सन्दर्भ में जारी किए गए आँकड़ों के अनुसार भारत में कुल 1,11,606 व्यक्तियों को एड्स है जिनमें 79,041 पुरुष तथा 32,567 महिलाएँ हैं। तमिलनाडु (52,036), महाराष्ट्र (13,747) तथा आन्ध्र प्रदेश (12,349) तीन ऐसे राज्य हैं जहाँ पर एड्स से ग्रसित लोगों की संख्या सर्वाधिक है। भारत के महानगरों; जैसे—मुम्बई, कोलकाता, बैंगलोर, दिल्ली, चेन्नई, हैदराबाद में यह रोग तेजी से फैल रहा है।

उत्तर प्रदेश में एच.आई.वी./ एड्स के मामले बहुत कम प्रकाश में आए हैं। 31 जुलाई, 2005 तक राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण संगठन द्वारा उपलब्ध कराए गए आँकड़ों में 1,383 एड्स के रोगी हैं। यह संख्या इस रोग से प्रभावित व्यक्तियों की वास्तविक संख्या से कहीं कम है।

वस्तुत: एड्स के रोगी के साथ एक ऐसा 'सामाजिक कलंक' जुड़ा हुआ है जिसके कारण प्रभावित व्यक्ति इसके बारे में बताता ही नहीं है या भय से जाँच करवाने से हिचकता है। वह सोचता है कि यदि लोगों को इसका पता चल जाए तो कहीं उसे घर, गाँव या कार्यक्षेत्र से बाहर न निकाल दिया जाए। मेरठ, कानपुर, अलीगढ़, आगरा, सहारनपुर, लखनऊ, वाराणसी जैसे बड़े नगरों में इस रोग के मामले देखने में आए हैं तथा इनमें वृद्धि हो रही है। झुग्गी-झोपड़ियों में निवास करने वालों में निम्न शिक्षा, खराब स्वास्थ्य, गरीबी व महिलाओं की दयनीय स्थिति के साथ एच.आई.वी./ एड्स को जोड़ा जाने लगा है क्योंकि इनमें इस रोग के फैलने का भरपूर मौका उपलब्ध होता है। यौन कार्यकर्त्ताओं, फुटपाथी बच्चों व बाल श्रमिकों को इस दृष्टि से अतिसंवेदनशील समूह माना जाता है। परन्तु देश के अन्य राज्यों की तुलना में उत्तर प्रदेश अभी तक इस घातक रोग से बचा हुआ है।

8.4 एड्स की महामारी का उद्भव

ऐसा माना जाता है कि एड्स की महामारी का उद्भव अफ्रीकी उपमहाद्वीप में 1884 से 1924 के बीच हुआ, इस अवधि में सर्वप्रथम इसका संक्रमण नर-वानरों (जंगली बन्दर एवं चिम्पैंजी) से मनुष्यों को हुआ, इसके उद्भव का समय तो ज्ञात नहीं है, अपितु यह माना जाता है कि 19वीं शताब्दी के अन्त तथा 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उस समय हुआ जब अफ्रीका में नगरीकरण एवं उपनिवेशवाद बढ़ रहा था। चिम्पैंजी का शिकार करने वाले शिकारी को यह रोग तब हुआ जब वह उसे काट कर साफ कर रहा था। यह रोग शिकारी को चिम्पैंजी के खून तथा शारीरिक तरलों से हुआ माना जाता है। तब से लेकर अब तक यह रोग निरन्तर फैलता जा रहा है। अनेक विद्वान् यह भी मानते हैं कि सर्वप्रथम एड्स 5 जून, 1981 को अमेरिका के लॉस ऐंजिल्स नगर में पाँच समलैंगिक पुरुषों में पाया गया, इसका पता PCP (Pneumocystis carinii pneumonia) रोग से चला। तब इस महामारी को एड्स नाम नहीं दिया गया था। अमेरिकी रोग नियन्त्रण केन्द्रों में 1982 में इसे 'एड्स' कहा जाने लगा। बाद में पेरिस (फ्रांस) के पाश्चर संस्थान के वैज्ञानिक इस विषाणु को एड्स के रोगी से अलग करने में सफल हो गए। उन्होंने इसे एल.ए.वी. (लिम्फो एडोनोपेथी एसोसिएटेड वायरस) नाम दिया, इसी समय अमेरिकी संस्था एन.सी.आई. के डॉ. रॉबर्ट सी गेलो ने इस विषाणु की खोज कर डाली और इसे एच.टी.एल.वी-I और II अर्थात् ह्यूमन टी-सेल, ल्यूकेमिया लिम्फोमा वायरस नाम दिया। 1981 ई. में अमेरिकी राष्ट्रपति रीगन और फ्रांस के राष्ट्रपति जेक शिराक ने इस वायरस को एच.आई.वी. नाम दिया और इसे एड्स रोग का स्रोत माना गया। एच.आई.वी. गोल आवरणयुक्त विषाणु है, इसका व्यास 90-120 मिमी होता है। यह एकरज्जुकी आर.एन.ए. के आनुवंशिक पदार्थयुक्त रेट्रोवाइरस (Retrovirus) है, इसका न्यूक्लिओकैप्सिड (nucleocapsid) आइकोसाहेड्रल (Icosahedral) प्रकार का होता है। ssRNA दो समान टुकड़ों से बनता है तथा इस पर मूवर्स ट्रांसक्रिप्टेस विकर मिलता है। कैप्सिड का बाह्य आवरण कोशिका कला के समान द्विस्तरीय लिपिड से बना होता है तथा इसकी बाहरी सतह पर ग्लाइकोप्रोटीन के वृन्तयुक्त घुंडियों के रूप में अणु मिलते हैं।

एच.आई.वी. संक्रमण ही एड्स का कारण है। यह विषाणु हमारे शरीर में प्रवेश करके हमारी 'रोगप्रतिरोधक' क्षमता को नष्ट करने लगता है, जिससे शरीर को अनेक छोटे-बड़े रोग लग जाते हैं। अन्तत: व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. असुरक्षित यौन सम्बन्धों द्वारा इस वायरस का संक्रमण एक पुरुष अथवा स्त्री से दूसरी स्त्री या पुरुष में हो सकता है। संक्रमित स्त्री-पुरुष से यौन-सम्बन्ध स्थापित करने से रोग का संक्रमण हो सकता है। 75

प्रतिशत लोगों में एच.आई.वी./ एड्स असुरक्षित यौन सम्बन्धों से ही होता है, इसीलिए इसे एच.आई.वी./ एड्स फैलाने वाला हाईवे नम्बर एक माना जाता है।

2. किसी संक्रमित व्यक्ति द्वारा इस्तेमाल की गई इंजेक्शन की सुई या सिरिंज को इस्तेमाल करने से भी एच.आई.वी. का संक्रमण हो सकता है। कई बार बिना उबाले सिरिंजों एवं सुइयों का प्रयोग किया जाता है। यदि इनका प्रयोग पहले किसी एच.आई.वी. ग्रसित व्यक्ति ने किया है तो विषाणु दूसरों में दाखिल हो सकता है। दूषित सुइयों के माध्यम से एच.आई.वी. फैलने का ज्यादा खतरा नशीली दवाएँ इस्तेमाल करने वालों को होता है क्योंकि वे एक-दूसरे की सिरिंजें एवं सुइयाँ इस्तेमाल करते हैं, इसे एच.आई.वी./ एड्स फैलाने वाला हाईवे नम्बर दो माना जाता है।

3. रक्त सचरण द्वारा भी इस वायरस का संक्रमण हो सकता है। यदि एच.आई.वी. ग्रस्त व्यक्ति के रक्त का किसी स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में संचरण कर दिया जाए तो स्वस्थ व्यक्ति भी वायरस से संक्रमित हो सकता है। यह हाईवे नम्बर तीन माना जाता है।

4. एड्स वायरस से संक्रमित महिला से उसका भ्रूण और होने वाला नवजात शिशु भी एच.आई.वी. का शिकार हो सकता है, इसकी सम्भावना 30 प्रतिशत होती है। यह हाईवे नम्बर चार माना जाता है।

5. यौनजनित रोगों (सूजाक, सिफलिस आदि) से ग्रस्त व्यक्ति में एच.आई.वी./ एड्स का तेजी से प्रसार होता है।

6. बिना उबाले हुए उपकरणों से कान छिदवाना, नाक छिदवाना, गुदवाना, नाई के संक्रमित उस्तरे / ब्लेड का प्रयोग, अशुद्ध उपकरणों तथा औजारों द्वारा ऑपरेशन या जाँच से भी यह वायरस फैल सकता है।

7. समलिंगी यौन सम्बन्ध स्थापित करने वालों में भी इस रोग का संक्रमण हो सकता है। दो लड़कों/पुरुषों या दो लड़कियों/महिलाओं के बीच होने वाले यौन सम्बन्ध को समलैंगिकता कहते हैं।

8. सामान्यतया व्यावसायिक रक्तदाता, वेश्यावृत्ति से सम्बद्ध व्यक्ति (स्त्री-पुरुष), नशीले पदार्थों के सेवन के आदी व्यक्ति तथा सुई द्वारा सामूहिक रूप से नशीले पदार्थ लेने वाले व्यक्ति एच.आई.वी. के मुख्य वाहक तथा प्रसारक होते हैं।

वस्तुत: एच.आई.वी. वायरस मानव शरीर में कुछ द्रव्यों (बॉडी फ्लूइड्स) के माध्यम से प्रवेश करता है। इन द्रव्यों में रक्त, वीर्य (सीमन) तथा योनि द्रव्य प्रमुख हैं। सैक्स के माध्यम से ये द्रव्य एक व्यक्ति से दूसरे को निम्न प्रकार से संक्रमित कर सकते हैं–

1. लिंग (पेनिस) और योनि (वैजाइना) के सम्पर्क से (वीर्य या योनि द्रव्य के माध्यम से);
2. लिंग और गुदा (एनस) के सम्पर्क से (वीर्य या खून से, एनल सैक्स या गुदा यौन से);
3. लिंग और मुँह के सम्पर्क से (वीर्य या खून से, ओरल सैक्स या मौखिक यौन से) तथा
4. योनि और मुँह से (योनि द्रव्य या खून से, मौखिक यौन से)।

गुदा, योनि एवं मुँह की झिल्लियाँ अत्यधिक नाजुक होती हैं तथा रगड़ से आसानी से फट सकती हैं, इससे वायरस हस्तान्तरित होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

8.5 एड्स के विकास के सोपान

एड्स को सांतत्यक (Continuum) माना जाता है जिसे पूरा होने में कई बार अनेक वर्षों का समय लग जाता है, इसका विकास मुख्य रूप से निम्नलिखित चरणों में होता है–

1. प्रथम सोपान अथवा विण्डो पीरियड–जैसे ही किसी व्यक्ति के शरीर में एच.आई.वी. का विषाणु प्रवेश करता है तो वह शरीर को संक्रमित करना प्रारम्भ कर देता है। यदि संक्रमण के तुरन्त बाद रक्त परीक्षण किया जाए तो जाँच में विषाणु का पता नहीं चलता क्योंकि प्रतिरोधक तत्व को पर्याप्त संख्या में विकसित होने के

NOTES

लिए छह सप्ताह से छह महीने तक का समय लगता है। यह अवधि 'विण्डो पीरियड' (Window period) कही जाती है। यह वह अवधि है जो विषाणु के शरीर में प्रवेश होने से लेकर तब तक चलती है जबकि व्यक्ति में काफी एण्टीबॉडी विकसित न हो जाए। इन्हीं एण्टीबॉडी की संख्या के आधार पर एच.आई.वी. परीक्षण किया जाता है, इसलिए यदि एक बार जाँच में नकारात्मक रिपोर्ट भी आए, तब भी तीन माह बाद दुबारा रक्त की जाँच करा लेनी चाहिए। कुछ लोग 'विण्डो पीरियड' को प्राथमिक संक्रमण (Primary infection) की अवस्था भी कहते हैं। प्रथम अवस्था में 70 प्रतिशत लोगों में बुखार (तेज बुखार होना, सर्दी या कँपकँपी, रात को पसीना आना, शरीर पर दाने निकल आना) जैसे लक्षण विकसित होते हैं। शेष लोगों में किसी प्रकार के लक्षण विकसित नहीं होते हैं।

2. द्वितीय सोपान अथवा असिम्टोमैटिक पीरियड–यह वह सोपान है जिसमें विषाणु से ग्रसित रोगी में किसी प्रकार के असामान्य लक्षण विकसित नहीं होते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि शरीर का प्रतिरोधक तन्त्र इतना मजबूत होता है कि वह विषाणु को विकसित नहीं होने देता, इस अवस्था में वर्षों तक विषाणु से ग्रसित व्यक्ति एक सामान्य व्यक्ति दिखाई देता है। असिम्टोमैटिक पीरियड (Asymptomatic period) में यदि एच.आई.वी. परीक्षण किया जाए तो जाँच में विषाणु का पता चल जाता है। साथ ही, कई बार इस सोपान में ग्रसित व्यक्ति की लसीका-ग्रन्थि में सूजन आ जाती है।

3. तृतीय सोपान अथवा सिम्टोमैटिक पीरियड–तीसरे सोपान में विषाणु बहुत सक्रिय हो जाता है तथा प्रभावित व्यक्ति के प्रतिरोधक तन्त्र को काफी कमजोर कर देता है। सिम्टोमैटिक पीरियड (Symptomatic period) के प्रारम्भिक एवं मध्य चरण में एच.आई.वी. के लक्षण स्पष्ट रूप में दिखाई देने प्रारम्भ हो जाते हैं। इन लक्षणों में शरीर पर चिरकालिक मुख अथवा योनिक छाले (Chronic oral or vaginal thrush), मुख अथवा जननांगों में बार-बार हरपीज़ फफोले या छाले होना (Recurrent herpes blisters on the mouth), लगातार बुखार रहना, दस्त लगना तथा काफी भार कम हो जाना प्रमुख हैं। सिम्टोमैटिक पीरियड के अन्तिम चरण में प्रतिरोधी तन्त्र अत्यधिक कमजोर हो जाता है तथा ग्रसित व्यक्ति को ओपार्चुनिस्टिक संक्रमण (Opportunistic infections) होने प्रारम्भ हो जाते हैं। इनमें PCP (Pneumocystis carinii pneumonia), MAC (Mycobacterium avium complex), CMV (Cytomegalovirus), Toxoplasmosis तथा Caldidiasis प्रमुख है। इनमें से प्रथम अर्थात् PCP का लक्षण प्रतिशत एड्स रोगियों में पाया जाता है। इन्हीं संक्रामणों के आधार पर एड्स परीक्षण से व्यक्ति में एड्स होने का पता चलता है।

8.6 एड्स के परिणाम

एच.आई.वी. वायरस द्वारा व्यक्ति के संक्रमित हो जाने से व्यक्ति का प्रतिरक्षा तन्त्र नष्ट होने लगता है क्योंकि एड्स का विषाणु रक्त की सफेद कोशिकाओं (White blood cells) में प्रवेश करता है और उसकी रोग-प्रतिरोधक क्षमता को नष्ट करता है। वास्तव में, रक्त की सफेद कोशिकाओं का मुख्य कार्य फैगोसाइट यानी कीटाणु, जीवाणुओं या विषाणुओं को एण्टीबॉडी तैयार कर खाना या नष्ट करना होता है किन्तु एड्स का विषाणु इतना भयानक होता है कि वह रक्त की सफेद कोशिकाओं और रोगप्रतिरोधक शक्ति के सम्पूर्ण तन्त्र को नष्ट कर देता है।

एच.आई.वी. वायरस द्वारा संक्रमित होने के उपरान्त जब रोगी की रोगप्रतिरोधक शक्ति क्षीण हो जाती है तब एड्स के विषाणु अन्य शारीरिक अंगों में फैल जाते हैं। शरीर जीर्ण व कमजोर हो जाता है जिससे कि शरीर में अन्य रोगों के कीटाणु, जीवाणु या विषाणु बहुत आसानी से प्रवेश कर अन्य रोग फैलाते हैं; जैसे– शोथ, टी.बी., कैंसर इत्यादि, इस प्रकार शरीर में उत्पन्न हुए रोग शरीर की रोगनाशक शक्ति के अभाव में ठीक नहीं होते तथा रोगी अन्ततः मृत्यु को प्राप्त होता है।

यह ऐसा वायरस या विषाणु है जो मानव शरीर में पहुँचकर प्रतिरक्षा तन्त्र की प्रमुख कोशिकाओं, जिन्हें ऊ-लिम्फोसाइट्स कहा जाता है, को नष्ट कर देता है, इससे शरीर की रोगजनक विषाणुओं से प्रतिरक्षण की क्षमता कम हो जाती है या नष्ट हो जाती है तथा इस प्रकार शरीर की रोगों से लड़ने वाली सफेद रक्त कोशिकाओं के तेजी से नष्ट हो जाने से शरीर रोगों से नहीं लड़ पाता। प्रतिरक्षण क्षमता को नष्ट करने के कारण ही इस विषाणु को एच.आई.वी. (HIV) नाम दिया गया है।

एच.आई.वी./एड्स का सबसे गम्भीर परिणाम वह कलंक या लांछन (Stigma) है जो इससे ग्रसित व्यक्ति तथा उसके परिवार पर लगाया जाता है। ग्रसित व्यक्ति को उसकी पत्नी/पति, बच्चे, माता-पिता एवं परिजन ही अपने साथ रखने को तैयार नहीं होते, अपितु सम्पूर्ण समुदाय ऐसे व्यक्तियों के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया करता है। उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है तथा उसके सहकर्मी उससे किसी प्रकार का सम्पर्क रखने से बचने का प्रयास करते हैं। क्या एड्स से ग्रसित व्यक्ति को जीवन जीने का कोई अधिकार नहीं है? परिवार, कार्यस्थल एवं समुदाय द्वारा बहिष्कार किए जाने के कारण वह जाए तो कहाँ जाए? क्या उसे उसके द्वारा की गई गलती की इतनी बड़ी सजा मिलनी चाहिए कि उससे जीने का अधिकार भी छीन लिया जाए? यह प्रश्न न केवल समाज-वैज्ञानिकों अपितु सरकार एवं गैर-सरकारी संगठनों के लिए चर्चा का विषय बना हुआ है।

आज यह महसूस किया जाने लगा है कि प्रत्येक व्यक्ति के कुछ मानवाधिकार हैं। एच.आई.वी./एड्स के रोगियों के साथ जुड़े हुए सार्वजनिक कलंक एवं समाज द्वारा उनके साथ होने वाले भेदभाव ने 1980 के दशक में इन रोगियों के मानवाधिकारों का प्रश्न पैदा कर दिया है। क्या ऐसे रोगियों का परीक्षण अनिवार्य होना चाहिए? क्या उनके अन्तर्राष्ट्रीय भ्रमण पर अंकुश लगाया जाना चाहिए? क्या उन्हें रोजगार और आवासों से दूर रखा जाना चाहिए? क्या उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य की देखरेख एवं बीमा की सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए? क्या एच.आई.वी./एड्स से प्रभावित माता को बच्चा जनने का अधिकार होना चाहिए? क्या ऐसी माता गर्भपात के लिए मना करने की अधिकारी है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका सम्बन्ध एच.आई.वी./एड्स एवं मानवाधिकारों से है। आज भी पूरा विश्व इन प्रश्नों के उत्तर खोजने में लगा हुआ है।

सम्पूर्ण मानव जाति आज शोषण, अत्याचार, उत्पीड़न एवं आतंकवाद से पीड़ित है, इसीलिए मानवाधिकारों का संरक्षण आज सभी देशों में एक चुनौती बन गया है। यद्यपि मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए मैग्नाकार्टा, बिल ऑफ राइट्स तथा मानवाधिकार घोषणा-पत्र जारी हुए लेकिन जनसाधारण को इनसे अधिक लाभ नहीं पहुँच पाया है। सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार आज भी मृगतृष्णा बना हुआ है। मानवाधिकारों की प्राप्ति को सुनिश्चित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक 'मानवाधिकार आयोग' (Commission of Human Rights) की नियुक्ति की और उसे मानवाधिकारों के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रारूप तैयार करने का दायित्व सौंप दिया। लगभग तीन वर्षों के अथक् परिश्रम के उपरान्त 'मानवाधिकार आयोग' ने 'मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा' (Universal Declaration Human Rights) का प्रारूप बनाकर तैयार कर दिया। 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने कुछ संशोधनों के साथ इस प्रारूप को स्वीकृत कर दिया और इसी दिन मानवाधिकारों का सार्वभौम घोषणा-पत्र जारी कर दिया गया।

एच.आई.वी./एड्स से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार यह सरकारों का उत्तरदायित्व है कि वे उनके साथ होने वाले भेदभाव को रोकें। सरकारें ही जनस्वास्थ्य की रक्षा करने तथा मानवाधिकारों के हनन को रोकने के लिए उत्तरदायी है। यद्यपि कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार सन्धि एच.आई.वी./एड्स रोगियों के मानवाधिकारों का उल्लेख नहीं करती, तथापि सभी सरकारों ने इस सन्दर्भ में अपना उत्तरदायित्व निभाने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की है, इस सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1998 ई. में मानवाधिकारों के सम्बन्ध में एच.आई.वी./एड्स एवं मानवाधिकारों के बारे में कुछ निर्देश भी जारी किए हैं। इन निर्देशों के अनुसार एच.आई.वी./एड्स रोगियों के अधिकारों को सुनिश्चित करने की बात कही गई है। संयुक्त राष्ट्र संघ की 2001 ई. में हुई महासभा में भी इन रोगियों के अधिकारों को स्वीकार किया गया है।

अधिकार, आधुनिक युग में मानव की अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण आवश्यकता और माँग है। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास हेतु जिन बाह्य परिस्थितियों या सुविधाओं की आवश्यकता होती है, उन्हें ही 'अधिकार' कहा जाता है। वस्तुत: अधिकार से अभिप्राय राज्य द्वारा व्यक्ति को कुछ कार्य करने की स्वतन्त्रता या सकारात्मक सुविधा प्रदान करना है जिससे व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक गुणों का पूर्ण विकास कर सके। अधिकारों के अभाव में व्यक्ति का पूर्ण विकास असम्भव है। स्वभावत: ही अधिकार उन कार्यों की स्वतन्त्रता का बोध कराता जो व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए उपयोगी होते हैं।

जब एच.आई.वी./एड्स संक्रमित व्यक्ति के अधिकारों की बात की जाती है तो इससे अभिप्राय उनके नैतिक एवं कानूनी अधिकारों से है। अमेरिका में इस प्रकार के रोग से संक्रमित व्यक्ति को भेदभाव से बचाने सम्बन्धी

अमेरिकन्स विद डिसएबिलिटीज एक्ट (Americans with Disabilities Act) पारित किया गया है, इस अधिनियम के बावजूद एच.आई.वी./एड्स संक्रमित व्यक्ति के साथ जुड़े हुए कलंक को दूर करना सम्भव नहीं हो पाया है। ऐसे रोगियों को चिकित्सा सुविधाएँ प्राप्त करने का कानूनी अधिकार है तथा कोई भी उनके साथ शिक्षा एवं रोजगार में भेदभाव नहीं कर सकता है।

NOTES

भारत जैसे देश में अभी इस प्रकार का कोई अधिनियम पारित नहीं हुआ है। फिर भी लॉयर्स कलैक्टिव (Lawyers collective) नामक संगठन ने 2001 ई. में भारत में एच.आई.वी./एड्स संक्रमित व्यक्ति के अधिकारों सम्बन्धी अधिनियम का मसौदा तैयार किया है, इस अधिनियम के पारित होने पर ऐसे रोगियों के अधिकार सुनिश्चित किए जाएँगे। वैसे आन्ध्र प्रदेश, गोआ तथा पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों ने एच.आई.वी./एड्स संक्रमित व्यक्तियों से शिक्षा एवं रोजगार के क्षेत्र में होने वाले भेदभाव को रोकने हेतु अनेक कारगर कदम उठाए हैं। एच.आई.वी./एड्स से संक्रमित महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने की दिशा में नाज फाउण्डेशन भी प्रयासरत है।

बोध प्रश्न

1. एड्स की महामारी का उद्भव बताइये।

....

....

....

....

2. एड्स के परिणामों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

8.7 एड्स से ग्रसित की देखरेख

जब से भारत में एड्स ने अपने पाँव फैलाने शुरू किए हैं तभी से इसकी रोकथाम के लिए अनेक सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों ने प्रयास शुरू कर दिए। सरकारी अस्पतालों एवं स्वास्थ्य केन्द्रों के माध्यम से सरकार न केवल एड्स की जाँच के उपाय करती है वरन् इससे जुड़ी जानकारी भी लोगों तक पहुँचाती है। 1986 ई. में एड्स के प्रथम रोगी का पता चलते ही भारत सरकार ने स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मन्त्रालय के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्तर पर नेशनल एड्स कण्ट्रोल प्रोग्राम (NACP–National AIDS Control Programme) प्रारम्भ किया, इस प्रोग्राम के अन्तर्गत विभिन्न नगरों में एच.आई.वी. प्रभावित लोगों पर नजर रखी जाती है।

1991 ई. में योजना को संशोधित करते हुए एक अर्द्ध-स्वायत्त संगठन— नेशनल एड्स कण्ट्रोल ऑर्गेनाइजेशन (NACO–National AIDS Control Organization) की स्थापना एड्स एवं एच.आई.वी. से भारत को मुक्त रखने के लिए की गई है, इस संगठन का प्रथम चरण 1992 से 1999 ई. तक का माना जाता है जिसमें एड्स नियन्त्रण के बारे में सरकार की प्रतिबद्धता के मद्देनजर इसके बारे में जागरूकता एवं रक्त सुरक्षा के उपाय सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया। जागरूकता में वृद्धि जैसे कुछ लक्ष्य इस अवधि में भी प्राप्त किए गए। बिना जाँच के रक्त को किसी रोगी को दिया जाना वर्जित कर दिया गया। प्रथम चरण के पश्चात् 1999 ई. से इस कार्यक्रम को विकेन्द्रीकृत किया गया ताकि राज्य के स्तर पर अधिक प्रभावशाली योजनाएँ बनाई जा सकें।

एच.आई.वी. का परीक्षण सरकारी या प्राइवेट अस्पतालों तथा स्वैच्छिक परामर्श एवं परीक्षण केन्द्रों (वी.सी.टी.सी.) पर किया जाता है, इस सन्दर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि कोई भी जबरदस्ती किसी का एच.आई.वी. परीक्षण नहीं करवा सकता है। यह सम्बन्धित व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करता है।

8.7.1 वी.सी.टी.सी. का परिचय

भारत सरकार ने विभिन्न शहरों में एच.आई.वी. की जाँच के लिए केन्द्र खोले है जहाँ व्यक्ति में एड्स की आशंका होने पर एच.आई.वी. संक्रमण के लिए रक्त की जाँच की जाती है तथा एड्स की जाँच के लिए एलीसा जाँच, वैस्टर्न ब्लाट जाँच एवं करपास जाँच की जाती है। इन केन्द्रों को स्वैच्छिक परामर्श एवं परीक्षण केन्द्र अर्थात् वी.सी.टी.सी. कहा जाता है। इन केन्द्रों पर होने वाले सभी परीक्षण पूरी तरह से गोपनीय होते हैं। एच.आई.वी. होने पर भी बिना रोगी की मरजी के इसकी सूचना किसी अन्य को नहीं दी जा सकती है।

NOTES

स्वैच्छिक परामर्श एवं परीक्षण केन्द्रों पर एच.आई.वी. संक्रमण की जाँच के लिए रक्त की जाँच की जाती है जिसमें रक्त के श्वेत कणों एवं टी-4, टी-8 में कमी इसके संक्रमण को इंगित करता है। साथ ही, बाह्य तौर पर भी रोगी का इतिहास देखा जाता है तथा शारीरिक जाँच की जाती है। रोगी के इतिहास में किसी एड्स रोगी के साथ असुरक्षित यौन सम्पर्क, दूषित रक्त का चढ़ाया जाना अथवा शिशु का रोगी माता से पैदा होना, दूषित सिरिंजों का प्रयोग प्रमुख है। बाह्य शारीरिक जाँच में शरीर पर चकतो का मिलना एवं गिल्टियों में सूजन प्रमुख है।

स्वैच्छिक परामर्श एवं परीक्षण केन्द्रों के साथ-साथ राज्य स्तर पर एड्स कण्ट्रोल सोसायटीज भी कार्यरत है। ग्राम स्तर पर पंचायतें भी विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा एड्स के खिलाफ युद्ध में लोगों को जानकारी देती हैं, इसके लिए पंचायतें मुख्यतः महिला मण्डलों का सहयोग लेती हैं। तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश तथा मणिपुर जैसे राज्यों में इस चुनौती का सामना करने हेतु अधिक राजनीतिक प्रतिबद्धता देखी गई है तथा स्वैच्छिक परामर्श एवं परीक्षण केन्द्र भी सुचारू रूप से कार्यरत है, जबकि बिहार एवं उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में अभी तक कोई विशेष प्रयास नहीं हुए हैं। इन राज्यों में ऐसे केन्द्रों पर भी आने वालों की संख्या काफी कम है।

नेशनल एड्स कण्ट्रोल प्रोग्राम के द्वितीय चरण (1999 से 2006 ई.) में भारत के विभिन्न राज्यों में एड्स नियन्त्रण के कार्यक्रमों को सुदृढ़ करने का प्रयास किया जा रहा है। एड्स के प्रति उच्च एवं अतिसंवेदनशील समूहों की ओर विशेष ध्यान दिए जाने के साथ-साथ गैर-सरकारी संगठनों तथा शिक्षा, यातायात एवं पुलिस जैसे विभागों को भी इसके प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए सम्मिलित किया गया है। समय-समय पर राज्य स्तर पर विभिन्न कार्यक्रमों की समीक्षा की जाती है तथा उन्हें अधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया जाता है। अब भारत सरकार नेशनल एड्स कण्ट्रोल प्रोग्राम के तीसरे चरण की रूपरेखा बनाने में जुटी हुई है, इस चरण में गैर-सरकारी अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों, विशेषज्ञों इत्यादि की सहायता लेने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण संगठन ने इस बात की सम्भावना व्यक्त की है कि अगले पाँच वर्ष देश में एड्स के प्रकोप की दृष्टि से काफी गम्भीर होंगे। 2020 ई. तक भारत में एड्स के रोगियों की संख्या 2 करोड़ 25 लाख तक पहुँचने की सम्भावना है, इसीलिए केन्द्र सरकार ने एड्स के प्रकोप से बचने की एक नवीन पहल के अन्तर्गत उत्तर भारत सहित देश के विभिन्न भागों में 400 से अधिक एड्स जाँच केन्द्र खोले जाने की घोषणा की है। राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण संगठन की महानिदेशिका श्रीमती सुजाता राव के अनुसार राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश में इस प्रकार के जाँच केन्द्रों को खोले जाने में प्राथमिकता दी जाएगी। इन जाँच केन्द्रों पर स्वैच्छिक परामर्श की सुविधा भी उपलब्ध कराई जाएगी।

8.7.2 वी.सी.टी.सी. के लाभ

स्वैच्छिक परामर्श एवं परीक्षण केन्द्र अत्यन्त लाभकारी संगठन हैं। ऐसे केन्द्र अधिकांश नगरों एवं अस्पतालों में उपलब्ध हैं। जरा सी भी एच.आई.वी. की आशंका या चिन्ता होने पर कोई भी व्यक्ति इन केन्द्रों पर मुफ्त परीक्षण करवा सकता है। परीक्षण सम्बन्धी सभी जानकारी गुप्त रखी जाती है तथा बिना सम्बन्धित व्यक्ति के किसी और को नहीं दी जाती है। साथ ही, इन केन्द्रों पर एच.आई.वी. परीक्षण के पहले और बाद में विशेषज्ञों द्वारा मुफ्त परामर्श या काउन्सलिंग भी उपलब्ध कराई जाती है। विशेषज्ञ एवं परामर्शदाता उन सभी प्रश्नों का उत्तर देते हैं जो सम्बन्धित व्यक्ति के मन में इस वायरस या रोग के बारे में है। वे उसकी भावनाओं, प्रतिक्रियाओं और समस्याओं को समझने में सहायता करते हैं तथा उसे उचित सलाह देते हैं। इन केन्द्रों पर आने वाले लोगों पर हुए अध्ययनों से पता चलता है कि सुरक्षित यौन सम्बन्ध तथा देखरेख व समर्थन सेवाएँ बढ़ाने में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। कीनिया, पूर्व एवं दक्षिण अफ्रीका में अनेक नवयुवकों ने इन केन्द्रों से लाभकारी निर्देशन प्राप्त किया

है। भारत में भी ये केन्द्र इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। जहाँ एक ओर ये केन्द्र एड्स से जुड़ी जानकारी लोगों तक पहुँचाते हैं वहीं दूसरी ओर एड्स से जुड़ी भ्रान्तियाँ दूर करने में भी सक्रिय सहयोग दे रहे हैं।

8.7.3 प्रतिरक्षा प्रणाली

NOTES

प्रतिरक्षा प्रणाली का सम्बन्ध शरीर की उस रोगनाशक शक्ति से है जिससे रोग के जीवाणुओं से हमारी रक्षा होती है। प्रतिरक्षा एक महत्वपूर्ण यन्त्रीकरण (शक्ति) है जिससे दैनिक जीवन में शरीर अनेक रोगों को सहन कर उनका प्रतिरोध कर सकता है। वास्तव में, यह प्रणाली अविष पदार्थ को पहचानकर नष्ट कर देती है जिससे कि शरीर रोगमुक्त रहता है। जब कोई रोगाणु या बाहरी पदार्थ हमारे शरीर में प्रवेश करता है तब प्रतिपिण्ड (Antibodies), जो सुरक्षात्मक पदार्थ भी कहलाते हैं, शरीर के द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं। ये प्रतिपिण्ड शरीर की पुलिस या रक्षक की भाँति कार्य करते हैं जो लसिकातन्त्र और तिल्ली (प्लीहा) में तैयार होते हैं तथा किसी भी रोग तत्वों के आक्रमण होते ही रक्त और अन्य द्रव्यों में परिसंचारित होने लगते हैं। प्रतिरक्षा प्रणाली दो प्रकार की होती है– प्राकृतिक प्रतिरक्षा (Natural immunity) तथा अर्जित प्रतिरक्षा (Acquired immunity)।

1. प्राकृतिक प्रतिरक्षा– प्राकृतिक प्रतिरक्षा व्यक्ति को वंश परम्परा या जीनी (Genes) संरचना के कारण प्राप्त होती है। ऐसा माना जाता है कि गर्भावस्था में स्वस्थ माता के रोगनाशक तत्वों द्वारा गर्भस्थ शिशु की रक्षा होती है तथा जन्म के साथ इन तत्वों का शिशु में हस्तान्तरण हो जाता है। कोशिकाओं के निर्माण की दिशा भी पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिलती है जो रोगों से लड़ने एवं उन पर विजय पाने की क्षमता प्रदान करती है, इसीलिए गर्भावस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण अवस्था है जिसमें भोजन का चयन तथा स्वास्थ्य नियमों के पालन द्वारा रोगों से बचाव किया जा सकता है तथा प्रतिरक्षा क्षमता का संचय होता है। प्राकृतिक प्रतिरक्षा प्रणाली को स्वास्थ्य नियमों के पालन करने तथा खान-पान में सुधार से सुदृढ़ किया जा सकता है।

2. अर्जित प्रतिरक्षा–अर्जित प्रतिरक्षा व्यक्ति को दो प्रकार से प्राप्त होती है– किसी अल्प रोग से व्यक्ति के संक्रमित हो जाने के बाद शरीर में रोगरोधक प्रतिपिण्ड उत्पन्न हो जाते हैं जो जीवन-भर पुन: शरीर को उक्त रोग से मुक्त रखते हैं एवं आगे चलकर भयंकर आक्रमणों से रक्षा करते हैं; जैसे– खसरा एवं चेचक। कई बार व्यक्ति के बार-बार रोगी होने पर इन रोगाणुओं की अल्प मात्रा द्वारा भी उस विशेष रोग के प्रति अवरोधक क्षमता का विकास हो जाता है। टीकाकरण द्वारा रक्त प्रवाह में अल्प रोगाणुओं का प्रवेश कर प्रतिरक्षा क्षमता का विकास किया जाता है, इसमें दो प्रकार से शरीर को रोगमुक्त रखने का प्रयास किया जाता है–प्रथम, शरीर में प्राय: ऐसे मृत अथवा कमजोर रोगवाहक जीवाणुओं या उनसे उत्पन्न विषाक्त पदार्थों का संक्रमण कराया जाता है जिससे शरीर उस संक्रमण का मुकाबला करने के लिए अपने प्रतिपिण्ड तैयार करता है और शरीर की रक्षा करता है तथा द्वितीय, ऐसी अवस्था में जबकि शरीर अपने प्रतिपिण्ड तैयार नहीं कर सकता तब बाहर से बनाए गए प्रतिपिण्ड (Readymade antibodies) सुई द्वारा देने पड़ते हैं; जैसे– टाइफॉइड, हैजा, टेटनस, डिफ्थीरिया,

प्लेग इत्यादि रोगों में। यह बाहरी प्रतिपिण्ड सीमित काल तक अपना प्रभाव बनाए रखते हैं तथा कालान्तर में पुन: टीकाकरण द्वारा इन्हें सक्रिय किया जाता है।

8.7.4 एच.आई.वी. का परीक्षण

एड्स के संचरण का सबसे सरल तरीका यौन सम्पर्क है। यह रोग अनिवार्य रूप से घातक है और मरने की प्रक्रिया लम्बी, यातनापूर्ण और कष्टदायी है। एच.आई.वी. पॉजिटिव पाए जाने पर एड्स की पुष्टि होती है तथा सरकार द्वारा रोगी को नि:शुल्क इलाज की सुविधा प्रदान करायी जाती है। रक्त में एच.आई.वी. की पुष्टि निम्नलिखित दो परीक्षणों द्वारा की जाती है–

1. एलीसा टैस्ट तथा
2. वैस्टर्न ब्लाट टैस्ट।

यदि किसी व्यक्ति में एच.आई.वी. पॉजिटिव है तो उपर्युक्त परीक्षणों द्वारा इसकी पुष्टि होती है। परन्तु इस सन्दर्भ में यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि एच.आई.वी. एण्टी-बॉडीज तीन महीनों के बाद ही खून में दिखती हैं, उससे पहले नहीं, इस समय को 'विण्डो पीरियड' कहते हैं। अन्य शब्दों में, यदि आज एच.आई.वी. ने प्रवेश

किया है तो वह तीन महीने तक परीक्षण में नहीं दिखेगा, इसका कारण यह है कि दोनों टैस्ट एच.आई.वी. एण्टीबॉडीज की जाँच करते हैं, एच.आई.वी. की नहीं। शरीर में एण्टीबॉडीज बनने में तीन महीने तक का समय लग जाता है। 'विण्डो पीरियड' में एच.आई.वी. ग्रसित व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को एच.आई.वी. दे सकता है।

NOTES

एच.आई.वी. से संक्रमित व्यक्तियों के रक्त में उपयुक्त प्रतिरोधक क्षमता (एण्टीबॉडीज– antibodies) पाई जाती है। सीरम की जाँच द्वारा इन एण्टीबॉडीज की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है। सीरम की जाँच के लिए एलिसा (ELISA–Enzyme-linked immunosorbent) किट का प्रयोग किया जाता है। मुम्बई के कैंसर अनुसन्धान संस्थान के जैव प्रौद्योगिकी विभाग (DOB) द्वारा एक किट बनाई गई है, जिसे एच.आई.वी.-I तथा एच.आई.वी.- II W. Blot नाम दिया गया है। इन परीक्षणों से व्यक्ति के सीरम में एण्टी-बॉडीज की उपस्थिति की परीक्षा की जाती है।

8.7.5 परामर्श की प्रक्रिया

स्वैच्छिक परामर्श एवं परीक्षण केन्द्र भारत सहित सभी देशों में सरकारी एवं प्राइवेट अस्पतालों एवं क्लिनिकों में खोले गए हैं। इन केन्द्रों पर कोई भी स्वेच्छा से परामर्श का लाभ प्राप्त कर सकता है। एच.आई.वी. के बढ़ते हुए खतरे को देखते हुए ये केन्द्र स्वत: भी अतिसंवेदनशील समूहों को अपनी ओर आकर्षित करने हेतु अनेक प्रकार से प्रचार-प्रसार करते हैं। इन केन्द्रों पर एच.आई.वी. परीक्षण के साथ-साथ विशेषज्ञों एवं परामर्शदाताओं द्वारा लाभकारी परामर्श भी उपलब्ध कराया जाता है। परीक्षण के मद्देनजर परामर्श की प्रक्रिया को दो भागों में विभाजित किया जाता है—पूर्ववर्ती परीक्षण तथा पश्चवर्ती परीक्षण।

8.7.6 पूर्ववर्ती एवं पश्चवर्ती परीक्षण

एच.आई.वी. परीक्षण से पूर्व सम्बन्धित व्यक्ति को दिए जाने वाले परामर्श को पूर्ववर्ती परीक्षण कहा जाता है। यह परीक्षण प्रशिक्षित डॉक्टर, नर्स अथवा परामर्शदाता द्वारा दिया जाता है, इस परीक्षण में यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है कि केन्द्र पर आए व्यक्ति में एच.आई.वी. संक्रमण एवं टैस्ट के बारे में पर्याप्त ज्ञान है अथवा नहीं। डॉक्टर, नर्स अथवा परामर्शदाता तथा केन्द्र पर आए व्यक्ति से होने वाला सम्पूर्ण वार्तालाप व्यक्तिगत एवं गोपनीय होता है, इस परामर्श के पश्चात् यदि व्यक्ति एच.आई.वी. परीक्षण हेतु अपनी सहमति देता है तो सहमति पत्र पर उसके हस्ताक्षर ले लिए जाते हैं। सभी सहमति पत्र गोपनीय होते हैं तथा उनकी जानकारी किसी अन्य को नहीं दी जाती है। 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों के परीक्षण की सहमति उनके अभिभावकों से ली जाती है। फिर भी, यदि 14 वर्ष से बड़े बालक स्वयं अपनी सहमति देते हैं तो यह सूचना उनके अभिभावकों को नहीं दी जाती है। सहमति होने पर ही एच.आई.वी. का परीक्षण किया जाता है। परीक्षण के टैस्ट के बारे में सम्बन्धित व्यक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य को नहीं बताया जा सकता है। किसी भी केन्द्र द्वारा ऐसा किया जाना गैर-कानूनी माना जाता है। यदि टैस्ट नकारात्मक होता है तो सम्बन्धित व्यक्ति को एच.आई.वी. फैलाने के माध्यमों एवं सुरक्षित यौन सम्बन्ध के बारे में सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध कराई जाती है ताकि आने वाले समय में वह इससे बचा रहे। उसे मुफ्त कण्डोम भी उपलब्ध कराए जाते हैं। अध्ययनों से यह भी पता चला है कि ऐसे केन्द्रों पर आने वाले जिन लोगों का परीक्षण नकारात्मक रहा है, उनमें सुरक्षित यौन सम्बन्ध के बारे में ज्ञान अधिक पाया जाता है। वे किसी प्रकार का खतरा मोल नहीं लेना चाहते।

एच.आई.वी. परीक्षण का परिणाम पॉजिटिव होने के पश्चात् द्वितीय चरण में पश्चवर्ती परीक्षण एवं परामर्श की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, इस चरण में व्यक्ति को टैस्ट के परिणाम से अवगत कराया जाता है। एच.आई.वी. पॉजिटिव व्यक्ति को परामर्श द्वारा यह बताने का प्रयास किया जाता है कि इससे बचने का कोई रास्ता तो नहीं है, फिर भी वह सामान्य व्यक्तियों की भाँति अपना जीवन व्यतीत कर सकता है। उसे इस दिशा में जीवन- यापन हेतु उचित दिशा-निर्देश दिए जाते हैं। यदि सम्बन्धित व्यक्ति चाहे तो अनेक सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठन उसे मुफ्त उपचार उपलब्ध करा सकते हैं। सम्बन्धित व्यक्ति को यह एहसास कराया जाता है कि सारी लड़ाई एच.आई.वी. वायरस से है ना कि उस व्यक्ति या व्यक्तियों से जिनमें यह वायरस पाया जाता है। उसे बताया जाता है कि शरीर में एच.आई.वी. प्रवेश के 7-8 वर्ष तक व्यक्ति स्वस्थ रहता है, दिखता है और महसूस करता है। कुछ एच.आई.वी. पॉजिटिव लोगों ने, जिन्होंने अपनी जीवन शैली को बिलकुल बदल दिया, जो बहुत सोच-

समझकर भोजन, व्यायाम, साधना आदि करने लगे, वे तो 12 से 15 वर्ष बाद भी स्वस्थ और सुखी हैं, इस भाँति, उन्हें यह एहसास कराया जाता है कि एच.आई.वी. प्रवेश का अर्थ जीवन का अन्त नहीं है। हाँ, इससे सतर्क होकर जीने की आवश्यकता है।

NOTES

स्वैच्छिक परामर्श एवं परीक्षण केन्द्रों में गोपनीयता को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। भारत सहित सभी देशों में एच.आई.वी. पॉजिटिव व्यक्तियों के साथ बुरा व्यवहार होता है। लोग उनसे मिलनेजुलने से घबराते हैं तथा डॉक्टर/नर्स उनका इलाज करने से कतराते हैं। लोग उनसे व उनके परिवार वालों के साथ तरह-तरह का भेदभाव करते हैं। भारत में तो एक-आध बार एच.आई.वी. पॉजिटिव व्यक्ति की हत्या तक भी कर दी गई है, इसलिए एच.आई.वी. के साथ जुड़े कलंक के कारण परीक्षण एवं उपचार हेतु गोपनीयता अत्यन्त आवश्यक है। यदि गोपनीयता नहीं होगी तो एच.आई.वी. पॉजिटिव व्यक्ति न तो इस बारे में किसी को कुछ बताएगा और न ही अपना इलाज करवाएगा। ऐसी स्थिति किसी भी देश के लिए और भी अधिक खतरनाक होगी। इन केन्द्रों पर गोपनीयता रखा जाना कानूनी रूप से भी सुनिश्चित किया गया है।

8.7.7 एच.आई.वी./ एड्स संक्रमित व्यक्ति के संक्रमण के निःशुल्क इलाज की सुविधा

एड्स के संचरण का सबसे सरल तरीका यौन सम्पर्क है। यह रोग अनिवार्य रूप से घातक है और मरने की प्रक्रिया लम्बी, यातनापूर्ण और कष्टदायी है। एच.आई.वी. पॉजिटिव पाए जाने पर एड्स की पुष्टि होती है तथा सरकार द्वारा रोगी को निःशुल्क इलाज की सुविधा प्रदान करायी जाती है। रक्त में एच.आई.वी. की पुष्टि जिस परीक्षण द्वारा की जाती है उसे 'एलीसा टैस्ट' कहते हैं। यह परीक्षण सीरम की जाँच द्वारा किया जाता है। परीक्षण हेतु एलिसा (ELISA–Enzyme-linked immunosorbent) किट का प्रयोग किया जाता है। मुम्बई के कैंसर अनुसन्धान संस्थान के जैव प्रौद्योगिकी विभाग (DOB) द्वारा एक किट बनाई गई है, जिसे एच.आई.वी.-I तथा एच.आई.वी.-II W. Blot नाम दिया गया है। इन परीक्षणों से व्यक्ति के सीरम में एण्टीबॉडीज की उपस्थिति की परीक्षा की जाती है। एक अन्य टैस्ट 'वैस्टर्न ब्लाट टैस्ट' द्वारा भी एच.आई.वी. पॉजिटिव की पुष्टि होती है।

भारत सरकार ने विभिन्न शहरों में एच.आई.वी. की जाँच के लिए केन्द्र खोले है जहाँ व्यक्ति में एड्स की आशंका होने पर एच.आई.वी. संक्रमण के लिए रक्त की जाँच की जाती है तथा एड्स की जाँच के लिए एलीसा जाँच, वैस्टर्न ब्लाट जाँच एवं करपास जाँच की जाती है। एच.आई.वी. संक्रमण की जाँच के लिए रक्त की जाँच की जाती है जिसमें रक्त के श्वेत कणों एवं टी-4, टी-8 में कमी इसके संक्रमण को इंगित करता है। साथ ही, बाह्य तौर पर भी रोगी का इतिहास देखा जाता है तथा शारीरिक जाँच की जाती है। रोगी के इतिहास में किसी एड्स रोगी के साथ असुरक्षित यौन सम्पर्क, दूषित रक्त का चढ़ाया जाना अथवा शिशु का रोगी माता से पैदा होना, दूषित सिरिंजों का प्रयोग प्रमुख है। बाह्य शारीरिक जाँच में शरीर पर चकतो का मिलना एवं गिल्टियों में सूजन प्रमुख है।

पश्चिमी देशों में एच.आई.वी. एवं एड्स के मरीजों की देखभाल एक अहम् मुद्दा है। दुर्भाग्य से हमारे देश में ऐसी विचारधारा उभर नहीं पाई है। अतः हम सबको यह प्रयास करना चाहिए कि जिस मुद्दो पर विचार करें तथा अपने सक्रिय सहयोग से अपने जरूरतमन्द भाइयों और बहनों की सहायता करें।

8.8 एड्स नियन्त्रण में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका

जिन्हें एच.आई.वी. संक्रमण है या जो एड्स से प्रभावित है उन्हें हमारी देखभाल तथा सहयोग की आवश्यकता है। एड्स ऐसी बीमारी है जिसका कोई इलाज नहीं है। अज्ञानता के कारण एड्स से प्रभावित व्यक्तियों का बहिष्कार किया जाता है। परिवार में, अस्पताल में, कार्यस्थल में तथा समाज में इनका बहिष्कार किया जाता है। केयर एण्ड सपोर्ट का लक्ष्य इन लोगों को शारीरिक, मानसिक एवं डॉक्टरी सहायता उपलब्ध कराना है तथा संक्रमित लोगों के साथ होने वाले भेदभाव या बहिष्कार को रोकना है।

राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण कार्यक्रम के 1999 ई. में प्रारम्भ हुए दूसरे चरण में भारत सरकार ने पूरे देश में 25 सामुदायिक एच.आई.वी./एड्स देखरेख केन्द्र (Community HIV/AIDS Care Centres) की स्थापना की

NOTES

है। इन केन्द्रों पर एच.आई.वी./एड्स संक्रमित लोगों को मुफ्त दवाइयाँ उपलब्ध कराई जाती हैं। ये केन्द्र उन राज्य स्तरीय संगठनों को भी दवाइयाँ उपलब्ध कराते हैं जिनका चयन राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण संगठन के मानकों के अनुसार किया गया है। इन संगठनों में भी एच.आई.वी./ एड्स से जुड़े कलंक के कारण सहायता लेने वालों की संख्या कम ही रहती है। अनेक सरकारी अस्पतालों में एच.आई.वी./ एड्स से संक्रमित रोगियों हेतु वक्षीय मेडीसन (Thoracic Medicine) विभाग में अलग वार्ड बनाए गए हैं। इनमें डॉक्टरों के अतिरिक्त प्रशिक्षित परामर्शदाता भी इन रोगियों की देखरेख करते हैं तथा उन्हें सामान्य जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करते हैं।

अनेक गैर-सरकारी संगठन (NGOs) भी एच.आई.वी./एड्स की रोकथाम एवं इससे प्रभावित रोगियों की केयर एण्ड सपोर्ट के लिए पूरे देश में अभियान चलाए हुए हैं। साथ ही, एड्स ग्रसित लोगों के पुनर्वास हेतु भी अनेक गैर-सरकारी संगठन कार्य कर रहे हैं। USAID, CIDA, DFID, DANIDA, SIDA, World Bank, Clinton Foundation, European Union जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन भी इस क्षेत्र में कार्यरत गैर-सरकारी संगठनों को काफी वित्तीय सहायता उपलब्ध करा रहे हैं, इसके अतिरिक्त Gates Foundation तथा Global Fund जैसी संस्थाओं ने भी एच.आई.वी./एड्स की रोकथाम सम्बन्धी संगठनों को काफी वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने में अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की है। ऐसा अनुमान है कि नेशनल एड्स कण्ट्रोल प्रोग्राम में लगभग 32 अन्तर्राष्ट्रीय संगठन मिलकर काम कर रहे हैं।

भारत में एच.आई.वी./एड्स की रोकथाम एवं केयर एण्ड सपोर्ट के लिए जो गैर-सरकारी संगठन कार्यरत हैं उनमें दरबार महिला समन्वय कमेटी (कोलकाता), हमजिन्सी (मुम्बई), सम्पदा ग्रामीण महिला संस्था (साँगली–महाराष्ट्र), सोलिडर्टी एण्ड एक्शन अगेन्स्ट दि एच.आई.वी. इन्फेक्शन इन इण्डिया (बंगलौर), दि नाज फाउण्डेशन (नई दिल्ली), प्रिज़्म (नई दिल्ली), संगनी (नई दिल्ली), तरशी (नई दिल्ली) इत्यादि प्रमुख हैं।

भारत एच.आई.वी./एड्स से सम्बन्धित सस्ती दवाइयाँ (Antiretroviral drugs) निर्माण एवं निर्यात करने वाले सबसे बड़े देशों में से एक है। फिर भी, भारत में एच.आई.वी./एड्स की दवाइयाँ सामान्य जनता की पहुँच से बाहर हैं। दिसम्बर 2003 ई. से कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, मणिपुर तथा नागालैण्ड जैसे राज्यों में इन दवाइयों का वितरण सरकारी अस्पतालों के माध्यम से भी किया जाता है। चेन्नई में एक गैर-सरकारी संगठन ने 'होप क्लब' खोला है जिसमें एच.आई.वी./एड्स से संक्रमित रोगियों को स्वास्थ्य, भोजन एवं योग इत्यादि के बारे में उचित परामर्श दिया जाता है। अनेक अन्य गैरसरकारी संगठन भी इस प्रकार के क्लबों के निर्माण में लगे हुए हैं।

एच.आई.वी./एड्स से संक्रमित लोगों की देखभाल एवं सहायता हेतु निम्नलिखित सुझाव महत्वपूर्ण हैं–

1. राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण संगठन द्वारा संचालित कार्यक्रमों को राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर अधिक प्रभावकारी बनाना तथा आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन करना।
2. कण्डोम के प्रयोग हेतु जागरुकता बढ़ाने वाले कार्यक्रमों का प्रभावशाली ढंग से प्रचार-प्रसार करना।
3. एच.आई.वी./एड्स से सम्बन्धित सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों में उचित समन्वय बनाए रखना।
4. एच.आई.वी./एड्स से सम्बन्धित चिकित्सकीय एवं व्यावहारिक पहलुओं से सम्बन्धित जानकारियों का आदान-प्रदान करना तथा उन पर नियमित निगरानी रखना ताकि उपयोगी निर्णय लिए जा सकें।

8.9 सुरक्षात्मक कार्यक्रम

एड्स बड़ा ही भयानक रोग है और खेद है कि अनेक प्रयासों के बाद भी अभी तक इस रोग के उपचार की कोई प्रभावी औषधि नहीं बन पाई है, इस स्थिति में बचाव के उपायों को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। जहाँ तक इसके बचाव का प्रश्न है, उसके लिए भी अन्य संक्रामक रोगों के समान इस रोग से बचाव का कोई टीका अभी तक तैयार नहीं किया जा सका है भले ही विश्व के सभी वैज्ञानिक इस ओर कार्य कर रहे हैं, इस स्थिति में एड्स से बचने के लिए व्यक्तिगत स्तर पर सावधानी ही महत्वपूर्ण है, इसके लिए सबसे अधिक आवश्यक है यौन-सम्बन्धों का सुरक्षित होना। कण्डोम का उपयोग अति आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त यौन-साथियों की अनेकता, वेश्यावृत्ति, समलिंगी यौन-सम्बन्ध आदि में लिप्त न होना भी आवश्यक है। संक्रमित रक्त का संचरण नहीं होना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर रक्त संचरण से पूर्व रक्त की पक्की जाँच अवश्य होनी चाहिए। पेशेवर रक्तदाताओं पर अंकुश लगाना चाहिए तथा जनसाधारण (स्वस्थ व्यक्तियों) को स्वेच्छा से अधिक-से-अधिक रक्तदान करना चाहिए। इंजेक्शन लगाने के लिए सदैव नि:संक्रमित सुइयों तथा सिरिंजों का ही इस्तेमाल होना चाहिए, इसके लिए डिस्पोजेबल सिरिंजों का अब प्रावधान है, इसके अतिरिक्त नाक-कान आदि छिदवाते, गुदवाते, नाई से दाढ़ी-मूँछ बनवाते हुए भी सावधानी रखनी चाहिए। एड्स से बचाव के लिए व्यापक स्तर पर जन-चेतना तथा जागरूकता की आवश्यकता है। मादक-पदार्थों के आदी व्यक्तियों को उपचार की अति आवश्यकता है। वेश्यावृत्ति से जुड़े व्यक्तियों में जागरूकता तथा स्वास्थ्य के प्रति सजगता अति आवश्यक है।

NOTES

उपर्युक्त उपायों द्वारा एड्स को अधिक फैलने से रोका जा सकता है, इसके बचाव हेतु कुछ दवाइयाँ भी उपलब्ध हैं। इनमें Abacavir Succinate, Nucleoside Analog Reverse Transcriptase Inhibitors (NRTIs), Didanosine (ddI), Lamivudine (3TC), Stavudine (D4T), Zalcitabine (ddC), Zidovudine (also known as AZT) इत्यादि प्रमुख हैं। इन दवाओं से एच.आई.वी. वायरस के फैलने की गति अत्यन्त धीमी हो जाती है। वैसे आजकल 'जाइडोवूडाइन' (Zydovudine) अथवा 'ऐजोडोथाइमिडीन' (Azodothymidine–AZT) नामक पदार्थ पर परीक्षण चल रहे हैं। यह औषधि एच.आई.वी. के प्रभाव को कम करती है। चीन की जड़ी-बूटियों से तैयार की गई औषधि. 9302, ऐम्फ्रेटेरिसीन आदि एड्स की सम्भावित औषधियाँ हैं। आजकल कुछ होमियोपैथिक डॉक्टर भी एड्स के निवारण का दावा करते हैं। अमेरिका में एच.आई.वी. की आनुवंशिक प्रवृत्ति को बदलकर एड्स पर नियंत्रण पाने का प्रयास चल रहा है। अमेरिका में निर्मित इस औषधि में तीन औषधियों का मिश्रण है। ये हैं— एण्टी रेट्रोवायरल (एजीडोथिमीडिन), एन्जाइम प्रोटीन निरोधक और प्रोटीन इण्टर ल्यूकिन्स (यह मानव की प्रतिरोधी कोशिकाओं में छिपा होता है), इस औषधि को सी.डी.-4 नाम दिया गया है। अब तक अनेक रोगियों पर इसका सफल परीक्षण हो चुका है। परन्तु एड्स से बचाव का सर्वाधिक उपयोगी उपाय व्यक्तिगत सावधानियाँ तथा चिकित्सकों की सजगता है।

जीवन शैली में बदलाव द्वारा भी एच.आई.वी./ एड्स पर नियन्त्रण रखा जा सकता है। पैदल चलने, सीढ़ियों का प्रयोग करने, खाली समय में बाहर टहलने, हृदय के अनुरूप चलने, खेलकूद में भाग लेने, एरोबिक्स करने से प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। दीमागी कसरत वाले खेलों तथा नियमित योग से भी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि परस्पर हाथ मिलाने से, एक-दूसरे के वस्त्र पहनने से, छींकने से, मच्छरों के काटने से, एक साथ भोजन करने से, तरणताल में एकसाथ तैरने से, सार्वजनिक शौचालय का प्रयोग करने से एच.आई.वी./ एड्स का संक्रमण नहीं होता है।

एच.आई.वी. संक्रमण और एड्स रोग नौजवानों (युवा वर्ग) में सबसे अधिक फैलता है। विश्व में 3 करोड़ एच.आई.वी. से ग्रसित लोगों में आधे 10-24 वर्ष की आयु के हैं। प्रतिदिन 7,000 लोग एच.आई.वी. का शिकार हो रहे हैं। हमारे देश की आधी जनसंख्या 25 वर्ष से कम आयु की है। नौजवानों को एच.आई.वी. के खतरे का अर्थ है आधे देश को खतरा। यदि नौजवानों में एच.आई.वी. का विस्तार नहीं रोका गया तो इसका आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक बोझ देश से ढोया नहीं जाएगा। नौजवान, विशेष रूप से लड़के, कम आयु में ही अपनी यौनिकता को समझने और उसका इजहार करने लगते है। सिनेमा और टेलीविजन भी सैक्स उकसाने में लगे हुए हैं। उकसाने वाले लोग खतरों के बारे में युवाओं को सचेत नहीं करते हैं, इसीलिए बहुत कम युवा लोग कण्डोम का प्रयोग करते हैं। इतना ही नहीं, कम आयु और जवानी के जोश में उनके लिए अच्छे बुरे का अन्तर करना भी कठिन होता है।

भारत में 50 प्रतिशत लड़कियों का 18 वर्ष की होने से पहले ही विवाह कर दिया जाता है अर्थात् ऐसी लड़कियाँ मरजी से या जबरदस्ती कम उम्र में ही यौनिक रूप से सक्रिय हो जाती हैं। इन लड़कियों को एच.आई.वी./ एड्स होने का खतरा ज्यादा होता है। बाल मजदूरों, वेश्यावृत्ति में झौंक दी जाने वाली लड़कियों, सड़कों पर रहने एवं जीने वाले बच्चों में इसका ज्यादा खतरा रहता है। इन सबका यौनिक शोषण आम बात है।

नौजवानों को खतरा इसलिए भी ज्यादा है कि वे कण्डोम खरीदने अथवा सैक्स और एच.आई.वी./एड्स/ एस.टी.डी. के बारे में जानकारी लेने जाना भी चाहें तो डरते हैं। उन्हें डर रहता है कि पकड़े जाने पर उन्हें ऐसे शब्द सुनने पड़ेंगे– "अच्छा बच्चू, अभी से चालू हो।" जो युवक अन्य युवकों के साथ यौनिक सम्बन्ध रखते हैं उनकी और भी मुश्किल है। वे ऐसे सम्बन्धों के बारे में किसी से बात भी नहीं कर सकते क्योंकि समलैंगिकता को गलत माना जाता है। वे चोरी छिपे प्रेम करने तथा खामोश रहने को मजबूर हो जाते हैं।

नशीली दवाओं के खतरे से भी नौजवान लोग ही ज्यादा प्रभावित होते है। वे सरलता से किसी के बहकावे में आकर, कभी आनन्द या उत्तेजना की खोज में, कभी परेशानियों से बचने के लिए और कभी 'मर्द' कहलाने के लिए नशीली दवाएँ लेने लगते हैं। शुरू-शुरू में तो उन्हें मजा आता है पर जल्दी ही वे अहसास करने लगते हैं कि परेशानियों एवं गम कम होने के स्थान पर बढ़ जाते हैं। नशीली दवाइयाँ खरीदने हेतु उन्हें चोरी करनी पड़ती है, घरवालों एवं अच्छे दोस्तों से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाते हैं और मर्दानगी की जगह वे कमजोरी और बीमारी से ग्रसित हो जाते हैं।

8.10 शब्दावली

एच.आई.वी.–एच.आई.वी. एक गोल आवरणयुक्त वायरस (विषाणु) है जो मानव शरीर में रोग से बचने वाली ताकत को कम कर देता है अर्थात् प्रतिरोधक तन्त्र को कमजोर कर देता है। एड्स– एड्स एक रतिजनित भयानक रोग है जो एच.आई.वी. वायरस (विषाणु) से होता है। यह जानलेवा रोगों का एक समूह है।

प्रतिरोधक तन्त्र–प्रतिरोधक तन्त्र से अभिप्राय शरीर के उस तन्त्र से है जो रोगों से रक्षा करता है और उन्हें फैलने से रोकता है, इसका सम्बन्ध शरीर की उस रोगनाशक शक्ति से है जिससे रोग के जीवाणुओं से हमारी रक्षा होती है।

यौन संक्रमित रोग–यौन संक्रमित रोग उन रोगों को कहते हैं जो यौन सम्पर्क द्वारा फैलते है। इन रोगों में सुजाक, सिफिलिस, शैन्क्रॉइड, हरपीज़, क्लैमडिया तथा हेपीटाइटिस-बी प्रमुख हैं।

हरपीज़ –यह एक यौन संक्रमित रोग है जो एक विषाणु द्वारा फैलता है। विषाणु कमर के निचले भाग और यौनांगों को प्रभावित करता है जिससे इन पर घाव या छाले हो जाते हैं।

विण्डो पीरियड–यह एड्स होने का प्रथम सोपान है जिसमें व्यक्ति के शरीर में एच.आई.वी. का विषाणु प्रवेश करता है तो वह शरीर को संक्रमित करना प्रारम्भ कर देता है। यह वह अवधि है जो विषाणु के शरीर में प्रवेश होने से लेकर तब तक चलती है जबकि व्यक्ति में काफी एण्टीबॉडी विकसित न हो जाए।

8.11 सारांश

इस इकाई में हमने एड्स की अवधारणा, परिमाण, महामारी का उद्‌भव विकास के सोपान, परिणामों एड्स/ एच.आई.वी. से संबंधित जानकारी उपलब्ध करायी है। यह रोग किसी आयु समूह में हो सकता है। किशोर को सुरक्षित यौन सम्बन्ध के बारे में विचार-विमर्श किया है।

8.11 अभ्यास प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. एड्स किसे कहते है? एड्स एवं एच.आई.वी. में अन्तर बताइए।
2. एड्स फैलने के प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए।
3. एड्स से आप क्या समझते हैं? एड्स की महामारी के उद्‌भव की विवेचना कीजिए।
4. एड्स से ग्रसित व्यक्तियों की देखभाल कैसे की जा सकती है?
5. एड्स नियन्त्रण में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका की समीक्षा कीजिए।

NOTES

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. एड्स नियन्त्रण हेतु सुरक्षात्मक कार्यक्रमों की विवेचना कीजिए।
2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–
   (अ) एड्स के विकास के सोपान
   (ब) प्रतिरक्षा प्रणाली
   (स) एड्स का पूर्ववर्ती एवं पश्चवर्ती परीक्षण
   (द) वी.सी.टी.सी.।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. एड्स के विकास के कितने सोपान हैं–
   (अ) चार (ब) तीन (स) दो (द) एक

उत्तर 1. (ब)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Alan Cantwell Jr, Queer Blood : **The Secret AIDS Genocide Plot,** Los Angeles : Aries Rising Press, 1993.

Elinor Burkett, **The Gravest Show on Earth: America in the Age of AIDS,** Boston : Houghton Mifflin, 1995.

Peter H. Duesberg, **Infectious AIDS : Stretching the Germ Theory Beyond its Limits,** Berkeley, CA : North Atlantic Books, 1996.

●●●

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

अध्याय–9 भिक्षावृत्ति एवं वेश्यावृत्ति
(BEGGARY & PROSTITUTION)

NOTES

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 भिक्षावृत्ति
9.3 भिक्षुकों के प्रकार
9.4 भिक्षा माँगने की विधियाँ
9.5 भिक्षावृत्ति के कारण
9.6 भिक्षावृत्ति का उन्मूलन
9.7 असामाजिक समूह
9.8 वेश्यावृत्ति का अर्थ एवं परिभाषाएँ
9.9 वेश्यावृत्ति के प्रमुख कारण
9.10 वेश्याओं के प्रमुख प्रकार
9.11 वेश्यावृत्ति के प्रमुख परिणाम
9.12 भारत में वेश्यावृति पर नियंत्रण के प्रयास
9.13 शब्दावली
9.14 सारांश
9.15 अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य भिक्षावृत्ति व वेश्यावृत्ति की अवधारणा को समझना है।

9.1 प्रस्तावना

नगरीय समाज में बढ़ती हुई समस्याओं के परिणामस्वरूप विद्वानों व समाजशास्त्रियों का इन समस्याओं के प्रति रूचि बढ़ी है। नगरीय समाज में प्राथमिक समूहों द्वारा नियंत्रण की शीतलता व्यक्तिवादिता, भौतिकवादी संस्कृति को सामाजिक समस्याओं में वृद्धि के लिए उत्तरदायी माना जाता है इसलिये समाज को समझने हेतु विभिन्न सामाजिक समस्याओं को समझना आवश्यक है।

9.2 भिक्षावृत्ति

निर्धनता व्यक्ति को क्या-क्या करने के लिए विवश नहीं करती? रोटी, कपड़ा और मकान जैसी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर भावुक व्यक्ति आत्महत्या तक कर लेते हैं। कुछ चोरी करने लगते हैं, कुछ गैर-सामाजिक कार्यों में लिप्त होने लगते हैं तथा अन्य विवश होकर भीख माँगने लगते हैं। पेट भरने के लिए

दूसरों के आगे हाथ फैलाने को ही भिक्षावृत्ति कहते हैं। भिक्षावृत्ति एक ऐसे व्यक्ति की 'वृति' है जिसके जीविकोपार्जन का कोई आधार नहीं है तथा जो भीख माँगने के लिए दर-दर घूमता है या सार्वजनिक स्थलों पर दिखाई देता है। अनेक भिखारी तो दाता की करूणा जाग्रत करने के लिए अपने शरीर के फोड़े, घाव, शारीरिक रोग या विकृतियों का प्रदर्शन भी करते हैं। भिक्षुक (भिखारी) वह व्यक्ति है जो भिक्षा माँगता है या ऐसे कार्य करता है जिससे उसे दूसरों की सहानुभूति और उसके बदले में कुछ मिल सके। भिक्षावृत्ति की परिभाषा के अन्तर्गत स्वयं भीख माँगना अथवा दूसरों से मँगवाना, बच्चों को बटोरकर उनके माध्यम से भीख माँगना-मँगवाना, सीधे-सादे ढंग से अथवा घुमा-फिराकर, चालबाजी एवं बहानेबाजी से भीख माँगना तथा भीख को जीविका का साधन बना लेना सम्मिलित है, इस प्रकार, भिक्षावृत्ति में निम्नलिखित तीन बातों का समावेश होता है—

1. दर-दर घूमकर अथवा किसी सार्वजनिक स्थान पर बैठकर, लेटकर या खड़े होकर भीख माँगना,
2. रोकर, गिड़गिड़ाकर अथवा अपने अंगों की विकृति का प्रदर्शन कर दाताओं की करूणा जाग्रत कर उनसे आर्थिक सहायता प्राप्त करना तथा
3. जीविका के उपार्जन का अन्य कोई साधन न होना।

9.3 भिक्षुकों के प्रकार

भिक्षुक अनेक प्रकार के होते हैं। सामान्य रूप से इन्हें निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—

1. **बाल भिक्षुक**–अनेक बड़े एवं पेशेवर भिक्षुक बच्चों को इस पेशे में धकेल देते हैं तथा उनको मिलने वाली आय का बहुत बड़ा भाग स्वयं ले लेते हैं। अनाथ या गरीब बच्चों को पालकर उनसे भीख मँगवाकर अनेक भिखारी अपनी जीविका चलाते हैं। बाल भिक्षुकों की दशा अत्यन्त शोचनीय होती है क्योंकि इनका अत्यधिक शोषण किया जाता है। कई बार मन्दबुद्धि एवं शारीरिक व मानसिक रूप से हीन बच्चों को शारीरिक यातनाएँ देकर भीख माँगना सिखाया जाता है। बाल भिक्षुक अनेक असामाजिक एवं गैर-कानूनी कार्य भी करने लगते हैं।

2. **शारीरिक रूप से दोषयुक्त भिक्षुक**–भिक्षुकों की इस श्रेणी में उन्हें सम्मिलित किया जाता है जो अन्धे, लूले, लंगड़े, गूँगे एवं बहरे होते हैं। शारीरिक दोष होने के कारण ऐसे व्यक्ति कोई अन्य कार्य आसानी से नहीं कर सकते इसलिए सरलता से भिक्षावृत्ति की ओर आकर्षित हो जाते हैं।

3. **मानसिक रूप से दोषयुक्त भिक्षुक**– इस श्रेणी के भिक्षुकों में मानसिक रूप से अक्षम या मन्दबुद्धि लोगों को सम्मिलित किया जाता है। जब मानसिक रूप से दोषयुक्त व्यक्ति को जीविकोपार्जन का कोई साधन दिखाई नहीं देता तो वह भिक्षावृत्ति का सहारा लेता है।

4. **रोगग्रस्त भिक्षुक**–रोगग्रस्त भिक्षुकों की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती है क्योंकि वे कोढ़, यौन रोग, मिर्गी, तपेदिक तथा चर्म रोग जैसे गम्भीर रोगों से पीड़ित होते हैं। ये लोग भीख माँगने के साथ ही इन रोगों के प्रसार का कारण भी बन जाते हैं।

5. **स्वस्थ भिक्षुक**–जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस श्रेणी के भिक्षुक हट्टे-कट्टे, स्वस्थ एवं काम करने की क्षमता रहते हुए भी इस पेशे को लाभप्रद मानते हुए इसमें लग जाते हैं। आलसी होना, परम्परागत रूप से इस पेशे को अपनाना, अशिक्षित होने के कारण कोई काम न मिल पाना ऐसे कारण हैं जो स्वस्थ व्यक्ति को ही भिक्षावृत्ति के लिए ही विवश कर देते हैं।

6. **धार्मिक भिक्षुक**–इस श्रेणी के भिक्षुकों में उन्हें सम्मिलित किया जाता है जो धर्म के नाम पर भिक्षा माँगते हैं। वैरागी, सांई, योगी, फकीर इत्यादि इस श्रेणी के उदाहरण हैं। बहुधा धार्मिक भिक्षुक बनावटी भी हो सकते है जो साधू का वेश बनाकर भिक्षा प्राप्त करने का प्रयास करते है।

उपर्युक्त भिक्षुकों के अतिरिक्त अनेक खानाबदोशों के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमकर भीख माँगने, अस्थायी या स्थायी रूप से बेकार परन्तु काम करने योग्य भिक्षुक, अस्थायी या स्थायी रूप से बेकार परन्तु काम करने के अनिच्छुक भिक्षुक आदि को भी भिक्षा माँगते हुए देखा जा सकता है।

1. भिक्षावृत्ति से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

2. भिक्षुओं के प्रकार समझाइये?

....

....

....

9.4 भिक्षा माँगने की विधियाँ

भिक्षा माँगने के लिए अनेक प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार है—

1. रो-रोकर अपने कष्ट, संकट या दुर्भाग्य की कथा सुनाकर,
2. विकृत अंग दिखाकर,
3. तितिक्षा दिखाकर (जैसे काँटों के बीच लेटकर या एक पाँव के बल पर खड़ा होकर अपनी सहनशक्ति का प्रदर्शन कर),
4. आशीर्वाद देकर (जैसे तेरा बेटा जिए, तेरा सुहाग अमर रहे आदि),
5. चमत्कार दिखाकर (जैसे जटाओं में से कुछ निकालकर अथवा खाली हाथ दिखाकर उसमें कुछ निकालकर चमत्कृत करना),
6. भूतकाल की बातें बताकर भविष्यवाणी करना,
7. गिड़गिड़ाकर पैर पकड़ लेना,
8. धर्म के नाम पर (जैसे कुआँ, मन्दिर, धर्मशाला, गौशाला, कथा-कीर्तन, रामायण का पाठ, दैवी प्रकोप से रक्षा आदि के नाम पर),
9. डाँट-डपटकर, धमकी देकर अथवा श्राप देकर डराना तथा
10. नाच-कूदकर अथवा कलाबाजी दिखाकर।

9.5 भिक्षावृत्ति के कारण

भिक्षावृत्ति के प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं—

1. आर्थिक कारण–भिक्षावृत्ति का प्रमुख कारण आर्थिक है। दरिद्रता एवं निर्धनता को अनेक बुराइयों की जड़ माना जाता है। भिक्षावृत्ति इसमें अपवाद नहीं है। निर्धनता के अतिरिक्त रोजगार न मिलना तथा इस व्यवसाय द्वारा आसानी से होने वाला लाभ भी ऐसे आर्थिक कारण हैं जो भिक्षावृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं।

2. धार्मिक कारण–धार्मिक कारण भी भिक्षावृत्ति को बढ़ावा देते हैं। साधू या फकीर बनकर धर्म के नाम पर पैसा ऐंठने लगते हैं। चूँकि धार्मिक विश्वासों के अनुसार भिक्षा देना पुण्य का कार्य है, इसलिए लोग सरलता से भिक्षा दे देते हैं। घर-घर जाकर अथवा मन्दिरों, मसजिदों, गुरुद्वारों तथा धर्मशालाओं के पास बैठकर ऐसे भिक्षुकों को देखा जा सकता है।

3. जैवकीय कारण–अस्वस्थ, बीमार या शारीरिक रूप से अपंग, मानसिक रूप से बीमार विकृत मस्तिष्क वाले, पागलपन आदि ऐसे जैवकीय कारण हैं जो भिक्षावृत्ति के साथ जुड़े हुए हैं। चूँकि इन व्यक्तियों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति ठीक न होने के कारण इन्हें रोजगार मिलना सम्भव नहीं हो पाता, इसलिए वे भिक्षावृत्ति द्वारा अपना जीविकोपार्जन करने लगते हैं।

4. सामाजिक कारण–अनेक सामाजिक कारण भी भिक्षावृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं। इन कारणों में पारिवारिक विघटन, माता-पिता के नियन्त्रण का अभाव आदि प्रमुख है।

5. अन्य कारण–भिक्षावृत्ति के अन्य कारणों में आलस्य को प्रमुख माना जाता है। दिल्ली स्कूल ऑफ सोशल वर्क द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि भारत में भिखारियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। 2004 ई. में लगाए गए अनुमान के अनुसार केवल दिल्ली में इनकी संख्या 60,000 से अधिक थी। मुम्बई में यह संख्या लगभग 3,00,000, कोलकाता में 75,000 तथा बंगलूरू में 56,000 है। 2005 ई. में कॉउन्सिल ऑफ ह्यूमन वैलफेयर के अनुमानानुसार हैदराबाद में प्रत्येक 354 व्यक्तियों में एक भिखारी था। भिक्षावृत्ति की समस्या निर्धनता एवं बेरोजगारी से जुड़ी हुई है। दिल्ली स्कूल ऑफ सोशल वर्क द्वारा दिल्ली में भिखारियों पर किए गए अध्ययन के आधार पर इसके निम्नलिखित प्रमुख कारण स्पष्ट होते हैं–

1. शारीरिक या आर्थिक असमर्थता,
2. परिवार के धन्धे का न चल पाना या रोजी-रोटी कमाने वाले की मृत्यु हो जाना,
3. पालन-पोषण करने वाले द्वारा त्याग दिया जाना,
4. कोढ़ जैसे रोग का शिकार होना,
5. धार्मिक व्यवस्था,
6. दूसरों से प्रेरणा,
7. माता-पिता या संरक्षक की मृत्यु,
8. पारिवारिक परम्परा या विरासत के कारण,
9. प्राकृतिक प्रकोप तथा
10. अपर्याप्त आय एवं अन्य अज्ञात कारण।

9.6 भिक्षावृत्ति का उन्मूलन

भिक्षावृत्ति को वैयक्तिक विघटन का द्योतक माना जाता है। यह एक ऐसी समस्या है जिसके उन्मूलन हेतु अनेक कदम उठाए गए हैं, इसके बावजूद भिक्षावृत्ति में निरन्तर वृद्धि हो रही है। अनेक राज्यों ने भिक्षावृत्ति उन्मूलन हेतु अधिनियम पारित किए है परन्तु वे पर्याप्त नहीं हैं। भिक्षुकों के पुनर्वास की कोई व्यवस्था न होने के कारण कानून प्रभावहीन बन गए हैं, इस समस्या के समाधान हेतु सभी राज्यों में एक समान अधिनियम बनाए जाने चाहिए तथा भिखारियों के पुनर्वास की योजनाओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, इस कार्य में गैर-सरकारी संगठनों को ही सम्मिलित किया जाना चाहिए, इसके लिए अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रयासों की आवश्यकता है। अल्पकालीन प्रयासों में जो भिक्षुक आज हैं उनकी समस्याओं पर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है। उनका पुनर्वास प्राथमिकता के आधार पर किया जाना चाहिए। दीर्घकालीन उपायों में कोई बच्चा या बड़ा भिक्षुक न बने इसके लिए उन परिस्थितियों का निवारण करना पड़ेगा जो भिक्षावृत्ति को बढ़ावा देती हैं।

9.7 असामाजिक समूह

नगरीय समाजों में असामाजिक अथवा गैर-सामाजिक समूहों की संख्या में वृद्धि भी चिन्ता का विषय है। यह वह समूह है जो ऐसे कार्यों में लगे होते है जिन्हें समाज अथवा कानून मान्यता प्रदान नहीं करता। वस्तुत: प्रत्येक समाज में ऐसे व्यक्ति और समूह विद्यमान होते हैं जो सामाजिक आदर्शों का अनुपालन ही नहीं करते। भारत में सरकार द्वारा प्रतिवर्ष चोरी, डकैती, आत्महत्या, नशाखोरी, जुआ, बलात्कार आदि के सम्बन्ध में आँकड़े

प्रकाशित किए जाते हैं। ऐसा सभी समाजों में होता है। फैशन या नई जीवन शैली के नाम पर अनेक ऐसे व्यवहार भी होते हैं जो समाज के प्रचलित आदर्शों के अनुरूप नहीं होते। समाज भी उन्हें अपराध की संज्ञा नहीं देता वरन् अपनी अप्रत्यक्ष सहमति से बने रहने देता है, इससे यह स्पष्ट होता है कि विचलन के प्रति समाज की प्रतिक्रियाएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं।

इंकलिस जैसे समाजशास्त्रियों की मान्यता है कि असामाजिक समूहों द्वारा किया जाने वाला विचलन समाज की कड़ी प्रतिक्रिया का विषय बन जाता है और समाज इसे रोकने या नियन्त्रित करने के लिए तत्पर हो उठता। दूसरे शब्दों में, इन समूहों का व्यवहार समाज के प्रमुख मूल्यों की दृष्टि से हटकर ही नहीं है वरन् अपकारी भी होता है। असामाजिक समूहों द्वारा किए जाने वाले कार्यों एवं व्यवहार प्रतिमानों में उन्हें सम्मिलित किया जाता है जो समाज के अन्य सदस्यों द्वारा असाधारण, अप्राकृतिक, अप्रचलित व अनैतिक समझे जाते हैं या वे कार्य एवं व्यवहार सीधे और साफ नहीं समझे जाते। शैल्डन के मतानुसार वे लोग; जो अत्यधिक भावुक, फुर्तीले और जल्दबाजी करने वाले होते हैं और काम करने में तनिक भी विचार नहीं करते कि वे क्या कर रहे हैं; अपराध की ओर अधिक प्रवृत्त होते हैं। ऐसे व्यक्ति संगठित रूप से गिरोह भी बना लेते हैं जो गैर-सामाजिक एवं गैर-कानूनी कार्यों में लिप्त हो जाता है। गैरसामाजिक समूह के सदस्यों द्वारा किए जाने वाले कार्यों की जैविक आधार पर व्याख्या देने का प्रयास किया गया है। परन्तु आधुनिक अनुसन्धानों ने जैविक व्याख्याओं की असत्यता को सिद्ध कर दिया है और घोषित किया है कि कोई भी व्यक्ति अपराधी या असामाजिक कार्य करने वाला पैदा नहीं होता वरन् अपराधी बनता है अथवा असामाजिक कार्य करना सीखता है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस बात पर तो प्रकाश डालते हैं कि असामाजिक कार्य करने वाले व्यक्तियों की मनोदशा कैसी होती है, परन्तु वे इस बात को स्पष्ट नहीं कर पाते कि एक ही मनोस्थिति में दो व्यक्ति अलग-अलग व्यवहार क्यों करते हैं, इसी भाँति, वे यह भी स्पष्ट नहीं कर पाते कि एक ही समाज में प्राय: प्रतिवर्ष अपराध की एक-सी दरें क्यों होती हैं। समाजशास्त्रीय स्पष्टीकरणों ने इन प्रश्नों पर प्रकाश डाला है। वास्तव में, असामाजिक समूहों द्वारा किए जाने वाले विचलन का अध्ययन दुर्खीम द्वारा ही प्रारम्भ कर दिया गया था जब उन्होंने अपनी 'सामाजिक अप्रतिमानता' (Social anomie) की व्याख्या प्रस्तुत की। मर्टन ने उनकी विचारधारा को ओर आगे बढ़ाया है। उनके अनुसार सामाजिक संरचना अपने सदस्यों के सम्मुख व्यवहार के लिए सांस्कृतिक लक्ष्य ही प्रस्तुत नहीं करती वरन् उनकी प्राप्ति के लिए संस्थागत साधनों को भी निर्धारित कर देती है। यदि कोई व्यक्ति या समूह संस्कृति द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में संस्थागत उपायों को ही अपनाता है तो वह अनुपालन कर रहा होता है। अन्य परिस्थितियों में अप्रतिमानता की स्थिति होती है जोकि गैर-सामाजिक एवं विचलित व्यवहार की ओर ले जाती है।

असामाजिक समूहों के असामान्य व्यवहार को विचलित व्यवहार कहते हैं। अन्य शब्दों में, यह एक ऐसा व्यवहार है जो समाज के सदस्यों के सामान्य व्यवहार से अलग है। विचलित व्यवहार का अर्थ समाज के भिन्न वर्गों के लिए भिन्न-भिन्न हो सकता है तथा इसीलिए इसकी परिभाषा उस समूह द्वारा दी जाती है जो सामाजिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक दृष्टि से प्रबल है। सामान्यत: सामाजिक रूप से विचलित व्यक्ति उसे कहते हैं जो समूह, संगठन, संस्था अथवा समाज के व्यवहार के सामाजिक नियम या कानून को तोड़ता है। अत: यह एक ऐसा व्यवहार है जो पहले तो खतरनाक नहीं होता अपितु बाद में अपराधों को प्रोत्साहन दे सकता है। समाजशास्त्र की जिस शाखा में गैर-सामाजिक अथवा विचलित व्यवहार का अध्ययन किया जाता है उसे 'विचलित व्यवहार का समाजशास्त्र' कहा जाता है। प्रो. सुशील चन्द्र ने भारत में विचलन के समाजशास्त्र में तीन प्रमुख पहलुओं को सम्मिलित किया है। ये हैं—

1. बाल निराश्रयता (Juvenile destitution),
2. भिक्षावृत्ति (Beggary) तथा
3. जातीय दूरी तथा पृथक्करण (Caste distance and segregation)

के. एस. शुक्ला ने 'भारतीय समाज विज्ञान अनुसन्धान परिषद्' (Indian Council of Social Science Research) के लिए लिखे 'प्रवृत्ति लेख' में विचलित व्यवहार के समाजशास्त्र में निम्नांकित पहलुओं को सम्मिलित किया है—

1. पुरुषों में विचलन,
2. स्त्रियों में विचलन,

3. बालकों में विचलन, 4. आत्महत्या,

5. गैर-अधिसूचित समुदाय तथा विचलन, 6. मादक द्रव्य व्यसन तथा मद्यपान तथा

7. सुधार।

NOTES

नगरों की ढीली कानून व्यवस्था असामाजिक समूहों को बढ़ावा देती है। असामाजिक समूह लोगों में असुरक्षा की भावना विकसित कर देते हैं। अत: आवश्यकता इस बात की है कि इन समूहों पर कानून तथा सामाजिक दबाव द्वारा नियन्त्रण रखा जाए तथा उन कारणों को दूर करने का प्रयास किया जाए जो व्यक्तियों को सामूहिक रूप से गैर-सामाजिक एवं गैर-कानूनी कार्य करने के लिए विवश कर देते हैं।

बोध प्रश्न

1. भिक्षा माँगने की विधियों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

2. असामाजिक समूहों को बताइये।

....

....

....

9.8 वेश्यावृत्ति

स्त्री द्वारा पैसे के लिए शरीर बेचना अथवा अपने सतीत्व का व्यवसाय करना वेश्यावृत्ति कहलाता है। वेश्या के लिए गणिका, पुश्चली, अभिसारिका तथा भोग्या आदि अपमानजनक सम्बोधनों का भी प्रयोग किया जाता है। वेश्यावृत्ति एक ऐसा सामाजिक कलंक है जोकि आदिकाल से ही किसी ने किसी रूप से हमारे तथा अन्य समाजों में चला आ रहा है। अत: इसे संसार का सबसे पुराना व्यापक व्यापार माना जाता है। वेश्या शब्द का प्रयोग मुख्यत: उन स्त्रियों के लिए किया जाता है जो पैसे के लिए अपना शरीर बेचती हैं। वेश्यावृत्ति की समस्या भी भारत में एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। एक अनुमान के अनुसार भारत में 15 मिलियन वेश्याएँ हैं जिनमे से अधिकांश संक्रामक रोगों तक की शिकार हो चुकी है। केवल मुम्बई में ही इनकी संख्या एक लाख है। पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा तथा कर्नाटक में इनकी संख्या लाखों में है। असम में लगभग 75 हजार, मणिपुर और नागालैंड में 50—50 हजार और मिजोरम तथा अरुणाचल प्रदेश में 25—25 हजार वेश्याएँ हैं। वेश्याओं में 30 प्रतिशत 20 वर्ष से भी कम आयु की हैं तथा 40 प्रतिशत 20 से 30 वर्ष की आयु की हैं। 15 प्रतिशत वेश्याएँ तो 12 वर्ष से कम आयु में यह धन्धा करने हेतु विवश कर दी जाती हैं। अनेक वेश्याओं को इस धन्धे में लाने वाले उनके नातेदार होते हैं।

9.8.1 वेश्यावृत्ति का अर्थ एवं परिभाषाएँ

पैसे के लिए स्त्री द्वारा यौवन व शरीर को बेचना वेश्यावृत्ति कहा जाता है। अत: स्त्री द्वारा पैसे के लिए सतीत्व का व्यवसाय ही वेश्यावृत्ति कहलाता है तथा इसमें संवेगात्मकता का प्राय: अभाव पाया जाता है। यह एक सामाजिक बुराई है जिसमें साधारणत: असहाय या धनलोलुप स्त्रियाँ धन या कोई अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से पर-पुरुषों के साथ सम्बन्ध स्थापित करती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार वेश्यावृत्ति लेन-देन का मामला है जिसमें वेश्या या किसी दूसरी पार्टी द्वारा धन या आर्थिक महत्व की किसी चीज के बदले सेक्स सेवा प्रदान की जाती है। यह मुख्य रूप से सामाजिक घटना है जो आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक, व्यावहारिक और कानूनी तत्वों से जुड़ी हुई है। यह सक्रिय और अनुकूल होती है और इसमें कम से कम दो व्यक्तियों की पारस्परिक

और आन्तरिक भागीदारी होती है– प्रथम, वेश्या या सेक्स कामगार, जो सेवा देती है, तथा द्वितीय, ग्राहक जो सेक्स सेवाएँ खरीदता है।

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ दि सोशल साइन्सेज (Encyclopaedia of the Social Sciences) में वेश्यावृत्ति की परिभाषा इन शब्दों में दी गई है, "वेश्यावृत्ति आदतन या कभी बिना किसी भेदभाव के हर व्यक्ति के साथ धन के लिए किया गया लैंगिक सहवास है।" इलियट तथा मैरिल (Elliott and Merrill) के अनुसार, "वेश्यावृत्ति को बहुधा परिभाषित किया गया है, परन्तु सभी परिभाषाओं में यह सहमति है कि यह व्यवहार अवैध यौन सम्बन्ध है जो पैसे के लिए अनेक व्यक्तियों से किया जाता है और जिसमें प्रेम उद्वेगों का सर्वथा अभाव रहता है।" स्कॉट (Scott) ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "जो भी व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) किसी भी प्रकार के लाभ (आर्थिक अथवा अन्य) के लिए अथवा किसी प्रकार के निजी सन्तोष के लिए, पूर्ण अथवा अर्द्ध समय के व्यवसाय के रूप में, अनेक व्यक्तियों के साथ, चाहे वे पुरुष हों या स्त्री, सामान्य अथवा असामान्य यौन सम्बन्ध स्थापित करता है, उसे वेश्या कहते हैं।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेश्यावृत्ति धन के लाभ के लिए किया गया यौन सम्बन्ध है जिसमें उद्वेगों का अभाव रहता है, इसमें परस्पर प्रेम या भावात्मक लगाव की कोई गुंजाइश नहीं होती, बल्कि पैसा चुकाने वालों को यौन-तृप्ति प्रदान की जाती है, और कोई दायित्व या लगाव इसके साथ जुड़ा हुआ नहीं होता है। भारत में सन् 1956 में पारित 'स्त्री तथा कन्याओं के अनैतिक व्यापार निरोध अधिनियम' में वेश्या उस स्त्री को माना गया है जो धन अथवा किसी अन्य वस्तु के विनिमय में अवैध यौन सम्बन्धों के लिए अपना शरीर बेचती है। अपने शरीर को इस प्रकार अवैध सम्बन्ध के लिए अर्पित करना वेश्यावृत्ति है, इस विवेचन से वेश्यावृत्ति के तीन प्रमुख तत्वों का पता चलता है–

1. धन के लोभ के लिए अथवा किसी अन्य वस्तु (यथा वस्त्र, आभूषण, जमीन-जायदाद आदि) के लिए अपना शरीर यौन सन्तुष्टि के लिए अर्पित करना,
2. यौन सन्तुष्टि में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करना (अर्थात् वेश्या द्वारा बिना किसी भेदभाव के हर व्यक्ति से लैंगिक सहवास करना) तथा
3. संवेगात्मकता का अभाव अर्थात् प्रेम, स्नेह, सद्भाव जैसे उद्वेगों का पूर्णत: अभाव।

9.9 वेश्यावृत्ति के प्रमुख कारण

वेश्यावृत्ति के कारणों के बारे में सामाजिक विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। परन्तु यह समस्या सभी देशों में विद्यमान है और आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक कारण इसके लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी माने जाते हैं। कुछ स्त्रियाँ खुद भी वेश्यावृत्ति में आ जाती हैं, जबकि कुछ इसमें जबरदस्ती धकेल दी जाती हैं। अधिकतर वेश्याएँ विभिन्न कारणों से इस धन्धे में आती हैं। वेश्यावृत्ति के मुख्य कारण अग्रलिखित हैं–

1. आर्थिक कारण–वेश्यावृत्ति का सबसे प्रमुख कारण गरीबी है। निर्धनता के कारण जब स्त्री अपना तथा अपने पर आश्रित व्यक्तियों का निर्वाह करने में असमर्थ हो जाती है तो वह इसे एक व्यवसाय के रूप में अपना लेती है। कई बार भोली-भाली लड़कियों को नगरों तथा गाँवों से नौकरी के बहाने लाकर वेश्याएँ बना दिया जाता है। निर्धनता, स्त्री की आर्थिक पराधीनता, नौकरी की दयनीय स्थितियाँ, ऊँचे जीवन-मान का मोह, विलासी वातावरण व औद्योगीकरण कुछ ऐसे आर्थिक कारण हैं जो वेश्यावृत्ति के लिए उत्तरदायी बताए गए हैं।

2. पारिवारिक कारण–अधिकतर लड़कियाँ पारिवारिक विघटन के कारण वेश्याएँ बन जाती हैं। वेश्याओं के अध्ययन से पता चलता है कि अधिकांशत: वेश्याएँ वे लड़कियाँ होती हैं जो अनाथ होती हैं अथवा जिनका पालन-पोषण माता-पिता न करके किसी अन्य सम्बन्धी ने किया है, जिनके माता-पिता सामाजिक कुरीतियों (जैसे शराब पीना या जुआ खेलना इत्यादि) के शिकार हैं, जिनका जीवन तनावपूर्ण रहा है तथा जिनका समाजीकरण ठीक तरह से नहीं हो पाया है। पारिवारिक नियन्त्रण की कमी, मातापिता अथवा संरक्षक का दुर्व्यवहार तथा पति का द्वेषपूर्ण व्यवहार कुछ ऐसे कारण हैं जो वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं।

3. मनोवैज्ञानिक कारण–अधिकतर वेश्याएँ अज्ञानता व मनोवैज्ञानिक कारण से इस व्यवसाय को अपनाती हैं। ओन फेहर ने अपने अध्ययन में एक-तिहाई वेश्याओं को मानसिक रूप में दोषी पाया। परिवार में कम प्यार

मिलने के कारण कई लड़कियों में चिड़चिड़ापन आ जाता है तथा उनमें आत्मविश्वास की कमी रह जाती है जिसके कारण उनका व्यक्तित्व मानसिक रोगों के रूप में विकसित होता है तथा वे इस तरह के कार्यों को अपनाती हैं। मन्दबुद्धि, मनोविकृति तथा प्रतिशोध की भावना वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन देने वाले मनोवैज्ञानिक कारण हैं।

4. अपराधी संस्कृति–कई स्त्रियाँ अभद्र पड़ोस होने के कारण अथवा ऐसी संस्कृति में पलने के कारण, जहाँ इस तरह के अनैतिक व्यवसाय करने की शिक्षा दी जाती है, वेश्याएँ बन जाती हैं। ऐसी संस्कृति में, जहाँ चौबीसों घण्टे शराब और जुआ, ताड़ी और मादक द्रव्य, अनैतिकता और वेश्यावृत्ति चलती हो, वहाँ सच्चरित्र बने रहना कठिन है। लड़कियाँ विवाह से पूर्व अवैध शारीरिक सम्बन्धों को स्थापित करती हैं।

5. जैविक कारण–अनेक जैविक कारण, जैसे कि माता-पिता अथवा संरक्षक की उच्छृंखल वृत्ति, असामान्य कामुकता तथा पति की नपुंसकता आदि भी वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं। उदाहरणार्थ, व्यभिचारी व अनैतिक आधार वाले माता-पिता व संरक्षक अपनी सन्तान को स्वयं पतन की ओर अग्रसर करते हैं।

6. धार्मिक कारण–भारत जैसे देश में कुछ धार्मिक कारण भी वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं। उदाहरणार्थ, देवताओं को अर्पित कन्याएँ (देवदासियाँ), साधु-सन्तों के वेश में घूमने वाले अनेक धूर्तों द्वारा भोली-भाली स्त्रियों को बहकाकर उनका सतीत्व नाश करना अथवा धार्मिक रूढ़ियाँ इस वृत्ति को प्रोत्साहन देती हैं।

7. सामाजिक कारण–अनेक सामाजिक कारण, जैसे सामाजिक कुरीतियाँ विधवाओं की दुर्दशा, दोहरा मापदण्ड तथा पुरुष की प्रभुता इत्यादि भी वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन देते है। उदाहरणार्थ, बालविवाह, बहुविवाह, वृद्धविवाह, बेमेल विवाह आदि कुरीतियाँ, परिवार में विधवाओं की दुर्दशा आदि स्त्री को अपमानजनक, तिरस्कारपूर्ण व आर्थिक तंगी का जीवन व्यतीत करने के लिए विवश करते हैं जिसके परिणामस्वरूप कुछ स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति की ओर अग्रसर हो जाती हैं।

8. अन्य कारण–वेश्यावृत्ति के अनेक अन्य कारण है जैसे कि कामुक साहित्य, रात्रि को काफी लम्बे समय से माता-पिता या पति की अनुपस्थिति, अज्ञानता, अवैध रूप से गर्भवती हो जाने के कारण, उत्तेजना भरे दृश्य तथा चित्र इत्यादि। इनके कारण भी कई लड़कियाँ गलत रास्ते पर चल पड़ती हैं तथा पुरुषों के साथ अनैतिक सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं। ये सम्बन्ध बाद में उन्हें वेश्यालयों में ला खड़ा करते हैं।

बोध प्रश्न

1. वेश्यावृत्ति का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

   ....

   ....

2. वेश्यावृत्ति के प्रमुख कारणों को बताइये।

   ....

   ....

9.10 वेश्याओं के प्रमुख प्रकार

वेश्यावृत्ति का एक रूप नहीं है अपितु यह अनेक रूपों में फैली हुई है। वेश्याओं के प्रमुख प्रकार निम्नांकित हैं–

1. वेश्यागृह (कोठे) पर बैठने वाली वेश्याएँ–इस श्रेणी की वेश्याएँ संगठित रूप से वेश्यावृत्ति का धन्धा करती है तथा लोग इनके बारे में जानकारी रखते हैं। 'लाल बत्ती' वाले क्षेत्रों में रहने वाली वेश्याएँ इस श्रेणी की उदाहरण है।

2. प्रच्छन्न वेश्याएँ– इस श्रेणी की वेश्याओं, जैसा कि श्रेणी के नाम से ही स्पष्ट है, को पहचान पाना सम्भव नहीं होता। ये ऊपर से तो पारिवारिक जीवन व्यतीत करती हैं परन्तु इनकी आजीविका का मुख्य साधन वेश्यावृत्ति का धन्धा होता है। इनके दलाल तांगे वाले व रिक्शा-टैक्सी वाले होते हैं जो ग्राहकों को लाने ले जाने का कार्य करते है। कॉलगर्ल्स भी इसी श्रेणी की वेश्यावृत्ति के लिए बने निर्धारित स्थल (सामान्यत: होटल या निजी मकान) पर निर्धारित समय पर पहुँच कर वेश्यावृत्ति करती हैं।

NOTES

3. **कैरियर वेश्याएँ**–ये वेश्याएँ केवल कुछ अत्यन्त धनवान एवं सम्मानित लोगों के साथ ही वेश्यावृत्ति करती हैं और इसलिए इनकी स्थिति अन्य वेश्याओं से ऊँची होती है और कमाई भी अधिक होती है।

4. **वासनापीड़ित वेश्याएँ**–इस श्रेणी में उन वेश्याओं को सम्मिलित किया जाता है जो कुछ जैविक अथवा परिस्थितीय कारणों द्वारा अपनी तीव्र वासना पूर्ति के लिए इस धन्धे को अपनाती हैं। इनमें निम्न वर्ग से लेकर सम्पन्न एवं उच्च वर्ग के परिवारों से आने वाली इस धन्धे में लिप्त लड़कियाँ सम्मिलित हैं।

5. **व्यावसायिक क्षेत्र की वेश्याएँ**–इसमें होटलों की वेश्याएँ अथवा अन्य व्यावसायिक केन्द्रों (यथा कल्ब, नृत्यशाला, मालिश भवन, थियेटर, मदिरालय आदि) में धन्धा करने वाली वेश्याएँ सम्मिलित हैं, इस श्रेणी की वेश्याएँ सामान्यत: परिस्थितिवश वेश्याएँ बन जाती हैं।

एस. डी. पुनेकर एवं कमला राव के अनुसार वेश्याओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। इन श्रेणियों को निम्नांकित प्रकार से दर्शाया गया है–

वेश्याएँ

साधारण वेश्याएँ - (सार्वजनिक वेश्यालयों, कोठों तथा वेश्यावृत्ति के जाने माने स्थानों में अपना पेशा करने वाली निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर की वेश्याएँ)

निजी वेश्याएँ अथवा रखैल- (किसी विशेष व्यक्ति की रखैल तथा नाचने गाने वाली स्त्रियाँ जिन्हें साधारण वेश्या नहीं माना जा सकता)

गुप्त वेश्याएँ - (कॉलगर्ल्स, कैबरे डान्सर्स तथा होटलों में गुप्त रूप से वेश्यावृत्ति करने वाली उच्च तथा मध्यम वर्ग की शिक्षित स्त्रियाँ)

9.11 वेश्यावृत्ति के प्रमुख परिणाम

वेश्यावृत्ति के अनेक दुष्परिणाम होते हैं, जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं–

1. **नारी जाति के लिए कलंक**–वेश्यावृत्ति नारी जाति का अपमान है। एक ओर नारी को देवी माना जाता है और उचित सम्मान व आदर किया जाता है, तो दूसरी ओर वह पैसे के लिए अपने सतीत्व का व्यवसाय करके नारी जाति को कलंकित कर देती है।

2. **शारीरिक प्रभाव**–वेश्यावृत्ति द्वारा वेश्याएँ एवं वेश्यागामी लोग अनेक प्रकार के गुप्त रोगों के शिकार हो जाते हैं और लज्जा के कारण इनका इलाज भी नहीं करा पाते, इससे अनेक रोग फैलते हैं।

3. **वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक विघटन**– वेश्यावृत्ति एक अवैध धन्धा है जो वैयक्तिक विघटन का प्रमुख कारण है क्योंकि अगर यह गुप्त न रहकर इसका अन्य लोगों को पता चल जाता है तो यह मानसिक असन्तुलन पैदा करके वैयक्तिक विघटन ला सकता है, इससे परिवार की सुख शान्ति भी समाप्त हो जाती है। अत: यह वैयक्तिक विघटन के साथ-साथ पारिवारिक एवं सामाजिक विघटन को भी प्रोत्साहन देता है।

4. **आर्थिक प्रभाव**–वेश्यावृत्ति के चक्कर में फँसे अनेक धनी लोग गरीब और दिवालिये हो जाते हैं, क्योंकि इससे पैसे की पूरी बर्बादी होती है, इसके परिणामस्वरूप परिवार का वातावरण दूषित हो जाता है क्योंकि पत्नी और बच्चों की देख-रेख ठीक प्रकार से नहीं हो पाती।

5. **नैतिक प्रभाव**–वेश्यावृत्ति के कारण लोगों का नैतिक स्तर गिर जाता है क्योंकि इसके लिए पैसे चाहिए और वेश्यागामी व्यक्ति किसी भी अनैतिक तरीके से धन कमाना चाहता है। वेश्याओं के लिए भी अनैतिकता कोई चीज नहीं रह जाती। इन सबसे राष्ट्रीय चरित्र एवं मूल्यों का हनन होता है।

6. **अपराधों की संख्या में वृद्धि**–वेश्यावृत्ति स्वयं में अपराध तो है ही, इससे अनेक अन्य अपराधों को भी प्रोत्साहन मिलता है। उदाहरणार्थ, चोरी-डकैती, अपहरण-हत्या, अनाचार-व्यभिचार तथा मद्यपान-मादक द्रव्य व्यसन जैसे अपराधों को वेश्यावृत्ति के साथ जोड़ा है।

9.12 भारत में वेश्यावृत्ति पर नियन्त्रण के प्रयास

सरकार ने छह महानगरों में बाल वेश्यावृत्ति सहायता हेतु एक केन्द्रीय सलाहकार कमेटी (Central Advisory Committee on Child Prostitution Aid) गठित की थी जिसने अपनी रिपोर्ट सन् 1994 में 'A Status and Action Report' के नाम से प्रस्तुत की। ये छह महानगर थे— बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास, बंगलौर तथा हैदराबाद, इस रिपोर्ट के अनुसार इन छह महानगरों में 70,000 से 1,00,000 वेश्याएँ हैं जिनमें से 15 प्रतिशत 15 वर्ष की आयु से कम हैं तथा 24.5 प्रतिशत 16 से 18 वर्ष के बीच की आयु की हैं। कमेटी द्वारा किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि 44 प्रतिशत वेश्याएँ संसार के इस सबसे पुराने व्यवसाय में आर्थिक कष्ट (Economic distress) के कारण प्रवेश करती हैं। 24.5 प्रतिशत वेश्याएँ पति द्वारा उन्हें छोड़ देने के कारण तथा 11.9 प्रतिशत ने किसी के द्वारा धोखा दिए जाने के कारण इस व्यवसाय में प्रवेश किया है। केवल 2.25 प्रतिशत वेश्याएँ ऐसी पाई गईं जिन्हें अपहरण करके इस व्यवसाय में शामिल होने के लिए बाध्य किया गया था। अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा विचार-विमर्श के दौरान यह तथ्य भी सामने आया कि युवा लड़कियाँ उन लड़कियों की देखा-देखी भी इस व्यवसाय को अपना लेती हैं जो उनकी परिचित थीं तथा जिन्होंने इस व्यवसाय द्वारा अच्छा खासा पैसा कमा लिया था तथा घर पर भी पैसे भेज रही थीं।

उपर्युक्त सर्वेक्षण में यह भी पाया गया कि 86 प्रतिशत वेश्याएँ आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश राज्यों से आती हैं। असम, बिहार, गुजरात, गोवा, मध्य प्रदेश, केरल, मेघालय, उड़ीसा, पाण्डिचेरी, राजस्थान तथा दिल्ली से इस देह व्यापार में आने वाली लड़कियों की संख्या काफी कम थी। सर्वेक्षण से यह भी पता चला कि दिल्ली में देश के 70 जिलों से, बम्बई में 40 जिलों से, बंगलौर में 17 जिलों से, कलकत्ता में 11 जिलों से तथा हैदराबाद में 3 जिलों से लड़कियाँ आकर इस व्यवसाय में प्रवेश करती हैं। जनांकिकीय दृष्टि से 94.6 प्रतिशत वेश्याएँ भारतीय थीं, जबकि शेष 2.6 प्रतिशत नेपाली तथा 2.7 प्रतिशत बंगलादेश की थीं। सर्वेक्षण के अनुसार 84.36 प्रतिशत वेश्याएँ हिन्दू थीं, जबकि शेष 10.96 प्रतिशत मुस्लिम थीं। कमेटी के सदस्यों में विचार-विमर्श के दौरान यह बात भी सामने आई कि दो प्रमुख स्वरूप ऐसे हैं जिनसे कोई बच्ची वेश्या बनती है— प्रथम, बच्ची को अपहरण द्वारा इस व्यवसाय हेतु बाध्य किया जाता है, तथा द्वितीय, बच्चियों को उनकी माताएँ तथा वेश्यालय चलाने वालों द्वारा इस व्यवसाय में लाया जाता है।

यद्यपि कई उपायों द्वारा इस कुरीति को समाप्त करने के प्रयास किए गए हैं परन्तु फिर भी वेश्यावृत्ति पूरी तरह से समाप्त करना अभी सम्भव नहीं हो पाया है। अनेक राज्यों ने सरकारी सहायता से भी अधिनियम बनाकर इस व्यवसाय में लगी हुई स्त्रियों को इस गन्दगी से निकालने तथा उनके पुनर्वास के लिए कई कदम उठाए हैं। उदाहरणार्थ, मैसूर में सन् 1910 में सर्वप्रथम इस प्रथा को बन्द करने के लिए कानून बनाया गया। सन् 1929, 1930 तथा 1934 में कई राज्यों ने इस प्रथा को बन्द करने वाले कानून बनाए। बम्बई में सन् 1934 में, पंजाब में 1935 में, मैसूर में 1936 में, मद्रास में 1947 में, बिहार में 1948 में, सौराष्ट्र में 1951 में, व मध्य प्रदेश में 1953 में वेश्यावृत्ति को गैरकानूनी घोषित किया गया। आजादी के बाद स्त्रियों तथा बच्चों के व्यापार को समाप्त करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा सन् 1956 में वेश्यावृत्ति उन्मूलन के लिए 'आल इण्डिया सप्रेशन ऑफ इम्मारल ट्रैफिक एक्ट इन वीमेन एण्ड गर्ल्स' अधिनियम पारित किया गया, इस अधिनियम द्वारा वेश्यावृत्ति को गैर-कानूनी घोषित किया गया तथा ऐसे व्यवसाय में लगे लोगों व प्रोत्साहन देने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था की गई।

सन् 1986 में सरकार द्वारा Indecent Re-presentation of Women (Prohibition) Bill भी पारित किया गया है। साथ ही, Suppression of Immoral Traffic Act (S. I. T.A.) भी इस दिशा में एक ऐसा ही प्रयास है। परन्तु यह अधिनियम वेश्यावृत्ति को स्पष्ट शब्दों में अवैध करार नहीं देते। प्रमिला कपूर के अनुसार यह अधिनियम वेश्यावृत्ति को गैर-कानूनी व अवैध घोषित नहीं करता तथा वेश्याओं के पुनर्वास एवं सामाजिक उत्थान के उपायों की ओर कोई ध्यान नहीं देता। जिन अड्डों अथवा घरों पर यह धन्धा किया जाता है उनके मालिकों के विरुद्ध भी कोई कठोर कदम उठाए जाने की इसमें कोई व्यवस्था नहीं है।

इन उपायों द्वारा जिस सफलता की आशा की जा रही थी वह नहीं मिल पाई है। भारत में वेश्यावृत्ति पर हुए अध्ययनों से हमें यह पता चलता है कि अधिकांश वेश्याएँ सामाजिक-आर्थिक कारणों से इस व्यवसाय को अपनाती है, इसीलिए केवल अधिनियम पारित किया जाना इस समस्या का समाधान नहीं है अपितु इसके कारणों

को समाप्त किया जाना भी अनिवार्य है। जैसे-जैसे भारतीय समाज आधुनिकता की ओर आगे बढ़ता जा रहा है वेश्याओं की संख्या में कोई विशेष कमी नहीं हो पा रही है। यद्यपि विनीरियल (Venereal) बीमारियों (यौन रोगों) के कारण, वेश्याओं की निम्न एवं अपमानजनक स्थिति के कारण, तथा नैतिक पतन को रोकने के लिए वेश्यावृत्ति को बन्द करने की माँग बढ़ती जा रही है और उनके पुनर्वास की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, फिर भी अभी समस्या का कोई व्यावहारिक हल नहीं मिल पाया है।

NOTES

9.13 शब्दावली

भिक्षावृत्ति–भिक्षावृत्ति एक ऐसे व्यक्ति की 'वृति' है जिसके जीविकोपार्जन का कोई आधार नहीं है तथा जो भीख माँगने के लिए दर-दर घूमता है या सार्वजनिक स्थलों पर दिखाई देता है।

वेश्यावृत्ति–वेश्यावृत्ति धन के लाभ के लिए किया गया यौन सम्बन्ध है जिसमें उद्वेगों का अभाव रहता है।

9.14 सारांश

इस इकाई में हमने भिक्षावृत्ति एवं वेश्यावृत्ति के महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा की व भिक्षावृत्ति के प्रकार, विधियाँ, कारण उन्मूलन का अध्ययन किया है, इस इकाई में हमने वेश्यावृत्ति के अर्थ, कारण, प्रकार, परिणाम एवं नियंत्रण के प्रयासों को भी समझाया है।

9.15 अभ्यास प्रश्न

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. भिक्षावृत्ति क्या है? भिक्षुकों के प्रमुख प्रकार बताइए।
2. भिक्षावृत्ति किसे कहते हैं? इसके कारण बताते हुए इस समस्या के समाधान हेतु सुझाव दीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. वेश्यावृत्ति किसे कहते हैं? वेश्याओं के प्रमुख प्रकार बताइए।
2. वेश्यावृत्ति को परिभाषित कीजिए तथा इसके कारणों एवं परिणामों की व्याख्या कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भिक्षुओं के कितने प्रकार हैं–

   (अ) छः (ब) सात (स) आठ (द) नो

उत्तर 1. (अ)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Panikkar, K. M., **Hindu Society at Cross Roads,** Bombay : Asia Publishing House, 1967.

Puneker, S. D. and Kamla Rao, **A Study of Prostitutes in Bombay,** Bombay : Albed Publishers, Ltd., 1962.

Quinn, James A., **Human Ecology,** New York : Prentice-Hall, 1950.

Reckless, Walter C., **The Crime Problem,** New York : Appleton-Century-Crofts ,1967.

Sellin, **T., Culture, Conflict and Crime,** New York : Social Science Research Council, 1938.

●●●

अध्याय–10 प्रदूषण (POLLUTION)

NOTES

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 प्रदूषण

10.3 प्रदूषण के प्रकार

10.4 भारत में प्रदूषण का विस्तार

10.5 भारत में प्रदूषण के कारण

10.6 प्रदूषण को दूर करने के लिए अपनाये प्रमुख उपाय

10.7 शब्दावली

10.8 सारांश

10.9 अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 उद्देश्य

मानव और पर्यावरण का साथ सदा से ही रहा है परन्तु आज मानव-पर्यावरण के सम्बन्ध एक खतरनाक मोड़ पर पहुँच गए हैं। मनुष्य अपनी प्रगति की धुन में पर्यावरण का शोषण इस ढंग से करता चला गया कि उसने इसे विषाक्त ही कर डाला और इस प्रकार अपने अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया। यह आज स्थानीय और राष्ट्रीय ही नहीं, वरन् अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन गई है। पर्यावरण और विकास के समन्वय में ही मानव का भविष्य छिपा है। पृथ्वी के उपग्रह को चन्द मिनटों में राख के ढेर में बदलने की क्षमता रखने वाले शस्त्रों के बाद यदि कोई बहुचर्चित विषय आज विश्व में है तो वह है– पर्यावरणीय प्रदूषण। अतः प्रदूषण से समस्त जीवन अस्त व्यस्त हो गया है प्रत्येक व्यक्ति का जीवन इस भयावह स्थिति से दो चार हो रहा है। अतः प्रस्तुत इकाई में समाज में व्याप्त प्रदूषण के प्रकार एवं उसके विस्तार को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। जिससे अभ्यर्थी इसको अध्ययन में लाये वह प्रदूषण से निपटने हेतु युद्ध स्तर पर कार्य करें वे नित नये निदान की खोज करें।

10.1 प्रस्तावना

पर्यावरणीय प्रदूषण तो हमारा सदैव का साथी बन चुका है और हमें प्रतिपल भयावह स्थिति में रखता है। 1984 ई. में घटित भोपाल काण्ड, जहाँ एक कारखाने के गैस रिसाव ने सैकड़ों लोगों की जीवनलीला समाप्त कर दी और हजारों को अपंग बना दिया, इसका उदाहरण है, इसी प्रकार, रूस के एक देश में आणविक ऊर्जा से संचालित केन्द्र से गैस रिसाव ने भयावह स्थिति पैदा कर दी थी। सुन्दरलाल बहुगुणा, जो विश्वप्रसिद्ध पर्यावरणवादी हैं, ने अति सुन्दर शब्दों में इस समस्या के मूल को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह है कि पर्यावरणीय प्रदूषण में सबसे बड़ा योगदान हमारी विकास योजनाओं का है। जैसे-जैसे इन योजनाओं का विस्तार होता जाता है, उतनी ही तेजी से पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्याएँ जटिल होती जाती हैं।" उद्योगों के विस्तार ने जंगलों के अन्धाधुन्ध कटाव को प्रोत्साहित किया। पृथ्वी के गर्भ में छिपे खनिज का दोहन अनियोजित ढंग से चला। इन कारखानों से निकले धुएँ ने वायुमण्डल को और अवशिष्ट पदार्थों ने बचे-खुचे जल को भी दूषित कर दिया, इस भाँति, जीवन को बनाए रखने वाली परिस्थितियों में असन्तुलन पैदा हो गया, इसलिए आज मानव जगत के सम्मुख सबसे बड़ा संकट पर्यावरणीय प्रदूषण का संकट है।

10.2 प्रदूषण

NOTES

प्रदूषण को स्पष्ट करने से पहले यह उचित होगा कि हम पर्यावरण का अर्थ स्पष्ट कर दें। 'पर्यावरण' शाब्दिक दृष्टि से 'परि आवरण' दो शब्दों से बना है। 'परि' का अर्थ है– चारों ओर, और 'आवरण' का अर्थ है– ढकने वाला, इस भाँति, साहित्यिक दृष्टि से पर्यावरण का अर्थ उन तमाम भौतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक वस्तुओं और परिस्थितियों से है जो मानव जीवन को चारों ओर से घेरे हुए है और उसे प्रभावित करती हैं। मानव, व्यक्तिगत रूप से भी और संस्थागत रूप से भी, अपने पर्यावरण को एक अर्थ प्रदान करता है और उस अर्थ के अनुसार उसके प्रति प्रतिक्रिया करता है। भौतिक दृष्टि से इस भूमण्डल के चारों ओर के ग्रह और उपग्रह, वातावरण, जलवायु तथा पृथ्वी की सतह की मिट्टी, जल, वनस्पति एवं पशु-पक्षी, पहाड़ तथा पृथ्वी के गर्भ में छिपा तेल, कोयला, लोहा और अन्य खनिज पर्यावरण में शामिल होते हैं। मनुष्य ने इन सभी को विशेष अर्थ प्रदान किया है, कहीं इन्हें पूजा है, कहीं इनका दोहन किया है तो कहीं इनमें संशोधन किया है। सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से वे सभी विचार और वस्तुएँ पर्यावरण में सम्मिलित होती हैं जो मानव द्वारा निर्मित हैं ; जैसे रासायनिक पदार्थ, मशीनें, कल-कारखाने, सड़कें, बाँध, पुल, भवन, यातायात और संचार के साधन, भाषा, धर्म तथा परिवार-व्यवस्था आदि। इन सभी भौतिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से मिलकर बनता है मानव का 'कुल पर्यावरण'। मनुष्य और उसके कुल पर्यावरण के बीच एक अन्तर्क्रिया चलती रहती है जो परस्पर प्रभावोत्पादक है। वैज्ञानिक दृष्टि से और प्रदूषण के सन्दर्भ में यदि पर्यावरण को परिभाषित किया जाए तो कहा जा सकता है कि पर्यावरण से आशय उस जैव-मण्डल से है जो पृथ्वी पर जीवनदायिनी शक्तियाँ एवं जीवन के आधारों को प्रदान करने वाली शक्तियों की व्यवस्था से सम्बन्धित है, इसमें जल, वायु, तापमान, प्राकृतिक साधन आदि सम्मिलित होते है।

वास्तव में, पर्यावरण में एक लय और सन्तुलन है; जैसे जब तापमान बढ़ता है तो समुद्र से भाप बनकर बादल उठते हैं और उन स्थानों की ओर चलते हैं जहाँ तापमान बहुत अधिक हो गया है, इसी भाँति, तापमान की अधिकता से बर्फीली चोटियाँ पिघलती हैं और नदियों में पानी आता है। वर्षा का पानी पृथ्वी की तपिश बुझाता हुआ, झरनों एवं झीलों की गोद भरता हुआ फिर नदियों के माध्यम से समुद्र में आ जाता है। मनुष्य की भौतिक समृद्धि की चाह ने पर्यावरण की इस लय तथा सन्तुलन को बिगाड़ दिया है, इसमें व्यवधान उपस्थित कर दिया है। यह पर्यावरण असन्तुलन ही प्रदूषण का मूल स्रोत है।

इस प्रकार, प्रदूषण से आशय जैव-मण्डल में ऐसे तत्वों का समावेश है जो जीवनदायिनी शक्तियों को नष्ट कर रहे हैं। उदाहरणार्थ, रूस में चेरनोबिल के आणविक बिजलीघर से एक हजार कि. मी. क्षेत्र में रेडियोधर्मिता फैल गई जिससे मानव जीवन के लिए ही अनेक संकट पैदा हो गए। आज इस दुर्घटना के बाद लोग आणविक बिजलीघरों का नाम सुनते ही सिहर उठते हैं, इसी तरह रासायनिक खाद, लुगदी बनाने, कीटनाशक दवाओं के बनाने और चमड़ा निर्माण करने आदि के कुछ ऐसे दूसरे उद्योग हैं जो वायु प्रदूषण फैलाते हैं। इतना ही नहीं, कई उद्योग तो वायु प्रदूषण के साथ-साथ मिट्टी और पानी का भी प्रदूषण करते हैं।

10.3 प्रदूषण के प्रकार

पारिस्थितिकीय विज्ञान के अनुसार पृथ्वी को तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है– स्थलमण्डल, वायुमण्डल तथा जलमण्डल। अत प्रदूषण मुख्यत इन्हीं तीन क्षेत्रों में होता है। प्रदूषण के अन्य स्रोतों में हम उन स्रोतों को भी सम्मिलित करते हैं जो अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि, वैज्ञानिक आविष्कारों तथा रासायनिक व भौतिक परिवर्तनों के कारण विकसित होते हैं। इनमें ध्वनि. रेडियोधर्मिता तथा तापीय स्रोत प्रमुख है। अत: पर्यावरणीय प्रदूषण के प्रमुख प्रकार निम्नांकित हैं–

1. **मृदीय प्रदूषण**–मृदीय प्रदूषण का कारण मृदा में होने वाले अस्वाभाविक परिवर्तन हैं। प्रदूषित जल व वायु, उर्वरक, कीटाणुनाशक पदार्थ, अपतृणनाशी पदार्थ इत्यादि मृदा को भी प्रदूषित कर देते हैं, इसके काफी हानिकारक प्रभाव होते है तथा पौधों तक की वृद्धि रुक जाती है, कम हो जाती है अथवा उनकी मृत्यु होने लगती है। अगर मृदीय स्वरूप, मृदीय संगठन, मृदीय जल व वायु तथा मृदीय ताप में अस्वाभाविक परिवर्तन लाने का प्रयास करते है तो इसका जीव-जन्तुओं पर अत्यन्त हानिकारक प्रभाव होता है।

2. जल प्रदूषण–जल में निश्चित अनुपात में खनिज, कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ तथा गैसें होती हैं। जब इसमें अन्य अनावश्यक व हानिकारक पदार्थ घुल जाते हैं तो जल प्रदूषित हो जाता है। कूड़ेकरकट, मल-मूत्र आदि का नदियों में छोड़ा जाना, औद्योगिक अवशिष्टों एवं कृषि पदार्थों (कीटाणुनाशक पदार्थ, अपतृणनाशक पदार्थ व रासायनिक खादें आदि) से निकले अनावश्यक पदार्थ जल प्रदूषण पैदा करते हैं। साबुन इत्यादि तथा गैसों के वर्षा के जल में घुल कर अम्ल व अन्य लवण बनाने से भी जल प्रदूषित हो जाता है। भारत में जल प्रदूषण एक प्रमुख समस्या है।

NOTES

3. वायु प्रदूषण–वायु में गैसों की अनावश्यक वृद्धि (केवल ऑक्सीजन को छोड़कर) या उसके भौतिक व रासायनिक घटकों में परिवर्तन वायु प्रदूषण उत्पन्न करता है। मोटर गाड़ियों से निकलने वाला धुआँ, कुछ कारखानों से निकलने वाला धुआँ तथा वनों व वृक्षों के कटाव से वायु में ऑक्सीजन, नाइट्रोजन व कार्बन डाइऑक्साइड का सन्तुलन बिगड़ जाता है तथा यह मनुष्यों व अन्य जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने लगता है। दहन, औद्योगिक अवशिष्ट, धातुकर्मी प्रक्रियाएँ कृषि रसायन, वनों व वृक्षों को काटा जाना, परमाणु ऊर्जा, मृत पदार्थ तथा जनसंख्या विस्फोट इत्यादि वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं।

4. ध्वनि प्रदूषण–तीखी ध्वनि या आवाज से ध्वनि प्रदूषण पैदा होता है। विभिन्न प्रकार के यन्त्रों, वाहनों, मशीनों, जहाजों, राकेटों, रेडियो व टेलीविजन, पटाखों, लाउडस्पीकरों के प्रयोग से ध्वनि प्रदूषण विकसित होता है। ध्वनि प्रदूषण प्रत्येक वर्ष दोगुना होता जा रहा है। ध्वनि प्रदूषण से सुनने की क्षमता का ह्रास होता है, रुधिर ताप बढ़ जाता है, हृदय रोग की सम्भावना बढ़ जाती है तथा तन्त्रिका तन्त्र सम्बन्धी रोग हो सकते हैं। कुछ प्रकार की ध्वनियाँ सूक्ष्म जीवों को नष्ट कर देती हैं, इससे जैव अपघटन क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है।

5. रेडियोधर्मी व तापीय प्रदूषण–रेडियोधर्मी पदार्थ पर्यावरण में विभिन्न प्रकार के कण और किरणें उत्पन्न करते हैं, इसी प्रकार, तापीय प्रक्रमों से भी कण निकलते हैं। ये कण व किरणें जल, वायु तथा मिट्टी में मिलकर प्रदूषण पैदा करते है, इस प्रकार के प्रदूषण से कैंसर, ल्यूकेनिया इत्यादि भयानक रोग उत्पन्न होते हैं तथा मनुष्यों में रोग अवरोधक शक्ति कम हो जाती है। बच्चों पर इस प्रकार के प्रदूषण का अधिक प्रभाव पड़ता है। नाभिकीय विस्फोट, आणविक ऊर्जा संयन्त्र, परमाणु भट्टियाँ, हाइड्रोजन बम, न्यूट्रान व लेसर बम आदि इस प्रकार के प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं।

बोध प्रश्न

1. प्रदूषण से आप क्या समझते है?

....

....

....

2. प्रदूषण के प्रकार बताइये।

....

....

....

....

10.4 भारत में प्रदूषण का विस्तार

स्वतन्त्रता के बाद पश्चिमी विकास को एक आदर्श के रूप में मानकर हमारे देश में भी औद्योगीकरण और नगरीकरण योजनाबद्ध रूप में बड़ी तीव्र गति से प्रारम्भ हुआ। यह सच है कि आज लोगों के जीवन का रहन-सहन का स्तर बढ़ा है; कम-से-कम जनसंख्या के कुछ भाग का तो बढ़ा ही है। परन्तु उस विकास के द्वारा उत्पन्न पर्यावरणीय असन्तुलन और प्रदूषण के प्रभाव अब महसूस होने लगे हैं। निम्नलिखित कुछ उदाहरणों से हम पर्यावरणीय प्रदूषण की गम्भीरता एवं विस्तार को प्रकट कर सकते हैं–

1. वनों का विनाश–बढ़ते हुए नगरीकरण और औद्योगीकरण की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों को बड़ी मात्रा में काटा गया। भारत में हिमालय के वन, जो उत्तरी भारत के पंजाब और दोआब जैसे अन्न के कटोरे के लिए पानी के स्रोत और उपजाऊ मिट्टी बनाने के कारखाने रहे है, एक अध्ययन के अनुसार अगले पचास वर्षों में समाप्त हो जाएँगे। वनों के कटने से पर्यावरणीय असन्तुलन इतना बढ़ गया है कि अब सूखे की स्थिति उपस्थित होने लगी है। वन बादलों को आकर्षित करते हैं तथा पानी के बहाव को नियन्त्रित करते हैं जिससे भूमि का कटाव रुकता है। वे बड़ी मात्रा में आक्सीजन प्रदान करते हैं। वनों के बढ़ते हुए अभाव ने जहाँ उनसे मिलने वाली बहुमूल्य सामग्री से हमें वंचित कर दिया है, वहीं भूमि का कटाव बढ़ा दिया है, उसकी उपजाऊ क्षमता को नष्ट किया है और अनेक रोगों को जन्म दिया है।

2. कृषि का व्यापारीकरण–देश में हरित क्रान्ति एक गर्व का विषय बन गया है। उसके लिए संकर बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक और सिंचाई पर अधिकाधिक धन खर्च होने लगा। यह रासायनिक उर्वरक, जो पेट्रोलियम पदार्थों से प्राप्त होते हैं, मिट्टी की स्वाभाविक उपजाऊ क्षमता को कम करते हैं और फिर वे अनादिकाल तक उपलब्ध नहीं होंगे क्योंकि विश्व में पेट्रोल की मात्रा सीमित है, इसी प्रकार व्यापारिक कृषि के लिए बहुत अधिक जल की आवश्यकता होती है, इसलिए भूमिगत जल का पम्पों और ट्यूबवैलों से बड़े पैमाने पर खनन किया जा रहा है। भूमि के नीचे से जितने जल को हम खींच रहे हैं, उस अनुपात से उसकी पूर्ति नहीं हो रही है। पृथ्वी में जल का स्तर और नीचे जा रहा है। नीचे से जल खींचने के लिए बिजली की माँग बढ़ गई है। गाँव और शहर के बीच परस्पर प्रतिस्पर्द्धा और संघर्ष का वातावरण बन गया है। अनेक जगह घटित हो रहे किसान आन्दोलनों के पीछे यह पर्यावरणीय असन्तुलन भी उत्तरदायी है। सुन्दरलाल बहुगुणा ने इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए बहुत उपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया है, "कृषि के औद्योगीकरण से अब कृषि एक जीवन-पद्धति नहीं रह गई है, न ही वह संस्कृति जिसका अर्थ है 'प्रकृति का सुसंस्कार करना।' जब मिट्टी को नकद रुपये में बदलकर धनवान बनने का साधन बनाया जाता है तो इसका अर्थ होता है 'मिट्टी के साथ बलात्कार'। आज जो कुछ हमने प्राप्त किया है वह तो मिट्टी और पानी की स्थायी पूँजी का निरन्तर ह्रास करके पाया है। यह लाभ का धोखा है।"

3. विशाल बाँध परियोजनाएँ–आजादी के बाद से हमारे देश में लगभग 1500 बड़े बाँध बन चुके हैं। प्रारम्भिक आकलनों से औसतन 213 प्रतिशत अधिक दर से इनमें गाद भरी है। रामगंगा पर बने कालागढ़ बाँध में तो यह दर 400 प्रतिशत से अधिक है। इन बाँधों के जो कुपरिणाम हुए हैं वे इस प्रकार हैं–

(i) केन्द्रित सिंचाई योजनाओं के कारण दलदल बनने और लवणीकरण की समस्याएँ पैदा हो गई हैं,

(ii) सम्भावित भूकम्प के खतरे बढ़ गए हैं,

(iii) एक बार गाद भर जाने के बाद ये बाँध फसल के लिए बिलकुल निरर्थक हो जाएँगे,

(iv) इनसे सुरक्षा के खतरे बढ़ गए हैं तथा

(v) इन योजनाओं के निर्माताओं के लिए चाहे ये बाँध खुशहाली के प्रतीक हों या बिजली और सिंचाई के प्रतीक हों, परन्तु इन क्षेत्रों के निवासियों और पर्यावरण व सन्तुलित विकास की चिन्ता करने वालों के लिए ये सर्वनाश के प्रतीक हैं। उदाहरणार्थ, टिहरी बाँध के कारण 70,000 पर्वतीय लोग विस्थापित हो जाएँगे। बाँधों के नीचे बहुत बड़ा उपजाऊ भू-खण्ड, गाँव और नगर सघन वन डूब जाएँगे, इसी भाँति, नर्मदा बाँध लाखों आदिवासी और वनवासी लोगों को विस्थापन के लिए मजबूर करेगा जिन्हें इस विशालकाय बाँधों से न तो सिंचाई के लिए पानी ही मिलेगा और न उद्योगों के लिए बिजली। वास्तव में, इतनी बड़ी संख्या में मनुष्य का यह विस्थापन उनकी संस्कृतियों का ही विस्थापन होगा और चूँकि यह विस्थापन किसी दैवी आपदा के कारण नहीं है, इसे मानवता के प्रति एक जघन्य अपराध की ही संज्ञा दी जा सकती है।

4. प्रदूषण उत्पन्न करने वाले उद्योगों का विस्तार– कुछ ऐसे उद्योग हैं जो बहुत अधिक बड़े हैं जिनमें वायु और जल का प्रदूषण बढ़ा है। इनमें सबसे प्रमुख रासायनिक खाद, कीटनाशक, चमड़े के कारखाने, ताप बिजलीघर आदि हैं। वैसे तो सभी कारखाने धुआँ और स्राव दोनों ही उगलते हैं, लेकिन ये कारखाने तो सबसे अधिक खतरनाक हैं। भोपाल के गैस काण्ड का हम उदाहरण दे ही चुके हैं। पिछले वर्षों में दिल्ली में फैला हैजा और आन्त्रशोथ भी जल प्रदूषण का ही दुष्परिणाम था। इन कारखानों से वायुमण्डल में उगली जाने वाली गैस

जीवशेषीय ईंधनों के विस्फोट से पैदा होती है। यही नहीं, इन कारखानों से जो बचा हुआ पानी और गन्दगी स्राव के रूप में बाहर निकलते हैं वह भी जल और वायु का प्रदूषण करते हैं। ये जीवन समर्थक शक्तियों के लिए खतरा बन जाते हैं।

5. आणविक एवं ताप बिजलीघर–हमने ऊपर भी लिखा है कि आणविक और ताप बिजलीघर मानव जीवन के लिए खतरे के प्रतीक हैं। देश में नागरिक अब इस खतरे को समझने लगे हैं। कर्नाटक के कारावाड जिले में और अन्य स्थानों में बनने वाले आणविक बिजलीघरों का विरोध किया जा रहा है, इस प्रकार, भारतीय विकास एक दोराहे पर पहुँच गया है। बिजली के बिना देश की तरक्की सम्भव नहीं, और बिजली के लिए सभी साधन खतराविहीन नहीं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा नियुक्त कमीशन की रिपोर्ट 'हमारा साँझा भविष्य' के चेतावनी भरे निम्न शब्दों को हम उद्धत करना चाहेंगे, "पर्यावरणीय खतरों और अनिश्चितता के कारण उच्च ऊर्जा का भविष्य चिन्ताजनक है और इससे कई शंकाएँ पैदा होती हैं, इससे वायुमण्डल में उगली जाने वाली गैसों के 'ग्रीन हाऊस' प्रभाव के फलस्वरूप मौसम में गम्भीर परिवर्तन की सम्भावना है.........आणविक रिएक्टरों से दुर्घटनाओं के खतरे, आणविक कचरे को ठिकाने लगाने और बिजलीघरों का जीवन काल समाप्त हो जाने के पश्चात् रिएक्टरों का क्रियाकर्म तथा इससे फैलने वाली रेडियोधर्मिता के खतरे परमाणु ऊर्जा के साथ जुड़े हुए हैं।"

6. बड़े पैमाने पर खनन–शीघ्र विकास की धुन में सारे विश्व में ही पृथ्वी से खनिज पदार्थों का खनन किया गया है। खनन उद्योग से पैदा होने वाले खतरों की तरफ लोगों का अब ध्यान गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ की उपर्युक्त रिपोर्ट में लिखा है, "अभी तक जीवशेषीय ईंधनों (कोयला, खनिज तेल, गैस आदि) के विस्फोट से पैदा होने वाली कार्बन डाइऑक्साइड को हटाने के लिए कोई तकनीक विकसित नहीं हुई है। कोयले के अधिकाधिक उपयोग में सल्फर डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि होगी। यह वायुमण्डल में जाकर तेजाब बन जाते हैं। आज जिस दर से उपयोग हो रहा है उस हिसाब से विश्व में गैस की आपूर्ति केवल दो सौ वर्ष तक और कोयले की तीन हजार वर्षों तक ही होगी।" इन सभी खनिजों की मात्रा पुन: बढ़ाई नहीं जा सकती और ये धरती में निश्चित मात्रा में हैं, इसलिए इनके आधार पर खड़े विकास के भवन का भविष्य एक प्रश्न चिह्न ही बनकर रह गया है।

हमारे देश में भी खनन विनाशकारी होता गया है। उदाहरण के रूप में, देहरादून जिले के मसूरी की पर्वतश्रेणियों में बड़ी मात्रा पर चूने का खनन किया गया। देहरादून की घाटी, जो देश में सबसे अधिक श्रेष्ठ बासमती पैदा करने वाली थी, इस खनन के कारण रेगिस्तान में बदलने लगी है। गाँवों में खेती चौपट हो गई है और पानी के स्रोत सूखने लगे हैं। नागरिकों ने छुटपुट आन्दोलन भी किए, परन्तु वे शक्तिशाली खनन ठेकेदारों के प्रभाव के सामने दबा दिए गए। तब सजग नागरिकों ने उच्चतम न्यायालय के द्वार खटखटाये। पाँच वर्षों के अनवरत कानूनी युद्ध और नागरिकों की ओर से मुकदमा लड़ने वाले प्रार्थियों ने जीवन की जोखिम उठाकर उच्चतम न्यायालय से न्याय पाया और इन खानों में से केवल चार को छोड़कर न्यायालय के आदेश से बाकी सभी खानें बन्द हो गई हैं। परन्तु देश के अन्य हिस्सों में खनन तो अभी चालू है, इसी प्रकार उड़ीसा में भारत ऐल्यूमिनियम कम्पनी द्वारा बाक्साइट खनन के विरुद्ध भी संघर्ष चल रहा है। वास्तव में, पर्यावरणीय सन्तुलन बिगड़ने से यह खनन वायु और जल दोनों की जीवन्त शक्तियों को कम कर देते हैं। पीने के जल की निरन्तर कमी होती जा रही है और शुद्ध जीवन्त जल तो मिलना ही दूभर हो गया है।

10.5 भारत में प्रदूषण के कारण

यद्यपि उपर्युक्त विवरण से ही पर्यावरणीय प्रदूषण के कारणों का पता चल जाता है तथापि हम यहाँ इसके मूल कारणों पर प्रकाश डालना चाहेंगे, इसके निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं–

1. भौतिक विकास को अत्यधिक महत्त्व–सारे ही विश्व में पिछली शताब्दी से भौतिक विकास ही मानव के विकास का पर्याय बन गया है। विकास से आशय हम उपभोग की बढ़ती हुई दर से लगाते हैं। प्रति व्यक्ति आय, प्रति व्यक्ति बिजली का उपभोग, वार्षिक राष्ट्रीय उत्पादन की दर इस विकास के मापदण्ड बन गए हैं। विकास की प्रक्रिया में निरन्तर वृद्धि एक आवश्यक तत्व मानी जाती है। निरन्तर वृद्धि से आशय है कि जो वैभव आज की पीढ़ी को प्राप्त हो गया है कम-से-कम उतना वैभव, यदि अधिक सम्भव नहीं तो, अगली पीढ़ी को भी मिलना चाहिए। विकास का लक्ष्य वास्तव में अगली पीढ़ी को और अधिक भौतिक सुखों को प्रदान

NOTES

करना है, इस दृष्टिकोण के वास्तविक परिणाम दो हुए— एक, प्रकृति को उपभोग की जाने वाली वस्तु माना जाने लगा और उसका अधिकाधिक दोहन किया जाने लगा। द्वितीय, समाज का अर्थ केवल मनुष्यों का समाज ही माना जाने लगा। मनुष्य भूल गया कि प्रकृति के समक्ष वह अनेक जीव-जन्तुओं तथा पेड़-पौधों की भाँति ही एक प्राणी है। उसे सभी के साथ सन्तुलन बनाकर चलना है। अपने बढ़ते हुए भोग की लालसा ने मनुष्य को प्रकृति के प्रति कसाई बना दिया है। उसने न केवल पुन: पूरे न किए जा सकने वाले प्रकृति के भण्डारों को खाली किया वरन् पेड़-पौधों व जीव-जन्तुओं के लिए भी खतरा पैदा कर दिया। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि बीसवीं शताब्दी के अन्त तक वनस्पति और जीव-जन्तुओं की डेढ़ करोड़ प्रजातियाँ अपना अस्तित्व खो बैठेंगी।

2. विकास के लिए असन्तुलित कार्यक्रम– विकास के लिए जो योजनाएँ बनाई गईं वे असन्तुलनों से भरी पड़ी हैं। खेती योग्य भूमि बढ़ाने के लिए और उद्योगों की माँगों की आपूर्ति के लिए हम जंगल तो काटते चले गए, परन्तु उतने ही नए जंगल नहीं लगाए गए। हम बाँध तो बनाते चले गए पर यह अनुमान नहीं लगाया कि एक दिन जब ये बाँध गाद से भर जाएँगे तो इनका क्या उपयोग होगा। हमने प्रकृति की लय और गति में असन्तुलन पैदा कर दिया। खतरनाक उद्योगों से निकलने वाला स्राव कहाँ जाएगा और उससे क्या-क्या खतरे पैदा होंगे, यह अनुमान नहीं लगाया गया। जहरीली गैसों और रेडियोधर्मिता की रोकथाम कैसे की जाए इस पर विचार नहीं किया गया। इन असन्तुलित विकास कार्यक्रमों का स्वाभाविक परिणाम था— जल और वायु का प्रदूषण।

3. समाकलित जीवन दर्शन एवं शैली का अभाव–भोगवादी जीवन-पद्धति में विकास के नैतिक आधारों की पूर्ण उपेक्षा कर दी गई है। मनुष्य के जीवन की आवश्यकताएँ पूरी हों यह प्रयास तो किया ही जाना चाहिए, परन्तु मन की लालसाओं और तृष्णाओं का तो कभी अन्त नहीं होता। उनको बढ़ाते रहने में कहाँ तक बुद्धिमानी है। आज भी विश्व के करोड़ों लोग भूख से परेशान हैं। कुछ लोगों के भोग के लिए बड़ी संख्या में गरीबों को भूखे रखने को विकास का नाम दिया जा रहा है। आज से 2500 वर्ष पहले महात्मा बुद्ध ने मानवों को सन्देश दिया था कि मानव-जीवन में दु:ख का स्रोत तृष्णा है और तृष्णा को समाप्त करने से ही दु:ख का निवारण हो सकता है। हमारे युग में भी महात्मा गांधी ने आवश्यकताओं को कम-से-कम करने का सन्देश दिया था। अंहिसा, असंग्रह, सत्य, स्वदेशी, कायिक श्रम, छुआछूत की भावना का त्याग, ब्रह्मचर्य, अस्वाद और निर्भयता जीवन-यापन के नियम बनाए जाने चाहिए। विकास की सही व्याख्या मनुष्य और समाज के जीवन में सुख, शान्ति और सन्तोष के रूप में की जानी आवश्यक है, अन्यथा पर्यावरणीय प्रदूषण और मानव के मानसिक प्रदूषण से छुटकारा नहीं मिल सकता। जब तक मनुष्य का प्रकृति के प्रति आक्रामक दृष्टिकोण नहीं बदलता तब तक सुख और शान्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

अस्तु; पर्यावरणीय प्रदूषण के मूल कारणों के विश्लेषण के बाद उन उपायों पर भी विचार किया जाना चाहिए जो इस प्रदूषण को दूर करने के लिए हमारे देश में उठाए गए हैं।

10.6 प्रदूषण दूर करने के लिए अपनाए गए प्रमुख उपाय

हमारे देश में पर्यावरणीय प्रदूषण की रोकथाम के लिए एवं पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए निम्नलिखित प्रमुख उपायों को अपनाया गया है—

1. कानूनी उपाय–भारत सरकार ने कारखाना (संशोधन) अधिनियम 1987 पारित किया है जिसका उद्देश्य कारखानों में लगे श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान करना एवं पर्यावरणीय प्रदूषण को नियन्त्रित करना है, इस अधिनियम के अनुसार, यदि किसी भी उद्योग में कुछ खतरनाक प्रक्रियाएँ लागू होती हैं तो उस उद्योग पर नियन्त्रण किया जाएगा। खतरनाक प्रक्रियाओं से आशय यह है कि उस उद्योग में खनिज पदार्थों के प्रयोग से या उत्पादित वस्तुओं अथवा अर्द्धनिर्मित वस्तुओं या कारखाने से होने वाले स्राव (Effluents) से वहाँ के श्रमिकों के स्वास्थ्य पर या वहाँ के सामान्य पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता हो, इसके नियन्त्रण के लिए तीन प्रकार की समितियों की स्थापना का प्रावधान किया गया है— मौका मुआयना समिति, जाँच समिति एवं सुरक्षा समिति। राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे उन कारखानों को अनुमति प्रदान करने से पहले विस्तृत जाँच कर लें जिनमें किसी भी प्रकार की खतरनाक प्रक्रियाओं के होने की सम्भावना है, इसी प्रकार, पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम, 1986 भी पारित किया गया है। पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए और प्रदूषित पर्यावरण के सुधार के लिए ही इस कानून में प्रावधान किया गया है।

NOTES

2. **सार्वजनिक हित में अभियोजन**–देश के सर्वोच्च न्यायालय ने पर्यावरणीय सुरक्षा के क्षेत्र में लोकहित अभियोजन की अनुमति देकर एक क्रान्तिकारी कदम उठाया है। लोकहित अभियोजन वे मुकदमे होते हैं जो किसी भी जागरूक नागरिक की लोकहित में दिए गए प्रार्थना-पत्र से शुरू होते हैं। देहरादून में चूने की खानों के ठेकेदारों के खिलाफ ऐसे ही लोकहित मुकदमे का जिक्र हमने ऊपर किया है, इसी प्रकार का एक और प्रसिद्ध अभियोजन एम. सी. मेहता बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कानपुर में कार्यरत चमड़ा उद्योग के सभी कारखानों को तब-तक के लिए बन्द करने का निर्देश दिया था जब तक कि वे अपने यहाँ ऐसे प्राथमिक शुद्धि संयन्त्र न लगा लें जिनमें उनसे होने वाले स्राव गंगा नदी में डालने से पहले शुद्ध किए जा सकें।

3. **जन शिक्षा**–जन संचार माध्यमों द्वारा जनता में पर्यावरणीय सुरक्षा एवं प्रदूषण के प्रति जागरूकता लाने के प्रयास भी किए जा रहे हैं। पर्यावरणीय शिक्षा के नाम से एक पृथक् विषय स्कूलों और कॉलेजों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किए जाने पर भी जोर दिया जा रहा है।

4. **पर्यावरणीय सुरक्षा सम्बन्धी अनुसन्धान को प्रोत्साहन**–पर्यावरणीय सुरक्षा के क्षेत्र में अनुसन्धानों को प्रोत्साहित किया गया है। वनों तथा पर्यावरण मन्त्रालय ने पर्यावरण सम्बन्धी संरक्षण और सुरक्षा के लिए अब तक लगभग 636 अनुसन्धान परियोजनाओं को समर्थन दिया जिन पर 27.96 करोड़ रुपये का व्यय होना है। इनमें से 262 प्रोजेक्ट, जिन पर 8.80 करोड़ रुपया खर्च हुआ, पूर्ण हो गए हैं। बाकी 345 प्रोजेक्ट अभी चलाए जा रहे हैं। इन अनुसन्धान परियोजनाओं को सरकारी, गैर-सरकारी, स्वशासी संस्थाओं और विश्वविद्यालयों के माध्यम से चलाया जा रहा है।

5. **ऐच्छिक संघ**–पर्यावरणीय सुरक्षा के क्षेत्र में देश के अनेक ऐच्छिक संघ भी क्रियाशील हैं जिनके सामाजिक कार्यकर्ता प्रदूषण के खिलाफ संघर्षरत हैं। गढ़वाल का 'चिपको आन्दोलन' इन ऐच्छिक संघों की सफलता का बहुत सटीक उदाहरण है।

6. **संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयास**–वास्तव में, पर्यावरणीय प्रदूषण का एक अनिवार्य पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय भी है। पर्यावरण तो सबका साँझा होता है इसलिए मानव का भविष्य भी साँझा है, इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस विषय पर विशेष कमीशन की नियुक्ति की थी जिसने पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं।

बोध प्रश्न

1. भारत में प्रदूषण का विस्तार बताइये।

....

....

....

2. प्रदूषण को दूर करने के उपाय लिखिए।

....

....

....

10.7 प्रदूषण के उन्मूलन हेतु सुझाव

प्रदूषण की समस्या के समाधान हेतु निम्नलिखित सुझाव दिए जा रहे हैं–

1. **कानूनों का निष्ठापूर्वक पालन**–कानून बनाने से ही समस्या हल नहीं हो जाती। सबसे अधिक आवश्यक है कि उनका कठोरता से पालन कराया जाए, इसके लिए उपयुक्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों की भी आवश्यकता है, इसके लिए एक अलग सेना का गठन किया जाए और कर्मचारियों की भर्ती और प्रशिक्षा विशिष्ट ढंग से की जाए।

2. जन जागरण एवं जन सहयोग–वास्तव में एक राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के अन्तर्गत पर्यावरण के सम्बन्ध में जन शिक्षा के प्रसार की तीव्र आवश्यकता है। जब तक जन-मानस प्रकृति, मनुष्य और समाज के गहरे रिश्ते को नहीं समझेगा तब तक पर्यावरणीय प्रदूषण बना ही रहेगा, इसीलिए आवश्यक है कि पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जन आन्दोलन चलाया जाए और उसमें जन सहभागिता को बढ़ाया जाए।

3. विकेन्द्रित विकास–समाज की रचना का आधार विकेन्द्रित व्यवस्था पर रखा जाना चाहिए। प्राणवायु, स्वच्छ और जीवन्त जन, खुराक, आश्रय तथा वस्त्र की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति आस-पास के क्षेत्र से हो सके, इसके लिए विकेन्द्रित विकास की योजनाएँ बनानी होंगी, इस दृष्टि से हमें पुन: गांधी जी के ग्राम-स्वराज्य की अवधारणा की प्रासंगिकता को समझना होगा। सीधे-सादे शब्दों में, विकास के नियोजन की इकाई गाँवों को बनाना होगा। जब उपभोग घर-घर और गाँव-गाँव में होता है तो उत्पादन केन्द्रित ढंग से क्यों किया जाए? विकेन्द्रित उत्पादन से प्रदूषण की समस्या स्वत: हल हो जाएगी क्योंकि उच्च ऊर्जा प्रयोग करने वाले और अपनी बड़ी-बड़ी चिमनियों से धुआँ उगलने वाले कारखाने ही वहाँ नहीं होंगे। लघु उद्योगों के लिए आणविक या ताप बिजलीघरों की आवश्यकता भी नहीं है, इस व्यवस्था में ऊर्जा की प्राथमिकता भी बदल जाएगी, इसमें पशु शक्ति, बायोगैस, सौर ऊर्जा, पवन शक्ति, नदियों के सीधे बहाव से जल, विद्युत और लहरों की शक्ति से ही काम किया जा सकेगा।

4. समाकलित जीवन शैली–आज एक समाकलित जीवन दर्शन एवं शैली की आवश्यकता है। बहुतसे लोग, जिसमें विद्वान् भी शामिल हैं, कहते हैं कि विकेन्द्रीकरण और सादगी भारत जैसे गरीब देशों के लिए ही हो सकती है। परन्तु ऐसा नहीं है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास आयोग ने समृद्ध देशों को स्पष्ट चेतावनी दी है कि जब तक वे सादगी का जीवन नहीं बिताते, तब तक विश्व में न तो पर्यावरण की ही रक्षा हो सकती है और न विकास ही सम्भव है। यूरोप में अधिकांश देश पर्यावरणीय सुरक्षा के प्रति चिन्तित है। वहाँ कोई भी राजनेता आज पर्यावरण के कारक की उपेक्षा नहीं कर सकता। चुनावों में हुई पर्यावरणवादियों की विजय इस तर्क को सिद्ध करती है। यूरोप का हरित आन्दोलन पश्चिमी जगत के सामने एक नया रास्ता रख रहा है जिसे वे सीधा रास्ता कहते हैं। यह रास्ता वाम और दक्षिण दोनों ही पंथों से सर्वथा अलग है, इस आन्दोलन के घोषणा-पत्र को पढ़ने से ऐसा लगता है कि मानो वह गांधी के 'हिन्द स्वराज्य' का ही नवीन रूप हो।

पर्यावरणीय सुरक्षा और पर्यावरणीय प्रदूषण की रोकथाम सारे विश्व के सामने गम्भीरतम समस्याओं में से एक है। आज विश्व के सम्मुख तीन सबसे बड़ी चुनौतियाँ हैं– युद्ध, भूख और पर्यावरणीय प्रदूषण। ये तीनों एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इनमें से एक की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इनके सफल समाधान पर ही मानव जाति का भविष्य टिका है। भारत इसका अपवाद नहीं है। भारत की इस दिशा में जिम्मेदारी और भी अधिक है क्योंकि यह आध्यात्मिक खोज और प्रयोगों का देश रहा है। पर्यावरणीय सुरक्षा के क्षेत्र में भी इसे अविलम्ब पहलकदमी करनी चाहिए।

10.8 शब्दावली

प्रदूषण –प्रदूषण से आशय जैव-मण्डल में ऐसे तत्वों का समावेश है जो जीवनदायिनी शक्तियों को नष्ट कर रहे हैं।

10.9 सारांश

इस इकाई में हमने प्रदूषण का अर्थ, प्रकार, विस्तार कारण का अध्ययन किया है। मानव और पर्यावरण के संबंध को भी खतरनाक मोड़ पर पहुँचा दिया है। समय अपनी प्रगति की धुन में पर्यावरण का शोषण कर रहा है। अपने अस्तित्व को खतरे में डालने के बारे में विस्तार से विचार-विमर्श किया जाये व इसे छात्र अपने अध्ययन में लाये और इससे निपटने के लिय नित नये निदान की खोज करें।

NOTES

10.10 अभ्यास प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. प्रदूषण किसे कहते है? इसके प्रमुख प्रकार बताइए।
2. प्रदूषण को परिभाषित कीजिए तथा इसके कारण बताइए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. भारत में प्रदूषण के विस्तार एवं नियन्त्रण हेतु किए जाने वाले उपायों की विवेचना कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्रदूषण के कितने प्रकार हैं—

   (अ) चार (ब) पाँच (स) सात (द) आठ

उत्तर 1. (ब)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Gillin, J. L. and J. P. Gillin, **Cultural Sociology,** New York : The Macmillan Company, 1948.

Gist, N. P. and L. A. Halbert, **Urban Sociology,** New York : Crowell, 1933.

Giselher Wirsing, **The Indian Experiment : Key to Asia's Future,** New Delhi : Orient Longman, 1972.

Aspects of Crime in India, London : Allen and Unwin, 1934.

Landis Paul H. and Judson T. Landis, **Social Living : Principles and Problems in. Introductory Sociology,** Boston : Ginn & Co., 1938.

●●●

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

अध्याय–11 साम्प्रदायिकता (COMMUNALISM)

NOTES

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 साम्प्रदायिकता का अर्थ

11.3 साम्प्रदायिकता की समस्या

11.4 साम्प्रदायिक तनावों एवं उपद्रवों के कारण

11.5 साम्प्रदायिकता के कारणों की खोज

11.6 साम्प्रदायिकता या साम्प्रदायिक हिंसा का समाजशास्त्र

11.7 साम्प्रदायिकता को रोकने के उपाय

11.8 शब्दावली

11.9 सारांश

11.10 अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 उद्देश्य

भारत एक बहुलवादी समाज है। जहाँ पर धर्म के अनेक सकारात्मक कार्य है तथा सामाजिक जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है, वहीं पर कई बार धार्मिक संकीर्णता बहुलवादी समाजों में धार्मिक एवं साम्प्रदायिक तनाव का कारण भी बन जाती है। किसी भी बहुलवादी समाज में बहुसंख्यक बनाम अल्पसंख्यक का प्रश्न एक अत्यन्त नाजुक मामला माना जाता है। यदि सरकार अल्पसंख्यकों को कुछ विशेष अधिकार एवं सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास करती है तो बहुसंख्यक सम्प्रदाय इसे सरलता से सहन नहीं करता है और इसका विरोध करता है। यदि सरकार बहुसंख्यकों को कुछ सुविधाएँ प्रदान करती है तो अल्पसंख्यक इसे अपना शोषण मानते है और अल्पसंख्यक होने के नाते बहुसंख्यकों को दी जाने वाली सुविधाओं से कहीं अधिक सुविधाओं की माँग करने लगते हैं, इससे अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक सम्प्रदायों में सामाजिक दूरी बढ़ने लगती है तथा अन्ततः इसका परिणाम धार्मिक एवं साम्प्रदायिक तनाव के रूप में सामने आता है। धार्मिक एवं साम्प्रदायिक तनाव को ही साम्प्रदायिकता कहा जाता है। आज भारत में पाई जाने वाली सभी समस्याओं में साम्प्रदायिकता की समस्या सबसे प्रमुख मानी जाती है। यह समस्या इतनी गम्भीर होती जा रही है कि कोई भी सरकार इसका उचित समाधान खोजने में सफल नहीं हो पा रही है और न ही विभिन्न राजनीतिक दलों में इस समस्या के समाधान के बारे में कोई आम राय ही बन पा रही है। साम्प्रदायिकता की भाँति क्षेत्रवाद भी भारतीय समाज की एक प्रमुख समस्या है। आज भी अनेक राज्यों में विभाजन की माँग सरकार के लिए चिन्ता का विषय बनी हुई है।

11.1 प्रस्तावना

परिवार से लेकर बाजार तक की विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ एक ओर लोगों को परस्पर सम्पर्क में लाती है तथा उनमें प्रबल सामूहिक पहचान स्थापित करती है, तो दूसरी ओर यही संस्थाएँ असमानता और अपवर्जन का स्रोत भी हो सकती है। किसी समाज या समुदाय की संस्कृति में पाई जाने वाली विविधता असमानताओं के बजाय अन्तरों पर बल देती है। उदाहरणार्थ, जब हम यह कहते हैं कि भारत में सास्कृतिक विविधता पाई जाती है तो इससे तात्पर्य वहाँ पाए जाने वाले अनेक प्रकार के सामाजिक समूहों एवं समुदायों से है जो भाषा, जाति,

प्रजाति, धर्म, पन्थ आदि द्वारा परिभाषित होते हैं। चूँकि सांस्कृतिक पहचान अत्यन्त प्रबल होती हैं, इसलिए सांस्कृतिक विविधता एक कठोर चुनौती प्रस्तुत करती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना अस्तित्व बनाए रखने हेतु एक स्थायी पहचान की आवश्यकता होती है। समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा हमें पता चलता है कि हमारे माता-पिता, परिजन, नातेदार, समूह तथा समुदाय कौन-सा है। समुदाय ही हमें भाषा और सांस्कृतिक मूल्य प्रदान करता है तथा हमारी स्वयं की पहचान को बनाता है।

11.2 साम्प्रदायिकता का अर्थ

श्रीकृष्णदत्त भट्ट के अनुसार साम्प्रदायवाद का अर्थ है मेरा साम्प्रदाय, मेरा पथ, मेरा मत ही सबसे अच्छा है मेरे सम्प्रदाय की ही तूती बोलनी चाहिए उसकी ही सत्ता मानी जानी चाहिए। स्मिथ के अनुसार एक साम्प्रदाय व्यक्ति अथवा समूह वह है जो कि अपने धार्मिक या भाषा भाषी समूह को एक ऐसी पृथक राजनैतिक तथा सामाजिक इकाई के रूप में देखता है जिसके हित अन्य समूहों से पृथक होते हैं और जो अक्सर उनके विरोधी भी सकते हैं।

11.3 साम्प्रदायिकता की समस्या

अब तो भारत में शायद ही कोई ऐसा दिन बीतता हो जिस दिन दैनिक अखबार में साम्प्रदायिक दंगों का समाचार न होता हो। यह साम्प्रदायिक दंगे कहीं दो सम्प्रदायों या धर्मों के बीच, तो कहीं एक ही धार्मिक सम्प्रदाय के दो उप-सम्प्रदायों के बीच, तो कहीं विभिन्न जातियों के बीच अपना रंग दिखाते रहते हैं। इनके परिणामस्वरूप जन और धन की बहुत हानि होती है और समाज के साम्प्रदायिक सद्भाव के हृदय-पटल पर दरार की गहरी रेखा खिंच जाती है। एस. एल. शर्मा के अनुसार यद्यपि भारत में साम्प्रदायिकता का एक लम्बा इतिहास रहा है तथापि पिछले कुछ वर्षों में यह एक अत्यन्त चिन्ताजनक विषय बन गया है। यह उन क्षेत्रों में भी फैलता जा रहा है जिनमें पहले ऐसा नहीं होता था; उदाहरणार्थ– राजस्थान में जयपुर, उत्तर प्रदेश में बदायूँ तथा मध्य प्रदेश में रतलाम इत्यादि। साथ ही, पहले साम्प्रदायिक हिंसा छोटे नगरों तक सीमित थी परन्तु अब वह विकास की ओर अग्रसर व्यापारिक तथा औद्योगिक नगरों (जैसे अहमदाबाद, जमशेदपुर, भिवण्डी, मुरादाबाद आदि) में भी फैलती जा रही है। कुछ नगरों (जैसे अलीगढ़, मेरठ, हैदराबाद आदि) साम्प्रदायिकता की दृष्टि से अत्यन्त संवेदनशील बन गए हैं तथा इनमें सदैव हिंसा का डर बना रहता है। बिपिन चन्द्र ने उचित ही लिखा है, "साम्प्रदायिकता सम्भवत: सबसे गम्भीर समस्या है जिसका सामना भारतीय समाज आज कर रहा है।" इसलिए इस समस्या का समाधान ढूँढना राष्ट्रहित के लिए बहुत आवश्यक है, इस समस्या की प्रकृति पर प्रकाश डालते हुए डी. आर. गोयल ने इस बात पर बल दिया है कि साम्प्रदायिक तनावों तथा उपद्रवों को मौलिक एकता की कमी के सूचक के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि एक ऐसे कारक के रूप में जिससे विघटन होता है। यह सत्य है कि इससे एकता में कुछ रुकावट पड़ती है परन्तु आधुनिक तकनीकी तथा विचारों से ऐसा होना सम्भव है, इस समस्या को सही रूप से आँकने के लिए यह आवश्यक है कि साम्प्रदायिकता के अर्थ एवं कारणों को समझा जाए।

साम्प्रदायिकता एक निम्न कोटि की विभाजनात्मक प्रवृत्ति है जिसके कारण प्रथमत: देश का विभाजन हुआ तथा स्वतन्त्रता के पश्चात् साम्प्रदायिक तनावों तथा उपद्रवों ने राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में बाधा डाली है। इन उपद्रवों से हिंसा भड़कती है तथा तनाव पैदा होता है जिससे राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र-निर्माण की भावनाएँ प्रभावित होती हैं। साम्प्रदायिकता प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में एक कलंक है और राष्ट्र-निर्माण को नुकसान पहुँचाती है।

धार्मिक पहचान पर आधारित आक्रामक उग्रवाद को सामान्य बोलचाल की भाषा में सम्प्रदायवाद या साम्प्रदायिकता कहते हैं। उग्रवाद अपने आप में एक ऐसी मनोवृत्ति है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अपने ही समूह को वैध या श्रेष्ठ समूह मानता है और अन्य समूहों को निम्न, अवैध अथवा विरोधी समझता है। अन्य शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता एक आक्रामक राजनीतिक विचारधारा है जो धर्म से जुड़ी होती है। यद्यपि अंग्रेजी भाषा का 'कम्यूनल' शब्द व्यक्ति की अपेक्षा समुदाय या सामुदायिकता से जुड़ा हुआ है, तथापि भारत एवं दक्षिण एशियाई देशों में साम्प्रदायिकता शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं किया जाता। साम्प्रदायिकता व्यक्ति में एक ऐसी आक्रामक राजनीतिक पहचान बनाती है कि वह अन्य सम्प्रदायों के लोगों की निन्दा करने या उन पर आक्रमण करने को तैयार हो जाते हैं। साम्प्रदायिकता में धार्मिक पहचान अन्य सभी की तुलना में सर्वोपरि होती है अर्थात् इसमें अमीर-गरीब, व्यवसाय, जाति, राजनीतिक विश्वास इत्यादि के आधार पर अन्तर नहीं होता। भारत में साम्प्रदायिकता

एक विशेष मुद्दा मानी जाती है, इसका कारण यह है कि साम्प्रदायिकता समय-समय पर तनाव एवं हिंसा का पुनरावर्तक स्रोत रही है।

धर्मनिरपेक्षता अथवा लौकिकता सामाजिक और राजनीतिक सिद्धान्त में प्रस्तुत सर्वाधिक जटिल शब्द माने जाते हैं। पश्चिम में इन शब्दों का मुख्य भाव चर्च और राज्य की पृथकता का द्योतक है। धार्मिक और राजनीतिक सत्ता के पृथक्करण में पश्चिम के इतिहास में एक बड़ा मोड़ ला दिया क्योंकि इस विचारधारा ने आधुनिकता के आगमन और विश्व को समझने के धार्मिक तरीकों के विकल्प के रूप में अपने आप को प्रस्तुत किया। भारतीय सन्दर्भ में पश्चिमी भाव के अतिरिक्त धर्मनिरपेक्षता के कुछ अन्य अर्थ भी हैं, इस शब्द का सर्वाधिक प्रयोग 'साम्प्रदायिक' के विलोम के रूप में किया जाता है अर्थात् वह व्यक्ति या राज्य धर्मनिरपेक्ष है जो किसी विशेष धर्म का अन्य धर्मों की तुलना में पक्ष नहीं लेता, इस अर्थ में धर्मनिरपेक्षता धार्मिक उग्रवाद का विरोधी भाव है और इसमें धर्म के प्रति विद्वेष का भाव होना आवश्यक नहीं होता। धर्मनिरपेक्षता का यह भाव सभी धर्मों के प्रति समान आदर का द्योतक होता है, न कि अलगाव या दूरी का।

साम्प्रदायिक तनाव या साम्प्रदायिकता एक ऐसा शब्द है जो भारतीय पृष्ठभूमि में समस्याबोधक और दुर्भाग्यपूर्ण अर्थ वाला हो गया है। पश्चिमी देशों में यह शब्द सामुदायिक सहायता एवं भाईचारे के लिए प्रयोग होता है। पश्चिमी समाजों में यह एक वैचारिकी (Ideology) को व्यक्त करता है जिसका उद्देश्य सामुदायिकता की भावना, हम की भावना तथा पारस्परिक सहायता की भावना की पुनर्स्थापना करना है। अत: वहाँ यह शब्द धनात्मक रूप में प्रयोग होता है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से अंग्रेजी शब्द 'Communalism' 'communis' शब्द से बना है जिसका अर्थ है 'मिल-जुलकर रहना'; परन्तु हमारे समाज की विशेष परिस्थितियों वश यहाँ साम्प्रदायिकता से अभिप्राय अपने धार्मिक सम्प्रदाय से भिन्न अन्य सम्प्रदाय अथवा सम्प्रदायों के प्रति उदासीनता, उपेक्षा, दयादृष्टि, घृणा, विरोध व आक्रमण की भावना से है जिसका आधार वह वास्तविक या काल्पनिक भय है कि उक्त सम्प्रदाय हमारे सम्प्रदाय को नष्ट कर देने या हमें जान-माल की हानि पहुँचाने के लिए कटिबद्ध है या वही हमारे कष्टों के लिए जिम्मेदार है। अत: भारत में यह शब्द ऋणात्मक अर्थ के रूप में प्रयोग होता है। एस. एल. शर्मा के अनुसार, साम्प्रदायिकता शब्द का प्रयोग व्यापक तथा सीमित दोनों रूपों में किया जाता है। व्यापक अर्थ में यह दो या अधिक सम्प्रदायों में प्रतिरोध (Antagonsim) को व्यक्त करता है तथा ये सम्प्रदाय नृजातीय (Ethnic), प्रजातीय, धार्मिक या जातीय आधार पर हो सकते हैं। विशिष्ट (सीमित) अर्थ में यह दो या अधिक धार्मिक सम्प्रदायों में प्रतिरोध को व्यक्त करता है। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग भारतीय समाज के सन्दर्भ में विशिष्ट अर्थ में किया है। बलराज मधोक के शब्दों में, "साम्प्रदायिकता कुछ धार्मिक वर्गों का राष्ट्र अथवा अन्य धार्मिक वर्गों की कीमत पर अपने लिए विशेष राजनीतिक अधिकार एवं अन्य सुविधाओं की माँग करना है।" इसी भावना से प्रेरित होकर अनेक साम्प्रदायिक संगठनों का निर्माण होता है।

बिपिन चन्द्र ने साम्प्रदायिकता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "साम्प्रदायिकता मौलिक रूप से और सबसे ऊपर एक विचारधारा (Ideology) है जिसके साम्प्रदायिक दंगे और अन्य रूपों में साम्प्रदायिक हिंसा परिणाम हैं। साम्प्रदायिक विचारधारा तो बिना हिंसा के भी अस्तित्व बनाए रख सकती है परन्तु साम्प्रदायिक हिंसा बिना साम्प्रदायिक विचारधारा के नहीं हो सकती।" उन्होंने आगे लिखा है कि साम्प्रदायिकता में तीन तत्व अथवा चरण होते हैं– प्रथम, यह केवल धर्म तक ही सीमित नहीं होती अपितु इसका विश्वास यह होता है कि एक धर्म के अनुयायियों के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक हित भी समान हैं; द्वितीय, इसका यह भी विश्वास है कि अन्य धर्म या धर्मों के अनुयायियों के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक हित उनके सम्प्रदाय से भिन्न हैं; तथा तृतीय, सम्प्रदायों के लौकिक हित न केवल भिन्न हैं वरन् एक-दूसरे के विरोधी भी हैं।

बोध प्रश्न

1. साम्प्रदायिकता का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

2. साम्प्रदायिकता की समस्याओं का वर्णन कीजिए।

....

....

NOTES

....

11.4 साम्प्रदायिक तनावों एवं उपद्रवों के कारण

1. ऐतिहासिक कारक – यह एक ऐसिहासिक सत्य है कि मुसलमान बाहर से आये और उन्होंने भारत में अपने धर्म प्रचार के लिए तलवार एवं जोर जबरदस्ती का सहारा लिया। मुसलिम लिंग की मांग ने भारत के दो टुकड़े किये विभाजन के समय दोनों ओर से होने वाले दंगों से हुई हानियों को कई लोग आज तक नही बुला पायें।

2. साँस्कृतिक भिन्नता -- साम्प्रदायिकता को जन्म देने में एक महत्वपूर्ण कारक हिन्दू एवं मुसलमानों की साँस्कृतिक भिन्नता है दोनों का रहन सहन खान पान रीति रिवाज एवं विचार धारा में बहुत भिन्नता है यह साँस्कृतिक मत भेद मन मुटाव एवं तनाव पैदा करता है और दोनों साम्प्रदायों में अलगावों की स्थिति बनी रहती है।

3. राजनैतिक स्वार्थ – राजनैतिक स्वार्थ भी साम्प्रदायिक तनाव एवं उपद्रवों एक प्रमुख कारण है कई राजनैतिक दलों का गठन धार्मिक अधार पर किया जाता है। यह राजानैतिक दल मत प्राप्त करने एवं राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए साम्प्रायिकता की आग भड़काते है।

4. साम्प्रदायिक सगठन – जैन, सिक्ख, हिन्दू और मुसलमानों में कई साम्प्रादयिक संगठन पाये जाते है यह साम्प्रदायिक संगठन अपने अपने मतावलम्बियों को संगठित करते है और उन्हें दूसरों के प्रति भड़काते है।

11.5 साम्प्रदायिकता के कारणों की खोज

आधुनिक साम्प्रदायिक उपद्रव न तो धर्म की उच्चता तथा निम्नता पर आधारित हैं और न ही संघर्षात्मक समूहों में उपद्रव है, अपितु एक सम्प्रदाय के व्यक्ति दूसरे सम्प्रदाय के व्यक्तियों से बदले की भावना से लड़ते हैं क्योंकि किसी एक सम्प्रदाय द्वारा दूसरे को किसी बात के लिए दोषी मान लिया जाता है, इस भाँति, साम्प्रदायिकता एक जटिल भावात्मक तथ्य को प्रकट करती है। अनेक विद्वानों ने उसके कारणों की खोज का प्रयास किया है। परिणामत: कई स्पष्टीकरण भी उभरे हैं। कुछ ने आर्थिक विषमता को तो कुछ ने विभिन्न सम्प्रदायों के बीच महत्वाकांक्षाओ और उभरते हुए वर्गों को साम्प्रदायिक दंगों के लिए दोषी ठहराया है। इन विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर साम्प्रदायिकता के निम्नलिखित प्रमुख कारणों का वर्णन किया जा सकता है–

1. धार्मिक संकीर्णता–भारत में साम्प्रदायिकता के विकास का एक कारण बलपूर्वक धर्म प्रचार कहा जा सकता है। मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के बाद कुछ मुसलमान शासकों ने हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाना शुरू किया, इससे हिन्दुओं में संकीर्णता एवं घृणा की भावनाएँ बढ़ीं। पुर्तगालियों तथा अंग्रेजों ने भी शासन को अधिक मजबूत बनाने के लिए पादरियों का सहारा लिया और ईसाई धर्म का प्रचार किया तथा धर्म परिवर्तन को प्रोत्साहित किया। आज यही धार्मिक संकीर्णता की प्रबल भावना हमें हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, सिक्खों के बीच पाए जाने वाले सम्बन्धों में देखने को मिलती है। आज यही धार्मिक संकीर्णता साम्प्रदायिकता के पीछे एक महत्वपूर्ण तत्व है। प्रमुख राजनीतिशास्त्री प्रो. इम्तियाज अहमद ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा है कि पिछले डेढ़-दो दशक के दौरान हमारे देश के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक वातावरण में जो संकीर्णता आती जा रही है, 2002 ई. में अहमदाबाद और गोधरा की साम्प्रदायिक घटना उसी की कड़ी है और कुछ हद तक इसका परिणाम भी है।

2. अपने धर्म के प्रति श्रेष्ठता एवं सम्मान की भावना–साम्प्रदायिकता का दूसरा कारण यह है कि प्रत्येक सम्प्रदाय का व्यक्ति अपने धार्मिक विश्वासों से इतना जकड़ चुका है कि उसमें धार्मिक सहिष्णुता बिल्कुल

नहीं रह गई है। आज विविध प्रकार के सेवा कार्य भी धर्म के नाम पर होते है। धर्मशालाएँ, स्कूल, मन्दिर, आदि धर्म पर ही आधारित है। आज धर्म और उसके कार्य शक्ति-सन्तुलन से भी सम्बन्धित हो गए है। इन सबसे साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है।

3. **दोषपूर्ण नेतृत्व**–साम्प्रदायिकता का तीसरा कारण हमारा दोषपूर्ण नेतृत्व है। वर्तमान में राजनीतिक नेता नेतृत्व के लिए धर्म का सहारा लेते है और धार्मिक नेता राजनीति में अवैध रूप से प्रविष्ट हो रहे हैं। हिन्दुओं में यह भावना पैदा हो गई है कि वे बहुमत में होते हुए भी उत्पीड़न के शिकार हैं और सरकार अल्पमतों को तुष्ट करने में लगी हुई है, इसलिए और कितना सहा जाए? दूसरी ओर, मुसलमान अल्पसंख्यक होने के कारण बहुसंख्यकों द्वारा अपने उत्पीड़न की बात, तो कुछ सिक्ख खालिस्तान की बात करते हैं।

4. **उग्रवादी विचारधारा**–भारत में साम्प्रदायिक तनाव के लिए उग्रवादी विचारधारा तथा इसमें विश्वास रखने वाले उग्रवादी नेताओं की भूमिका से भी इनकार नहीं किया जा सकता। प्रो. इम्तियाज अहमद ने गुजरात में हाल में ही हुए दंगों के सन्दर्भ में इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है कि भारत में राज्य का जो ढाँचा है, वह बुनियादी तौर पर धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक सन्तुलन पर आधारित है। यहाँ कि अधिकतर जनता इस अवधारणा को स्वीकार करती है और इसी के अनुरूप आचरण भी करती है। उनकी सार्वजनिक चेतना भी इसकी पक्षधर है, लेकिन समुदायों के हाशिए पर जो उग्रवादी विचारधारा रखने वाले लोग हैं, वे इससे भिन्न राय रखते हैं। ऐसे लोग इस समय देश के वातावरण पर हावी हैं और इसी के कारण राज्य की अपने नागरिकों को सुरक्षा देने की क्षमता प्रभावित हुई है, या दूसरे शब्दों में कहें तो ऐसा करने में राज्य असमर्थ सिद्ध हुआ है।

5. **राजनीतिक स्वार्थ**–भारत में स्वतन्त्रता के बाद से ही राजनीति ने साम्प्रदायिकता का संरक्षण किया है। धर्म का राजनीतिकरण हुआ है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार शाहबानो तथा रामजन्मभूमि-बाबरी मसजिद विवाद इसी राजनीतिकरण तथा राजनीतिक संरक्षण का परिणाम हैं। कुछ विद्वानों ने तो साम्प्रदायिकता को धर्म व राजनीति में अपवित्र (दुष्ट) गठबन्धन के रूप में परिभाषित करने पर बल दिया है। राजनीतिक स्वार्थ के कारण भी साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिलता है। अंग्रेजो ने शासन चलाने के लिए 'फूट डालो और राज करो' की नीति को अपनाया; इसलिए उन्होंने जातिभेद और धर्म-भेद का सहारा लिया। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय नेताओं और विभिन्न वर्गों ने भी अपने व्यक्तिगत राजनीतिक हित की पूर्ति के लिए इसी सिद्धान्त का सहारा लिया है, जिससे जातिवाद और साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है।

6. **मनोवैज्ञानिक कारण**–प्राय: अल्पसंख्यकों और पिछड़े वर्गों में बहुसंख्यकों द्वारा सताए जाने की भावना होती है। चाहे यह उत्पीड़न वास्तव में हो और चाहे वे ऐसा महसूस कर रहे हों, परन्तु उनके लिए यह एक सत्य है, इसके अतिरिक्त, अपनी अस्मिता के मिटने का भी खतरा उन्हें महसूस होता है। कभी-कभी अपने सामाजिक कष्टों के लिए दोषारोपण के लिए अन्य सम्प्रदाय को चुन लिया जाता है और अपनी भग्नाशाओं का आक्रोश उन पर निकाल लिया जाता है। अन्त में, एक सम्प्रदाय द्वारा दूसरे को सबक सिखाने की प्रवृत्ति भी साम्प्रदायिकता की आग में घी का काम करती है।

7. **आर्थिक एवं सामाजिक विषमता**– आर्थिक सम्पन्नता के स्तर की दृष्टि से विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में विषमता है, विशेषत: विकास की प्रक्रिया में कुछ सम्प्रदाय आगे बढ़ गए हैं तो कुछ इस दौड़ में पिछड़ गए हैं। लेकिन सभी के हृदय में विकास के फलों में हिस्सा प्राप्त करने की निरन्तर वृद्धिशील चाह होती है, इसलिए आर्थिक रूप से पिछड़े सम्प्रदायों में यह भावना आ जाती है कि वे सापेक्षिक रूप से उस सब से वंचित कर दिए गए हैं जो उन्हें देय था, इसलिए उन हितों की पुन: प्राप्ति के लिए या 'दोषी' को दण्डित करने के लिए धर्म का एक यन्त्र के रूप में प्रयोग किया जाता है। लुईस ड्यूमों तथा सतीश सबरवाल जैसे विद्वानों ने सामाजिक पहचान (विशिष्टता) तथा साम्प्रदायिक पृथक्करण को उभारने में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता को भी इसका एक कारण माना गया है। असगर अली इन्जीनियर ने अनेक अध्ययनों के निष्कर्षों के आधार पर हमें यह बताया है कि मुसलमानों व हिन्दुओं में आर्थिक प्रतियोगिता ने भी साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया है। इम्तियाज अहमद ने मुरादाबाद तथा अलीगढ़ में साम्प्रदायिक दंगों का एक कारण पहले से संस्थापित हिन्दू औद्योगिक वर्ग एवं नवोदित मुस्लिम उद्यमिता वर्ग में आर्थिक प्रतियोगिता बताया है।

8. **अन्तर्राष्ट्रीय कारक**– आजकल एक देश में साम्प्रदायिक दंगों में और साम्प्रदायिकता के प्रोत्साहन में किसी विदेशी शक्ति का हाथ होना; असामान्य घटना होना नहीं रह गया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति प्रत्यक्ष रूप

से साम्प्रदायिकता का महत्वपूर्ण कारक बन गई है। हमारे देश में पंजाब समस्या, असम समस्या, कश्मीर समस्या और देश में फैले हिन्दू-मुस्लिम दंगों के पीछे विदेशी हाथ की भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता।

11.6 साम्प्रदायिकता या साम्प्रदायिक हिंसा का समाजशास्त्र

NOTES

भारत के सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो. योगेन्द्र सिंह के अनुसार साम्प्रदायिक हिंसा का अपना एक अलग समाजशास्त्र होता है और यह हिंसा के अन्य सभी रूपों के समाजशास्त्र से भिन्न होता है। इनके अनुसार साम्प्रदायिक हिंसा को छोड़कर अन्य सभी प्रकार की हिंसा के सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं, जबकि साम्प्रदायिक हिंसा के साथ ऐसा नहीं होता, इसका आर्थिक विकास से कोई सम्बन्ध नहीं होता। अन्य सभी प्रकार की हिंसा कहीं-न-कहीं गरीबी और असमानता से जुड़ी हुई होती है, जबकि साम्प्रदायिक हिंसा अक्सर पूर्व-नियोजित एवं कुछ लोगों द्वारा निहित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए होती है। इन्होंने अपने तथ्य की पुष्टि हेतु आर्थिक रूप से भारत के अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक दृष्टि से सम्पन्न राज्य गुजरात तथा महाराष्ट्र का उदाहरण दिया है, जिनमें साम्प्रदायिक तनाव सबसे अधिक पाया जाता है।

प्रो. योगेन्द्र सिंह के अनुसार साम्प्रदायिक हिंसा कभी भी, कहीं भी हो सकती है। यह एक नगरीय अवधारणा है और गाँव में अभी इसका प्रभाव लगभग नहीं के बराबर है, इस बार गुजरात में हुए साम्प्रदायिक तनाव का प्रभाव नगरों के इर्द-गिर्द बसे गाँव तक भी पहुँच गया है। इनके अनुसार लोगों में व्याप्त डर उन नगरों में साम्प्रदायिक हिंसा की सम्भावना को बढ़ा देता है जिनमें पहले भी साम्प्रदायिक हिंसा होती रही है। ऐसे नगरों में किसी खास समुदाय या सम्प्रदाय की अलग कॉलोनियों की संख्या बढ़ जाती है और इस प्रकार वे साम्प्रदायिक हिंसा के समय अलग से पहचाने जाते हैं। ऐसी अलग कॉलोनियों का सबसे बड़ा नुकसान यह होता है कि समाज का एक समुदाय या दूसरे समुदाय से संवाद कम हो जाता है, समाज का बहुलवाद कमजोर हो जाता है, संकीर्ण मानसिकता पनपने लगती है, जो अगली साम्प्रदायिक हिंसा को जमीन मुहैया कराती है। इनके अनुसार साम्प्रदायिक हिंसा का मूल कारण धार्मिक न होकर राजनीतिक होता है। साम्प्रदायिक तनाव का फायदा उठाकर कुछ नेता टाइप के लोग उस पर राजनीति करने लगते हैं, तब जाकर यह तनाव साम्प्रदायिक हिंसा का रूप ले लेता है।

बोध प्रश्न

1. साम्प्रदायिकता के कारणों की खोज बताइये।

....

....

....

2. साम्प्रदायिकता हिंसा का समाजशास्त्र होता है। समझाइये।

....

....

....

....

11.7 साम्प्रदायिकता को रोकने के उपाय

डी. आर. गोयल ने साम्प्रदायिकता को रोकने के निम्नलिखित तीन उपाय बताए हैं—

1. प्रशासनिक व्यवस्था इतनी प्रभावशाली बनाई जानी चाहिए कि साम्प्रदायिक तनावों का पूर्वानुमान लगाया जा सके तथा इन्हें रोकने के लिए कठोर कदम उठाए जा सकें।
2. साम्प्रदायिक तत्वों को पहचान कर उनका भण्डा-फोड़ करना चाहिए ताकि सन्देह की स्थिति में जनता ऐसे तत्वों का साथ न दे।

NOTES

3. राष्ट्रीयता के बारे में साम्प्रदायिक विचारों का मुकाबला राजनीतिक प्रचार द्वारा किया जाना चाहिए। शिक्षा संस्थाओं तथा शिक्षा प्रक्रियाओं को इन तत्वों का विरोध करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

इन सब उपायों से अधिक कारगर साम्प्रदायिक संगठनों पर रोक लगाना तथा उनकी गतिविधियों पर निरन्तर ध्यान रखने की आवश्यकता है। उन प्रादेशिक दलों का, जोकि साम्प्रदायिकता अथवा प्रादेशिकता के नाम पर जनता को गुमराह कर रहे हैं, राजनीतिक स्तर पर मुकाबला किया जाना चाहिए, इसके अतिरिक्त, निम्नलिखित सुझाव भी साम्प्रदायिकता को रोकने में सहायक हो सकते हैं–

1. साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने वाले समाचार-पत्रों व साहित्य के प्रकाशकों के विरुद्ध कठोर कदम उठाए जाने चाहिए।
2. राष्ट्रीय जन संचार के साधनों का प्रयोग राष्ट्रीय एकता के लिए जनमत तैयार करने के लिए किया जाना चाहिए।
3. धार्मिक नेताओं को लोगों को भड़काने की अपेक्षा सहिष्णुता के विकास के लिए सहयोग देना चाहिए।
4. नैतिक शिक्षा का प्रचार किया जाना चाहिए।

साम्प्रदायिकता के विषय में यह कहा जा सकता है कि स्थिति अभी लाइलाज नहीं हुई है। असगर अली इन्जीनियर ने उचित ही लिखा है कि, "जनसमूह धार्मिक है, साम्प्रदायिक नहीं है। सभी समुदायों में शुभेच्छा वाले धार्मिक और लौकिक नेता भी विद्यमान हैं। हम निश्चय ही साम्प्रदायिकता की आवृत्ति और गहराई को कम कर सकते हैं।" एस. एल. शर्मा ने जनता, विशेषत: युवा पीढ़ी के मस्तिष्क को असाम्प्रदायिक बनाने की आवश्यकता पर बल दिया है। शिक्षा को लौकिकीकरण अथवा धर्मनिरपेक्षता के अनुरूप मूल्यों को बढ़ावा देने वाली बनाना होगा। कर्फ्यू, बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ तथा शान्ति समितियों का गठन; कानून व व्यवस्था से सम्बन्धित साम्प्रदायिकता के आयाम पर नियन्त्रण के केवल अल्पकालीन उपाय हैं। दीर्घकालीन उपायों में राजनीति को स्वच्छ बनाना, शिक्षा को पुनर्गठित करना तथा युवा पीढ़ी का उचित समाजीकरण प्रमुख हैं।

साम्प्रदायिकता को रोकने के लिए धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देना चाहिए। धर्मनिरपेक्षता अथवा धर्मनिरपेक्षतावाद सामाजिक और राजनीतिक सिद्धान्त में प्रस्तुत सर्वाधिक जटिल शब्द माने जाते हैं। पश्चिम में इन शब्दों का मुख्य भाव चर्च और राज्य की पृथक्ता का द्योतक है। धार्मिक और राजनीतिक सत्ता के पृथक्करण में पश्चिम के इतिहास में एक बड़ा मोड़ ला दिया क्योंकि इस विचारधारा ने आधुनिकता के आगमन और विश्व को समझने के धार्मिक तरीकों के विकल्प के रूप में अपने आप को प्रस्तुत किया। भारतीय सन्दर्भ में पश्चिमी भाव के अतिरिक्त धर्मनिरपेक्षता के कुछ अन्य अर्थ भी हैं, इस शब्द का सर्वाधिक प्रयोग 'साम्प्रदायिक' के विलोम के रूप में किया जाता है अर्थात् वह व्यक्ति या राज्य धर्मनिरपेक्ष है जो किसी विशेष धर्म का अन्य धर्मों की तुलना में पक्ष नहीं लेता, इस अर्थ में धर्मनिरपेक्षता धार्मिक उग्रवाद का विरोधी भाव है और इसमें धर्म के प्रति विद्वेष का भाव होना आवश्यक नहीं होता। धर्मनिरपेक्षता का यह भाव सभी धर्मों के प्रति समान आदर का द्योतक होता है, न कि अलगाव या दूरी का।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

भारतभूमि पर अनेक अल्पसंख्यक समुदाय बसते हैं। उनके प्रवास की लम्बी अवधि के दौरान उनका कुछ सीमा तक भारतीयकरण भी हुआ है। सभी धर्मों में नीति के सामान्य नियम हैं। सभी मानव प्रेम, समानता, सुविचार, सुवचन और सुआचरण पर जोर देते हैं। भारतीय समाज की यह धार्मिक बहुलता उसके लिए धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय नीति की अनिवार्यता को प्रकट करती है। भारतीय समाज की समृद्धि और ऐतिहासिक परम्परा में, सभी धर्मावलम्बी समान रूप से भागीदार हैं। भारत का सन्देश ही मानव-प्रेम है और उसकी खोज आध्यात्मिकता है। आज के भौतिकवाद और विज्ञानवाद ने मानव-समाज को विनाश के कगार पर ला खड़ा किया है। कदाचित् इसी क्षण के लिए प्रकृति ने भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखा है। उसका एक ही मिशन है– मानव-जाति को भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के सन्तुलित योग की शिक्षा देकर सही रास्ता दिखाना। भारत का धार्मिक बहुलवाद भारतीय समाज के लिए गर्व का विषय होना चाहिए। यही वह प्रयोगशाला है जो धार्मिक सहअस्तित्व एवं सहयोग के प्रयोगसिद्ध परिणाम दे सकती है। भारतीय चेतना को इसी समय की माँग को पूरा करना है। यह उसका विश्व के प्रति नैतिक दायित्व है। यदि हम इसमें असफल रहे तो समस्त मानव जाति के साथ हम भी विनष्ट हो जाएँगे। हमें सिद्ध करना है कि भारतभूमि वह महान उद्यान है जहाँ देशी और विदेशी सभी धार्मिक बिरवे पनप सकते हैं, वृक्ष बन सकते है, पल्लवित और पुष्पित हो सकते है और सारे विश्व को अपनी महक से भर रहे हैं। भारत में बहुलवादी परम्पराओं

के व्यापक आधार विविधता में एकता द्वारा प्रकट होते हैं। विविधताएँ होते हुए भी भारत एक बहुलवादी समाज है जिसमें सांस्कृतिक एकता पाई जाती है।

11.8 शब्दावली

NOTES

साम्प्रदायिकता–धार्मिक पहचान पर आधारित आक्रामक उग्रवाद को साम्प्रदायिकता कहते हैं। अपने सम्प्रदाय से भिन्न अन्य सम्प्रदाय के प्रति उदासीनता, उपेक्षा, हेय दृष्टि, घृणा, विरोध एवं आक्रमण की वह भावना साम्प्रदायिकता कहलाती है जिसका आधार यह वास्तविक या काल्पनिक आशंका है कि उक्त सम्प्रदाय हमारे अपने सम्प्रदाय और संस्कृति को नष्ट कर देने या जान-माल की क्षति पहुँचाने के लिए कटिबद्ध है।

राष्ट्र-निर्माण– राष्ट्र-निर्माण वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति लघु जनजातियों, गाँवों अथवा स्थानीय समुदायों के प्रति निष्ठा एवं समर्पण की भावना को वृहत् केन्द्रीय राजनीतिक व्यवस्था को अन्तरित (समर्पित) कर देते हैं। यह राष्ट्र के प्रति वफादारी विकसित करने की प्रक्रिया है।

क्षेत्रवाद – क्षेत्रवाद से अभिप्राय अपने क्षेत्र-विशेष के प्रति अन्धभक्ति अथवा पक्षपातपूर्ण मनोवृत्ति है जिसमें व्यक्ति अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा करता है।

11.9 सारांश

इस इकाई में हमने समस्त विश्लेषण से यह स्पष्ट किया है कि साम्प्रदायिकता तथा सामाजिक जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। धार्मिक संकीर्णता बहुलवादी समाजों में साम्प्रदायिक एवं तनाव का कारण भी बन जाती है, इसके कारणों की खोज रोकने के उपाय इत्यादि अनेकों विषयों का अध्ययन इसके अन्तर्गत किया जाता है।

11.10 अभ्यास प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. साम्प्रदायिकता किसे कहते है? इसके प्रमुख कारण बताइए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या के समाधान हेतु सुझाव दीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. साम्प्रदायिक तनावों के कितने कारण हैं–

   (अ) चार (ब) पाँच (स) छः (द) सात

उत्तर 1. (अ)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Sharma, S. L., "Communalism : Trends and Roots" in **Competition Affairs,** September, 1991.

Srinivas, M. N., **Social Change in Modern India,** New Delhi : Orient Longman, 1995.

योगेन्द्र सिंह, "साम्प्रदायिक हिंसा का समाजशास्त्र", **हस्तक्षेप,** राष्ट्रीय सहारा, 9 मार्च 2002 ई., पृष्ठ 2.

Waterhouse, Eric S., **Encyclopaedia of Religion and Ethics,** Vol. XI, London, 1949.

●●●

अध्याय–12 क्षेत्रवाद (REGIONALISM)

NOTES

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 क्षेत्रवाद का अर्थ
12.3 क्षेत्रवाद की विशेषतायें
12.4 क्षेत्रवाद के उद्देश्य
12.5 भारत में क्षेत्रवाद के विकास के कारण
12.6 क्षेत्रवाद एवं भारतीय राजनीति
12.7 भारत में क्षेत्रवाद के निराकरण हेतु सुझाव
12.8 सारांश
12.9 शब्दावली
12.10 अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.0 उद्देश्य

क्षेत्रवाद अथवा प्रादेशिकता की समस्या भारत के राष्ट्र-निर्माण में एक अवरोधक तत्व है। प्रदेशों को विभिन्न आधारों जैसे भूगोल, आर्थिक विकास, भाषाई एकीकरण, जाति या जनजाति इत्यादि द्वारा परिभाषित किया जा सकता है। भारत में 1956 ई. में राज्यों का पुनर्गठन मुख्य रूप से भाषायी आधार पर किया गया है। राज्यों के भाषायी पुनर्गठन ने भारत का हित भी किया है तथा अहित भी। अहित इस दृष्टि से किया है कि इससे क्षेत्रवाद का विकास हुआ है तथा राष्ट्र-निर्माण जैसी प्रक्रियाएँ बाधित हुई हैं। 1950 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में यह भी डर विकसित हो गया था कि कहीं भाषा के आधार पर राज्यों का विभाजन आगे चलकर उप-विभाजन की प्रक्रिया को तेज न कर दे। विभिन्न राज्यों में कभी-कभी भाषा के आधार पर झगड़े भी होते हैं। ऐसा माना जाता है कि राज्यों के भाषायी पुनर्गठन ने भारत का अहित ही किया हो यह भी वास्तविकता के विपरीत है। भाषा पर आधारित राज्यों ने भारतीय एकता को कोई ठेस नहीं पहुँचाई बल्कि उसे और मजबूत करने में सहयोग दिया। वस्तुत: भारत में भाषायी समुदायों की भावनाओं की उपेक्षा शायद उतनी नहीं की गई है जितनी कि पड़ोसी देश श्रीलंका और पाकिस्तान में की गई है।

कई बार अनेक आधार परस्पर जुड़े होते हैं। क्षेत्रवाद अपने क्षेत्र अथवा राज्य के प्रति निष्ठा की संकीर्ण भावना है। कई बार ऐसा होता है कि किसी विशेष क्षेत्र या प्रदेश के लोग यह सोचते हैं कि उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक या संवैधानिक अधिकारों की उपेक्षा की जा रही है, इससे लोग अपने क्षेत्र या प्रदेश के विकास के लिए उन विशेषाधिकारों एवं अवसरों की माँग करने लगते हैं जोकि उन्हें सम्पूर्ण समाज के सन्दर्भ में करने चाहिए। क्षेत्रीय हितों द्वारा प्रभावित व्यक्ति अन्य प्रदेशों व सम्पूर्ण राष्ट्र के हितों की ओर कोई ध्यान नहीं देते हैं, इससे भी राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया को नुकसान पहुँचता है। कुछ विद्वान् इसे राष्ट्रीयता में ही अन्तर्भूत प्रक्रिया बताते हैं। अतः इस इकाई में क्षेत्रवाद की समस्या से निपटने हेतु विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है।

12.1 प्रस्तावना

सामुदायिक पहचान जन्म तथा सम्बन्धित होने के भाव पर आधारित होती है। यह हमें किसी अर्जित

योग्यता या उपलब्धि के आधार पर प्राप्त नहीं होती। जिस समुदाय में हमने जन्म लिया है उसकी सदस्यता हमें जन्म से ही मिल जाती है तथा वही हमारी पहचान बन जाता है। परिवारों, धार्मिक अथवा क्षेत्रीय समुदायों की सदस्यता के लिए न कोई योग्यता एवं कुशलता की आवश्यकता होती है और न ही किसी प्रकार की परीक्षा पास करनी पड़ती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने समुदाय से सम्बन्धित होकर अत्यन्त सुरक्षित एवं सन्तुष्ट महसूस करता है। वह भावात्मक रूप से अपने समुदाय से जुड़ा हुआ होता है। समुदाय के परस्परव्यापी दायरे ही हमारी दुनिया को सार्थकता प्रदान करते हैं और हमें एक पहचान देते हैं कि हम कौन हैं। यह पहचान एक प्रकार से प्रदत्त होती है तथा इतनी पक्की होती है कि उसे हिलाया नहीं जा सकता। धर्म तथा क्षेत्र के आधार पर पहचान इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

12.2 क्षेत्रवाद का अर्थ

क्षेत्रवाद का अर्थ अपने क्षेत्र के प्रति लगाव की उस भावना से है जो व्यक्ति को अन्य क्षेत्रों की तुलना में अपने क्षेत्र को प्राथमिकता देने तथा अन्यों की उपेक्षा करने हेतु प्रेरित करती है। भारत जैसे देश में क्षेत्रवाद का आधार विभिन्न भाषाएँ, संस्कृतियाँ, जनजातियाँ तथा धर्मों की विविधता है। इन भिन्नताओं को विशेष क्षेत्रों में पहचान चिह्नकों के भौगोलिक संकेन्द्रण के कारण भी प्रोत्साहन मिलता है, इसलिए यदि किसी क्षेत्र के व्यक्ति यह सोचते हैं कि अन्य क्षेत्रों की तुलना में उन्हें किसी चीज या सुविधा से वंचित रखा जा रहा है तो यह भावना अग्नि में घी का काम करती है। धर्म की तुलना में भाषा ने क्षेत्रीय तथा जनजातीय पहचान के साथ मिलकर भारत में नृजातीय राष्ट्रीय पहचान बनाने के लिए एक अत्यन्त सशक्त साधन का काम किया है।

क्षेत्रवाद की परिभाषा देना इतना सरल नहीं है क्योंकि प्रदेश को निर्धारित करने का कोई एक सामान्य आधार नहीं है। साथ ही, कई आधार आपस में जुड़े हुए होते हैं जिससे समस्या और भी जटिल हो जाती है। उदाहरणार्थ, केवल भाषाएँ प्रदेशों को परिभाषित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। कई बार ऐसा होता है कि किसी विशेष क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति अनुभव करते हैं कि उनके संवैधानिक उद्देश्यों (जैसे- आर्थिक तथा सांस्कृतिक इत्यादि) की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है अथवा पूरे नहीं हो रहे हैं। क्षेत्रवाद के बारे में दो दृष्टिकोण हमारे सम्मुख रखे गए हैं— प्रथम, अपने प्रदेश के प्रति भक्ति देश में बढ़ती हुई राष्ट्रीयता का ही परिणाम है। विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोग आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए वही विशेषाधिकारों एवं अवसरों की माँग करते हैं जिनकी पहल पूरे देश में माँग की जाती थी। द्वितीय, इसके बारे में एक अन्य दृष्टिकोण यह है कि क्षेत्रीय भावनाएँ राष्ट्रीय एकता में रुकावट है क्योंकि क्षेत्रीय उद्देश्यों की सर्वोच्चता के कारण राष्ट्रीय उद्देश्य पिछड़ जाते हैं। क्षेत्रीय भावना से ग्रसित व्यक्ति केवल अपने प्रदेश के उद्देश्यों की पूर्ति चाहता है तथा पड़ोसी प्रदेशों अथवा पूरे देश के उद्देश्यों को सामने नहीं रखता।

भारतीय सरकार का प्रमुख उद्देश्य सांस्कृतिक, धार्मिक तथा प्रजातीय अनेकताएँ एवं संघर्ष होते हुए भी एकता की भावना का विकास करना है। आर्थिक असमानताओं को जब राजनीतिक उद्देश्य के लिए शोषित किया जाता है तो क्षेत्रवाद की समस्या उत्पन्न हो जाती है तथा क्षेत्रीय संगठन जन्म लेने लगते हैं। आर. सी. पाण्डे के अनुसार, हिन्दी बोलने वाले तथा न बोलने वाले क्षेत्रों में संघर्ष के अतिरिक्त अन्य घटनाएँ; जैसे—असम में असमियों तथा बंगालियों में संघर्ष, महाराष्ट्र में शिव सेना द्वारा उत्तर भारतीयों का विरोध तथा तेलंगाना में आंध्र का विरोध क्षेत्रवाद की ओर इंगित करती है। अप्रभावित क्षेत्रों में भी स्थानीय माँगों को उठाया जा रहा है। पाण्डे के अनुसार, "क्षेत्रवाद संघीय संरचना की एक समस्या है। एकता का शाब्दिक अर्थ है अंगों से समग्र का निर्माण करना, इसमें हम अनेकता को मानकर चलते हैं तथा अंगों को एक साथ मिलाना इसका उद्देश्य है। अंगों में अनेकता होते हुए भी पारस्परिक सहायता की भावना होनी चाहिए।"

अरुण चटर्जी के मतानुसार क्षेत्रवाद को बहु-परिणाम सम्बन्धी पृथक् विभागों से निर्मित प्रघटना तथा राष्ट्रीयता में ही निहित प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। क्षेत्रवाद तथा प्रान्तीयवाद में अन्तर है क्योंकि प्रान्तीयवाद में स्थानीयता, अलगाव तथा पृथकता के विचार निहित हैं। क्षेत्रवाद सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन में अन्तर से शुरू होता है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि किसी क्षेत्र की भाषा अथवा बोली को लेकर या उसकी आर्थिक स्थिति को लेकर वहीं के हित को सर्वोपरि रखकर राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा करना ही क्षेत्रवाद या क्षेत्रीयता है।

12.3 क्षेत्रवाद की विशेषतायें

NOTES

1. क्षेत्र के आधार पर प्रशासन का विवेकीकरण पाया जाता है।
2. राष्ट्रीय एकता के लिए जब सभी पर एक ही राजनीतिक विचारधारा भाषा सांस्कृतिक प्रतिमान आदि थोपे जाते है तो प्रतिक्रिया स्वरूप सामाजिक सांस्कृतिक प्रति आन्दोलन किया जाता है।
3. संघात्मक संरचना में अधिकाधिक उपसंस्कृतियाँ स्वायत्ता प्राप्त करने के लिए राजनीतिक प्रति आन्दोलन करती है।
4. क्षेत्रवाद स्थानीय देशभक्ति तथा क्षेत्रीय श्रेष्ठता की भावना को बल देता है।
5. क्षेत्रवाद एक सीखा हुआ व्यवहार है।
6. क्षेत्रवाद संकीर्णता ही पैदा करता है। क्योंकि एक क्षेत्र के लोग अपनी भाषा, संस्कृति, आदर्श और सिद्धान्तों को ही श्रेष्ठ समझने लगते है। अपने हितो को ही सर्वोच्च प्राथमिकता देते है तथा अपनी मांग मंगवाने के लिए तोड़ फोड़ दंगे विरोध एवं आन्दोलन का सहारा लेते है।

12.4 क्षेत्रवाद के उद्देश्य

सैद्धान्तिक रूप से क्षेत्रवाद के निम्नलिखित पहलू तथा उद्देश्य हैं—

1. जहाँ पर प्रशासन तथा सत्ता का अधिक केन्द्रीकरण है वहाँ प्रदेशों के आधार पर प्रशासन का विकेन्द्रीकरण करना,
2. एक विशेष राजनीतिक विचारधारा तथा राष्ट्रीय एकता के विरुद्ध सामाजिक-सांस्कृतिक प्रति-आन्दोलन,
3. राष्ट्र के संघीय संरचना के अन्तर्गत उप-सांस्कृतिक क्षेत्रों के लिए अधिक स्वायतता की माँग को लेकर राजनीतिक प्रति-आन्दोलन तथा
4. पृथकतावाद की नीति ताकि क्षेत्रीय समूह, जोकि किसी विशेष उप-सांस्कृतिक क्षेत्र में रहता है, के राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके।

इन्हीं से सम्बन्धित क्षेत्रवाद के चार उद्देश्य हैं—

1. क्षेत्रीय संस्कृतियों का पुनर्गठन,
2. प्रशासनीय तथा राजनीतिक निक्षेपण या अवनति,
3. केन्द्र तथा राज्यों के संघर्षों को सुलझाने के लिए नियम बनाना ताकि दो अथवा अधिक उपसांस्कृतिक क्षेत्रों में संघर्ष टाला जा सके तथा
4. केन्द्र तथा राज्यों में राष्ट्र तथा उप-सांस्कृतिक क्षेत्रों में आर्थिक एवं राजनीतिक सन्तुलन बनाए रखना।

बोध प्रश्न

1. क्षेत्रवाद के अर्थ की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

2. क्षेत्रवाद की विशेषताएँ बताइये।

....

....

....

NOTES

12.5 भारत में क्षेत्रवाद के विकास के कारण

क्षेत्रवाद जैसी समस्या का जन्म एवं विकास किसी एक कारण से नहीं होता है, इसके लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं–

1. क्षेत्रीय विभिन्नता– क्षेत्रवाद विभिन्न क्षेत्रों में पाई जाने वाली विभिन्नता का उत्पाद है। राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के बाद भी अनेक क्षेत्रों में अलगाव का मनोभाव बना हुआ है; उदाहरणार्थ– महाराष्ट्र में विदर्भ या मराठवाड़ा, गुजरात में सौराष्ट्र, बिहार में झारखण्ड, मध्य प्रदेश में छत्तीसगढ़ या विन्ध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश में बुन्देलखण्ड या उत्तराखण्ड या हरित प्रदेश, पश्चिमी बंगाल में गोरखालैण्ड तथा जम्मू-कश्मीर में लद्दाख की माँग इसी मनोवृत्ति का परिणाम है। इनमें से कुछ-एक राज्यों में पृथक् राज्यों के निर्माण हो भी चुके हैं।

2. भाषायी लगाव–भाषायी लगाव क्षेत्रवाद की उत्पत्ति का मुख्य कारक है। 1948 ई. में राज्य पुनर्गठन पर विचार करने हेतु नियुक्त दर आयोग ने भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन न करने का विचार व्यक्त किया था; परन्तु राजनीतिज्ञों ने अपने निहित स्वार्थ के लिए भाषायी हितों को आगे बढ़ाना जारी रखा। 1953 ई. में तेलुगू भाषी लोगों के लिए तत्कालीन मद्रास राज्य का भाग लेकर आन्ध्र प्रदेश नामक नए राज्य की स्थापना की गई। 1956 ई. में भाषाओं के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया।

3. विभिन्न क्षेत्रों का असन्तुलित आर्थिक विकास– राज्य के अलग-अलग भागों में आर्थिक विकास की असन्तुलित स्थिति भी क्षेत्रवाद के उदय का एक मुख्य कारक रही है। उदाहरणार्थ– आन्ध्र प्रदेश में तेलंगाना आन्दोलन, महाराष्ट्र में शिवसेना द्वारा चलाया गया आन्दोलन, असम में ऑल असम स्टूडेण्ट्स यूनियन (AASU) तथा ऑल असम गण-संग्राम परिषद् (AAGSP) द्वारा चलाए गए आन्दोलनों के पीछे यही मुख्य कारक हैं।

4. सामाजिक अन्याय एवं पिछड़ापन–सामाजिक अन्याय एवं पिछड़ापन क्षेत्रवाद के उदय का एक और मुख्य कारण है। मुख्यत: जब इस पिछड़ेपन में आर्थिक पिछड़ापन भी मिल जाता है तो स्थिति और भी विषम हो जाती है।

5. धार्मिक संकीर्णता की भावनाएँ–धर्म भी कई बार क्षेत्रीयवाद की भावनाओं को बढ़ाने में सहायता करता है। पंजाब में अकालियों की पंजाबी सूबे की माँग कुछ हद तक धर्म के प्रभाव का परिणाम ही थी।

6. निहित राजनीतिक स्वार्थ– क्षेत्रवाद की भावनाओं को विकसित करने में राजनीतिज्ञों का भी हाथ रहता है। कई राजनीतिज्ञ यह सोचते हैं कि यदि उनके क्षेत्र का अलग राज्य बना दिया जाएगा तो इससे उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हो जाएगी; अर्थात् उनके हाथ भी सत्ता लग जाएगी।

12.6 क्षेत्रवाद एवं भारतीय राजनीति

यह एक विवादास्पद प्रश्न है कि क्षेत्रवाद का भारतीय राजनीति पर धनात्मक प्रभाव पड़ा है अथवा ऋणात्मक? रशीउद्दीन खाँ का मानना है कि क्षेत्रीय आन्दोलनों के कारण भारतीय संघ छिन्न-भिन्न हो जाएगा। यह धारणा मिथ्या सिद्ध हुई है। लगभग इसी प्रकार का दृष्टिकोण मॉरिस जोन्स का भी है। जोन्स का मानना है कि "क्षेत्रीय आन्दोलन उप-राष्ट्रवाद के विकास में सहायक होते हैं, जो कालान्तर में राष्ट्रवाद के विकास में सहायता करते हैं।" इस दृष्टिकोण के समर्थकों का यह मानना है कि भारत में क्षेत्रीय आन्दोलन न्यूनाधिक रूप से पृथकतावादी नहीं रहे हैं। क्षेत्रवाद का लक्ष्य अपने क्षेत्र या समुदाय के लिए अधिक सुविधाएँ प्राप्त करना अथवा विकास की गति को तीव्र करना होता है।

NOTES

दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार क्षेत्रवाद का भारतीय राजनीति पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ा है और इनमें आन्दोलनात्मक राजनीति को बढ़ावा मिला है, इस दृष्टिकोण के समर्थक विद्वानों के अनुसार क्षेत्रवाद ने अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए धर्म, भाषा, जाति जैसे विघटनकारी तत्वों का सहारा लिया है, जिससे भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में नवीन बाधाएँ पैदा हो रही हैं।

वास्तविक स्थिति इन दोनों दृष्टिकोणों के मध्य की है। भारत में विकास की गति असमान रही है, अतएव क्षेत्रीय धरातल पर विरोध स्वाभाविक है। यदि विकास के अवसरों और उससे प्राप्त लाभों का बँटवारा न्यायसंगत तरीके से हो सके तो क्षेत्रीय आन्दोलनों से भारत के संघीय ढाँचे पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा।

12.7 भारत में क्षेत्रवाद के निराकरण हेतु सुझाव

किसी भी लोकतान्त्रिक राष्ट्र के लिए, विशेष रूप से ऐसे राष्ट्र के लिए, जो अभी भी राष्ट्र-निर्माण और राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याओं से जूझ रहा हो, क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति का विकास एक चिन्ताजनक विषय है, इस समस्या का समाधान एक सोची-समझी, सुविचारित रणनीति द्वारा ही हो सकता है। क्षेत्रवाद की समस्या के समाधान के कुछ प्रभावशाली उपाय निम्नलिखित हैं–

1. सरकार को विकास कार्यक्रमों का निर्माण और उनका क्रियान्वयन कुछ इस प्रकार करना चाहिए कि सन्तुलित क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा मिल सके। यह तभी सम्भव है जब नीतियों का निर्धारण राष्ट्रीय हित में हो न कि किसी क्षेत्र-विशेष के हित में।
2. विशिष्ट जातीय समुदाय की अपनी विशिष्ट संस्कृति और पहचान (Identity) को सुरक्षित रखने के लिए सरकार द्वारा विशेष प्रयास किए जाने चाहिए, इस आशय के प्रावधान मौलिक अधिकारों के अनुच्छेद 29-30 में भी किए गए हैं। इन्हें पूर्ण ईमानदारी के साथ लागू किया जाना चाहिए।
3. जहाँ तक सम्भव हो पिछड़े हुए क्षेत्रों के आर्थिक विकास पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए जिससे उन्हें राष्ट्र की मुख्य विकासधारा से जोड़ा जा सके। संघ सरकार को पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास पर विशेष ध्यान देने के लिए राज्य सरकारों को विशेष निर्देश देना चाहिए।
4. क्षेत्रवादी आन्दोलनों की हिंसात्मक प्रवृत्ति पर कठोरता से अंकुश लगाया जाना चाहिए।
5. राष्ट्रभाषा को सभी राज्यों को जोड़ने वाला सामान्य आधार बनाया जाना चाहिए। राष्ट्रभाषा के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं का भी उचित सम्मान होना चाहिए तथा उन्हें समृद्ध बनाया जाना चाहिए।

उपर्युक्त उपायों को अपनाने से क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति का समाधान सम्भव है। यदि समय रहते इन उपायों पर ध्यान नहीं दिया गया तो सम्भव है कि एक बार फिर राज्यों का पुनर्गठन करना पड़े। क्षेत्रीयता की समस्या का समाधान करने के लिए राष्ट्रीयता की भावनाओं एवं राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन देना अनिवार्य है। राष्ट्रीय एकता की भावना, विभिन्न प्रदेशों का सन्तुलित आर्थिक विकास एवं विकास की उपयुक्त योजनाओं द्वारा इसका समाधान किया जा सकता है।

12.8 सारांश

इस इकाई में महत्वपूर्ण बिन्दुओं का विश्लेषण करने के पश्चात यह स्पष्ट किया है कि क्षेत्रवाद का अर्थ, विशेषताएँ, कारण, भारतीय राजनीति, निराकरण के सुझावों को भी समझाया है। क्षेत्रीय हितों के कारण, राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को भी खतरा है। हमने इसमें सम्पूर्ण राष्ट्र के हित के बारे में सोचकर विचार-विमर्श भी किया है। विकास की उपयुक्त योजनाओं द्वारा इसका समाधान किया जा सकता है–

12.9 शब्दावली

राष्ट्र-निर्माण– राष्ट्र-निर्माण वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति लघु जनजातियों, गाँवों अथवा स्थानीय समुदायों के प्रति निष्ठा एवं समर्पण की भावना को वृहत् केन्द्रीय राजनीतिक व्यवस्था को अन्तरित (समर्पित) कर देते हैं। यह राष्ट्र के प्रति वफादारी विकसित करने की प्रक्रिया है।

क्षेत्रवाद –क्षेत्रवाद से अभिप्राय अपने क्षेत्र-विशेष के प्रति अन्धभक्ति अथवा पक्षपातपूर्ण मनोवृत्ति है जिसमें व्यक्ति अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा करता है।

NOTES

बहुलवाद–बहुलवाद वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार समाज के विभिन्न समूहों के बीच शक्ति वितरित रहती है, इसकी यह मान्यता है कि समाज में विद्यमान विभिन्न समूहों के हित अलग-अलग हो सकते हैं। अतः समाज की व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि समाज के सभी विविध समूहों को अपने हितों की प्राप्ति की स्वतन्त्रता हो और उसके लिए उन्हें उचित अवसर उपलब्ध हों।

12.10 अभ्यास प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. क्षेत्रवाद क्या है? इसके प्रमुख कारण बताइए।
2. भारत में क्षेत्रवाद की समस्या के समाधान हेतु सुझाव दीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–
   (अ) क्षेत्रवाद के उद्देश्य
   (स) क्षेत्रवाद एवं भारतीय राजनीति।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारत में क्षेत्रवाद के विकास के कितने कारण हैं–
   (अ) छः (ब) सात (स) आठ (द) दस

उत्तर 1. (अ)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Goyal, D. R., quoted in Satish Chandra, K. C. Pande and P. C. Mathur (eds.), **Regionalism and National Integration : Proceedings of a Seminar,** Jaipur : Aalekh Publishers, 1976.

Pande, R. C., quoted in Satish Chandra, K. C. Pande and P. C. Mathur (eds.), **Regionalism and National Integration : Proceedings of a Seminar,** Jaipur : Aalekh Publishers, 1976.

Srinivas, M. N., Social **Change in Modern India,** New Delhi : Orient Longman, 1995.

योगेन्द्र सिंह, "साम्प्रदायिक हिंसा का समाजशास्त्र", **हस्तक्षेप,** राष्ट्रीय सहारा, 9 मार्च 2002 ई., पृष्ठ

●●●

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress